प्रस्तावना।

कविवर भूधरदासजी जैन समाजके एक सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं। आप आगरामें रहते थे। भूधर-
विलास, और यह पार्श्वपुराण ये दो ग्रन्थ आपके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं। कई लोगोंने पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी
टीका और चरचासमाधानके कर्ता भी इन्हींको बतलाया है। परन्तु यह भ्रम है। उक्त दोनों ग्रन्थोंके
कर्ता आगराके समीप शाहगंजके रहनेवाले पंडित भूधरदासजी मिश्र इनसे भिन्न हैं। वे जातिके ब्राह्मण
थे, और वैष्णवसे जैनी हुए थे। और ये खडेलवाल जैनी थे। दोनोंके समयमें भी बहुत अन्तर है। कविवर
भूधरदासजीने पार्श्वपुराण संवत् १७८९ में पूर्ण किया है और मिश्रजीने संवत् १८७१ में पुरुषार्थ
सिद्ध्युपायकी टीका समाप्त की है। इससे भूधरदास और भूधरमिश्रके दो होने में कोई संदेह नहीं है।

पार्श्वपुराण भूधरदासजीका एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। किसी मूल ग्रन्थका भाषान्तर अथवा छाया नहीं है।
इसलिये इसकी कविता शुद्ध स्वाभाविक और बहुत उत्तम हुई है। इस ग्रन्थमें कथाभाग थोडा और
जैनसिद्धान्तका रहस्य बहुत है। इसलिये सभाओंमें इसके पढे जानेकी अधिक परिपाटी है। इसकी
बाईस परीषह, जोगीरासा आदि अनेक कवितायें ऐसी अच्छी है कि हजारों मनुष्य उन्हें कंठ याद करते हैं।

सं० १९५४ में दिल्लीके स्वर्गीय मुंशी अमनसिंहजीने इस ग्रन्थको बड़े परिश्रमसे टिप्पणी शब्दकोष
आदिके साथ छपवाया था तबसे अब तक इसका कोई दूसरा संस्करण नहीं हुआ। यह देखकर
ग्राहकोंके आग्रहसे हमने इसे प्रकाशित किया है। कारणवश इसके छपानेमें बहुत शीघ्रता करना पडी अर्थात
केवल डेड़ही महीनेमें ग्रन्थ तैयार किया गया है, इसलिए परिश्रम करने पर भी संभव है कि इसमें बहुत अ-
शुद्धियां रह गई होंगीं। पाठकगणोंसे हम उन्हें शोधकर पढनेकी प्रार्थना करते है, और क्षमा चाहते हैं।

प्रकाशक।

ॐ

कविवर भूधरदासजी विरचित—

श्रीपार्श्वपुराण ।

श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति ।

दोहा—मोहमहातमदलन दिन, तपलछमीभरतार। ते पारस परमेश मुझ, होहु सुमतिदातार ॥ १ ॥ वामानंदन कलपतरु, जयो जगतहितकार। मुनिजन जाकी आश करि, जाँचैं शिवफलसार ॥ २ ॥ छप्पय—भुवनातिलक भगवंत, संतजनकमल-दिवायर । जगतजंतुबंधव अनंत, अनुपम गुणसायर ॥ रागनाग--मयमंत,—दंत उच्छेपण बलि अति । रमाकंत अरहंत, अतुल जसवंत जगतपति ॥ महिमा महंत मुनिजन जपत, आदि अंत सबको सरन । सो परमदेव मुझ मन बसो, पार्सनाह मंगलकरन ॥ ३ ॥ विमलबोधदातार, विश्वविद्यापरमेश्वर । लछमीकमलकुमार, मार-

मातंग—मृगेश्वर ॥ सुखमयंकअवलोकि, रंक रजनीपति लाजै। नाममंत्रपरताप, पापपन्नग डर भाजै ॥ जय अश्वसेनकुलचंद्र जिन, शक्र चक्र पूजत चरन । तारो अपार भवजलधित, तुम तरंड तारन तरन ॥ ४ ॥ बाघ सिंह वश होंहिं, विषम विषधर नहिं डंकैं। भूत प्रेत वेताल, व्याल बैरी मन शंकैं॥ शाकिनि डाकिनि अगनि, चोर नहिं भय उपजावैं। रोग सोग सब जाहिं, विपत नेरे नहिं आवैं ॥ श्रीपार्श्वदेवके पदकमल, हिये धरत निज एकमन। छूटैं अनादि बंधन बँधे, कौन कथा विनशैं विघन ॥ ५ ॥ चहुंगति भ्रमत अनादि, वादि बहुकाल गमायो। रही सदा सुख-आस,—प्यास जल कहूं न पायो ॥ सुखकरता जिनराज, आज लों हिये न आये । अब मुझ माथे भाग, चरन चिंतामनि पाये ॥ राखौं सँभाल उर कोषमें, नाहिं बिसरौं पल रंकधन। परमादचोर टालन निमित, करौं पार्श्वजिनगुनकथन ॥ ६ ॥ चौपाई (१ मात्रा)—बंदौं तीर्थंकर चौबीस। बंदौं सिद्ध बसैं जगसीस ॥ बंदौं आचारज उवझाय। बंदौं परम साधुके पाय ॥ ७ ॥ ये ही पद पांचों परमेठ। ये ही सांच और सब हेठ॥ ये ही मंगल पूज्य अतीव। येही उत्तम सरन सदीव ॥८॥ बंदौं जिनवानी मन सोध। आदि अंत जो विगत विरोध ॥ सकलवस्तुदरसावनहार । भ्रमविषहरन औषधीसार॥ ९ ॥ दोहा—बरतौ

जग जयवंत नित , जिनप्रवचन अमलान । लोक महलमें जगमगै, मानिक दीप स-
मान ॥१०॥ हरो भरम दालिद्र दुख, भरो हमारी आस । करो शारदा लच्छमी, मुझउरअंबुज
वास ॥ ११ ॥ चौपई—बंदों बृषभसेन गनराज । गुरु गौतम भवजलधिजहाज ॥
कुंदकुंद मुनि प्रमुख सुपंथ । जे सब आचारज निरग्रंथ ॥१२॥ जैनतत्त्वके जाननहार ।
भये जथारथ कथक उदार॥ तिनके चरनकमल कर जोरि। करौं प्रणाम मानमद छोरि॥१३॥
दोहा—सकलपूज्य पद पूजकैं, अलपबुद्धिअनुसार ॥ भाषापार्श्वपुराणकी, करौं स्व-
परहितकार ॥ १४ ॥ चौपई--जिनगुनकथन अगमविस्तार । बुधिबल कौन
लहै कवि पार ॥ जिनसेनादिक सूरि महंत । वरनन करि पायो नाहिं अंत ॥ १५ ॥
तौ अब अलपमती जन और । कौन गनतिमें तिनकी दौर ॥ जो बहुभार गयंदन बहै ।
सो क्यों दीन शशक निरबहै ॥ १६ ॥ दोहा--कह जानैं ते यों कहैं, हम कछु बरन्यो नाहिं ॥
जे कह जानैं ही नहीं, ते अब कहा कहाहिं ॥ १७ ॥ नभ बिलस्त नापै नहीं, चुलू
न सागर तोय ॥ श्रीजिनगुनसंख्या सुजस, त्यों कवि करै न कोय ॥ १८ ॥
चौपई—पै यह उत्तम नर अवतार । जिनचरचा विन अफल असार ॥ सुनि
पुरान जो घुमैं न सीस । सो थोथे नारेल सरीस ॥ १९ ॥ जिनचरित्र जे सुनै न कान ।

देहगेहके छिद्र समान ॥ जामुख जैनकथा नाहिं होय । जीभभुजंगानिको बिल सोय॥२०॥ या प्रकार यह उद्यम जोग । कहत पुरानन पंडित लोग ॥ जिनगुनगान सुधारसन्याय । सेवत अलपजन्म जुर जाय ॥२१॥ घनाक्षरी–जौं लौं कवि काव्यहेत आगमके अच्छरको, अरथ बिचारैं तौलौं सिद्धि शुभध्यानकी । और वह पाठ जब भूपरि प्रगट होय, पढैं सुनैं जीव तिन्हैं प्रापति है ज्ञानकी ॥ ऐसैं निज परको विचार हित हेतु हम, उद्यम कियो है नाहिं बान अभिमानकी । ज्ञानअंश चाखा भई ऐसी अभिलाखा अब, करूं जोरि भाखा जिनपारसपुरानकी ॥ २२ ॥ आगै जैनग्रंथनके करता कवींद्र भये, करी देव-भाषा महाबुद्धिफल लीनो है । अच्छरमिताई तथा, अर्थकी गँभीरताई, पदललिताई जहां आई रीति तीनों हैं ॥ कालके प्रभाव तिन ग्रंथनके पाठी अब, दीसत अलप ऐसौ, आयो दिन हीनो है । तातैं इह समै जोग पढ़ैं बालबुद्धि लोग, पारसपुरान पाठ भाषावद्ध कीनो है ॥ २३ ॥ दोहा–शक्तिभक्तिबल कविनपै, जिनगुन वरनैं जाहिं ॥ मैं अब बरनों भक्तिवश, शक्तिमूल मुझ नाहिं ॥ २४ ॥ वरनौं पूरवकथित क्रम, ग्रंथअर्थ अवधार । सुगमरूप संछेपसों, सुनौ सबहि नरनार ॥ २५ ॥ चौपई—मगधदेश देशन परधान । राजगृही नगरी शुभथान ॥ राज करै

श्रेणिक भूपाल । नीतवंत नृप पुण्यविशाल ॥ २६ ॥ छायक सम्यकदरशन सार । रूप शील सबगुनआधार ॥ तिनके घर अंतेवर घना । पटरानी रानी चेलना ॥ ॥ २७ ॥ जाके गुन वरनत बहु भाय । बिरिया लगै कथा बढ़ि जाय ॥ एक दिना निज सभा नरेश । निवसै जैसे सुरग सुरेश ॥ २८ ॥ रोमाँचित बनपालक ताम । आय राय प्रति कियो प्रनाम ॥ छह ऋतुके फल फूल अनूप । आगैं धरे अनूपम रूप ॥ २९ ॥ हाथ जोर विनवै वनपाल । विपुलाचल पर्वतके भाल ॥ वर्द्धमान तीर्थंकर आप । आये राजन पुण्यप्रताप ॥ ३० ॥ माहिमा कछु वरनी नाहिं जाय । इंद्रादिक सेवैं सब पाय ॥ समोसरनसंपतिकी कथा । मोपै कही जाय किमि तथा ॥ ३१ ॥ माली वचन सुने सुखदाय । हरष्यो राजा अंग न माय ॥ दीने भूषन वसन उतार । वनमाली लीने सिरधार ॥ ३२ ॥ सात पेंड़ गिरिसम्मुख जाय । कियो परोच्छविनय नरराय ॥ आनँदभेरि नगरमैं दई । सबहीको दर्शनरुचि भई ॥ ३३ ॥ चल्यो संग पुरजन समुदाय । बंदे वर्द्धमान जिनराय ॥ लोकोत्तर लछमी अवलोक । गये सकल भूपतिके शोक ॥ ३४ ॥ थुति आरंभ करी बहुभाय । बार बार भुवि सीस नवाय ॥ गौतम गुरु पूजे कर जोरि । नरकोठे बैठ्यो मद छोरि ॥ ३५ ॥ कियो प्रश्न श्रेणिक बड़ भूप । प्रभु पा-

रस निजकथा अनूप ॥ जाके सुनत पाप छय होय । कहिये देवकृपा करि सोय ॥ ३६॥ तब गनधर बोले हितकाज । जोग प्रश्न कीनों नरराज ॥ सुन पुनीत पारसनिज कथा । सफल होय मानुषभव यथा ॥ ३७ ॥ दोहा--इहि विधि जो मगधेश प्रति, कह्यो चरित गनराज ॥ ताही क्रम आये कहत, आचारज परकाज ॥ ३८ ॥ तिन-हीके अनुसार अब, कहूँ किमपि विसतार ॥ जैनकथा कलपित नहीं, यह जानो निरधार ॥ ३९ ॥ जैनवचनवारिधि अगम, पानी अर्थ अनूप ॥ मतिभाजन भर २ लिये, यह निजआगमरूप ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ इति पीठिका ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमोऽधिकारः ।

चौपई--जंबूदीप दिपै यह सार । सूरजमंडलकी उनहार ॥ मध्य सुमेरुकर्णिकाभास । बने क्षेत्र-दल दीरघ जास ॥ ४१ ॥ तारागन मकरंद मनोग । सुरनरसंग भ्रमरकुल योग ॥ लवणसमुद्र सरोवरथान । दीप किधों यह कमल महान ॥ ४२ ॥ लक्ष महायोजन विस्तार । बसै विविध रचना आधार ॥ दक्षिणभरत धनुप संठान । पर्वत फणच नदीजुग वान ॥ ४३ ॥ मानो सागरप्रति अनुमान । तानत तीर छार जल जान ॥ ऐसी भांति विराजत खेत । छहों खंडमंडित छवि देत ॥ ४४ ॥ पांच मलेच्छ बसैं

तामाह । धर्म कर्म कछु जानै नाहिं ॥ उत्तम आरजखंडमझार । देश सुरम्य बसै मनहार ॥ ४५॥ जनकुल जहां रहै बहु भांति । पास पास सोहैं पुरपांति ॥ सरवर नदी शैल उद्यान । वन उपवनसों शोभामान ॥ ४६ ॥ तहां नगर पोदनपुर नाम । मानो भूमि-तिलक अभिराम ॥ देवलोककी उपमा धरै । सब ही विधि देखत मनहरै ॥ ४७ ॥ दोहा--तुंग कोट खाई सजल, सघन बाग गृहपांति ॥ चौपथ चौक बजारसों, सोहै पुर बहुभांति ॥ ४८ ॥ ठाम ठाम गोपुर लसैं, वापी सरवर कूप । किधौं स्वर्गने भूमिको, भेजी भेंट अनूप ॥ ४९ ॥ चौपई—जैनी प्रजा जहां परवीन । बसै दानपूजाव्रतलीन ॥ जैनभवन ऊँचे अति बने । शिखर धुजासों शोभित घने ॥ ५० ॥ इहि विधि पुरशोभा अधिकार । वरनन करत लगै बहुबार ॥ राज करै राजा अरविंद । सोहै मानो स्वर्गसुरिंद ॥ ५१ ॥ पालै प्रजा कुमति जिन दली । नीतिबेलमंडित भुजबली ॥ दयाधाम सज्जन गंभीर । गुनरागी त्यागी रनधीर ॥ ५२ ॥ तिस भूपतिकै विप्र सुजान । विश्वभूति मंत्री बुधिवान ॥ ताकै तिया अनूधर सती । रूप-शील-गुण-लक्षणवती ॥ ५३ ॥ दोय पुत्र तिनके अवतरे । पापपुन्यकी पटतर धरे ॥ जेठो नंदन कमठ कुपूत । दूजो पुत्र सुधी मरुभूत ॥ ५४ ॥ दोहा--जेठो मतिहेठो कुटिल,

लघुसुत सरल सुभाव ॥ विष अम्रत उपजे जुगल, विप्र जलधिके जाव ॥ ५५ ॥ बड़े पुत्रने भारजा ब्याही बरुणा नाम ॥ लघुने बरी विसुन्दरी, रूपवंति अभिराम ॥ ५६ ॥ चौपई–यों सुख निवसैं बांधव दोय । निज निज टेव न टारैं कोय ॥ वक्र चाल विषधर नाहिं तजै । हंस वक्रता भूल न भजै ॥५॥ दोहा–उपजे एकहि गर्भसों, सज्जन दुर्जन येह लोह कवच रक्षा करै, खांडो खंडै देह॥५८॥ चौपई—अति सज्जन मरुभूत कुमार । नीति शास्त्रको जाननहार ॥ सबको इष्ट सकलगुणगेह । राजा प्रजा करैं सब नेह॥५९॥ एक दिना भूपति मंत्रीश । स्वेत बाल देख्यो निज शीश ॥ उपज्यो विप्र हिये वैराग । जान्यो सब जग अथिर सुहाग ॥ ६१ ॥ दोहा-जरा मौतकी लघु बहिन, यामैं संशय नाहिं ॥ तौ भी सुहित न चिंतवैं, बडी भूल जगमाहिं ॥ ६२ ॥ चौपई–यह विचार मंत्री मनमाहि । निज सुत सौंपि रायकी बांहिं ॥ सुगुरु साखि जिन चारित लियो । वनोवास आतमहित कियो ॥ ६३ ॥ अब मरुभूत विप्र सुख करै । अहनिश नीतिपंथ पग धरै ॥ राजा प्रीति करै बहु भाय । सोम प्रकृति सबको सुखदाय ॥६४॥ एक समय आपन अरिविंद । मंत्री सेनासहित नरिन्द ॥ राय वज्रवीरजपर चढे । क्रोधभाव उरमें अति बढे ॥ ६५ ॥ पीछे कमठ निरंकुश होय । लग्यो अनीति करन शठ सोय ॥ जो मन आवै सो हठ गहै ।

मैं राजा सबसों इम कहै ॥ ६६ ॥ एक दिना निजभ्रातानारि । भूषणभूषितरूप, निहारि ॥ रागअंध अति विहवल भयो । तीच्छन कामताप उर तयो ॥ ६७ ॥ महा मलिन उर बसैं कुभाव । दुर्गतिगामी जीव सुभाव ॥ पुत्री सम लघुभ्रातानारि । तहां कुदिष्ट धरी अविचारि ॥ ६८ ॥ दोहा- पाप कर्मको डर नहीं, नहीं लोककी लाज ॥ कामी जनकी रीति यह, धिक तिस जन्म अकाज ॥ कामी काज अकाजमैं, हो हैं अंध अवेव ॥ मदनमत्त मदमत्त सम, जरो जरो यह टेव ॥ ७० ॥ पिता नीर परसै नहीं, दूर रहै रवि यार ॥ ता अंबुजमें मूढ अलि, उरझि मरै अविचार ॥ ७१ ॥ त्यों ही कुविसनरत पुरुष, होय अवशि अविवेक ॥ हितअनहित सोचै नहीं, हिये विसनकी टेक ॥ ७२ ॥ चौपाई–वनमें सघनलतागृह जहां । गयो कमठ कामातुर तहां ॥ बढ़ी वेदना कल नाहिं परै । छिन छिन काम विथा दुख करै ॥ ७३ ॥ कमठ सखा कलहंस विशेख । पूछत भयो दुखी तिस देख ॥ कौन व्याधि उपजी तुम अंग । अतिव्याकुल दीख सर्वंग ॥ ७५ ॥ तब तिन लाज छोर सब सही । मनकी बात मित्रसों कही ॥ सुन कलहंस कथा विपरीति । शिक्षावचन कहे करि प्रीति ॥ ७६ ॥ अति अयोग कारज यह बीर । सो तुम चिंत्यो साहसि धीर ॥ परनारीसम पाप न आन । परभवदुख इहि भव जस

हान ॥ ७७ ॥ इस ही वंछासों अव भरे। रावण आदि नरकमें परे ॥ जगमें जेठ पितासम तूल। वात कहत लाजै नाहिं मूल ॥ ७८ ॥ तातें यह हठ मूल न करो। सुहित सीख मेरी मन धरौ ॥ लोकानिंद कारज यह जान। धर्मनिंद निहचै उर आन ॥ ७९ ॥ दोहा--यों कलहंस अनेक विधि, दई सीख सुखदैन ॥ ते सब कमठकुशीलमति, भरो विफलहित वैन ॥ ८० ॥ आयुहीन नरको यथा, औषधि लगै न लेश ॥ त्यों ही रागी पुरुष प्रति, वृथा धर्म उपदेश ॥ ८१ ॥ बोल्यो तब कामी कमठ, सुनो मित्र निरधार ॥ जो नाहिं मिलै विसुंदरी, तो मुझमरन विचार ॥ ८२ ॥ देख कमठकी अधिक हठ, कुमति करी कलहंस ॥ जाय कहै ता नारसों झूठ वचन अपशंस ॥ ८३ ॥ अडिल्ल छंद ॥ सुन विसुंदरी आज कमठ वनमें दुखी । तू ताकी सुध लेहु होय जिहिं विधि सुखी ॥ सुनते ही सतभाव गई वनमें तहां । निवसै कर परपंच कमठ कपटी जहां ॥ ८४ ॥ दोहा--छलबल कर भीतर लई, वनिता गई अजान। राग वचन भाषे विविध, दुराचारकी खान ॥ ८५ ॥ चाल छंद--गजमातो कमठ कलंकी । अघसों मनसा नाहिं शंकी ॥ भावज वनकरनी रंजो । जिन शीलतरोवर भंजो ॥ ॥ ८६ ॥ रिपु जीत विजयजस पायो । अरविंद नृपति घर आयो ॥ जे कर्म कमठने

कीने । राजा सब ते सुन लीने ॥८७॥ मंत्री मरुभूत बुलायो । ताको सब भेद सुनायो॥
कहु विप्र सुधी क्या कीजै । क्या दंड इसे अब दीजै ॥ ८८ ॥ द्विज कहै सरल परिनामी ।
अपराध छिमा कर स्वामी ॥ जो एक दोष सुन लीजै । ताको प्रभु दंड न दीजै ॥ ८९ ॥
तब भूप कहै सुन भाई । जो निग्रहयोग अन्याई ॥ तापै करुना किम होहै । यह न्याय
नृपति नहिं सोहै ॥ ९० ॥ तातैं गृह गच्छ सयाने । मत खेद हिये कछु आने ॥ ऐसें कह
विप्र पठायो । तिस पीछैं कमठ बुलायो ॥९१॥ अति निंदो नीच कुकर्मी । जानो निर
धार अधर्मी ॥ राजा अति ही रिस कीनी । सिर मुंड दंड बहु दीनी ॥९२॥ मुखकै कालों
स लगाई । खर रोप्यो पीर न आई ॥ फिर सारे नगर फिरायो । प्रति बीथी ढोल बजायो
॥ ९३ ॥ इस भांति कमठकी ख्वारी । देखैं सब ही नर नारी ॥ पुरवासी लोक धिकारैं ।
बालक मिलि कंकर मारैं ॥ ९४ ॥ यों दंड दियो अति भारी । फिर दीनो देश निकारी॥
जो दीरघ पाप कमाये । ततकाल उदै बहु आये ॥ ९५ ॥ दोहा--इहि विधि फूल्यो पाप
तरु, देख्यो सब संसार । आगे फल है नरक फल, धिक दुर्विसन असार ॥९६॥ चौपाई–
महादंड भूपति जब दयो । कमठ कुशील दुखी अति भयो ॥ बिलखत वदन गयो चल
तहां । भूताचलपर्वत है जहां ॥ ९७ ॥ रहै तहां तपसी समुदाय । ज्ञानविना सब सोखैं

काय ॥ केई रहे अधोमुख झूल । धूँवां पान करैं अघमूल ॥९८॥ केई ऊर्धमुखी आघोर । देख सबै गगनका ओर ॥ केई निवसैं ऊरध बाहिं । द्विविध दयासों परचै नाहिं ॥ ९९ ॥ केई पंच अग्नि झल सहैं । केई सदा मौनमुख रहैं ॥ केई बैठे भस्म चढाय । केई मृगछाला तन लाय ॥ १०० ॥ नख बढाय केई दुख भरैं । केई जटा भार सिर धरैं ॥ यों अज्ञान तपलीन मलीन । करैं खेद परमारथहीन ॥ १०१ ॥ तिनमें एक तापसी नाथ । प्रनम्यो ताहि धरे सिर हाथ ॥ तिन असीस दे आदर कियो । दीक्षादान कमठ तहँ लियो ॥ १०२॥ करन लगो तब कायकलेश । उर वैराग विवेक न लेश ॥ ठाढ़ो भयो शिला कर लिये । किधौं फणी फण ऊँचो किये ॥१०३ ॥ मंत्री बंधवकी सुधि पाय । राजासों विनयो इमि आय ॥ भूताचलपर्वतकी ओर । भ्राता कमठ करै तप घोर ॥ १०४ ॥ जो नरनायक आज्ञा होय । देखूं जाय सहोदर सोय ॥ पूछै नृपति कौन तप करै । भो प्रभु तापसके व्रत धरै ॥ १०५ ॥ एक वार मिलि आऊं ताहि । राय कहै मंत्री मत जाहि ॥ खलसों मिले कहा सुख होय । विषधर भेंटे लाभ न कोय ॥ १०६ ॥ बरज्यो रह्यो न बारंबार महा सरलचित विप्रकुमार ॥ भ्रातमोहवश उद्यम कियो । कोमल होत सुजनको हियो ॥ १०७ ॥ दोहा—दुर्जन दूखित संतको, सरल सुभाव न जाय ॥ दर्पणकी छवि छार-

सों, अधिकाहि उज्जल थाय ॥१०८॥ सज्जन टरै न टेवसों, जो दुर्जन दुख देय ॥ चंदन
कटत कुठारसुख, अवशि सुवास करेय ॥ १०९ ॥ चौपई--गयो विप्र एकाकी
तहां। कमठ कठोर करै तप जहां॥ विनयवंत हो विनयो तास। महा सरलवायक सुखभा
स॥११०॥भो बंधव तो उर गंभीर। यह अपराध छिमाकर बीर॥ मैं तो राय बहुत कीन-
यो। मानी नाहिं तुमैं दुख दयो ॥ १११ ॥ होनहारसों कहा वसाय। तुम विन मोहि
कछू न सुहाय॥ यों कह पांयन लागो जाम। कोप्यो अधिक कमठदुठ ताम॥ ११२ ॥
दोहा--दुर्जन और शलेषमा,ये समान जगमाहिं॥ज्यों ज्यों मधुरो दीजिये, त्यों त्यों कोप
कराहिं॥११३॥शिला सहोदर शीशपै, डारी वज्र समान। पीर न आई पिशुनको, धिक
दुर्जनकी बान ॥११४॥ दुर्जनको विश्वास जे, करि हैं नर अविचार। ते मंत्री मरु-
भूत सम, दुख पावैं निरधार ॥११५॥ दुर्जन जनकी प्रीतसों, कहो कैसे सुख होय।
विषधर पोषि पियूषको, प्रापति सुनी न लोय ॥११६ ॥ मंत्रीतनतैं रुधिरकी, उछली छींट
कराल। दुर्जनहिततरुतैं किधौं, निकसीं कोंपल लाल ॥ ११७ ॥ इहिविध पापी कमठ-
ने, हत्या करी महान ॥ तब तपसी मिलि नीच नर, काढ दियो दुठ जान ॥ ११८ ॥
चौपई--फेरि दुष्ट भीलनतैं मिल्यो ॥ भयो चोर घर मूसन हिल्यो ॥ पाप करत कर आयो

जबै । बांधि बुरी विधि मारयो तबै ॥ ११९ ॥ दोहा--जैसी करनी आचरै, तैसो ही फल होय। इन्द्रायनकी बेलिकै, आंब न लागै कोय ॥ १२० ॥ चौपई--एक दिना अरविंद नरिंद । पूँछे कर जुग जोरि मुनिंद ॥ भो प्रभु मुझ मंत्री मरुभूत । क्यों नहिं आयो ब्राह्मनपूत ॥ १२१ ॥ यह सुनि अवधिवंत मुनिराय । सब बिरतंत कह्यो समुझाय ॥ राजा मन अति भयो मलीन । हा मंत्री सज्जनता लीन ॥ १२२ ॥ बरजत गयो दुष्टके पास । कुमरण लह्यो सह्यो बहु त्रास ॥ होनहार सोई विधि होय । ताहि मिटाय सकै नहिं कोय ॥ १२३ ॥ यों विचारि मनशोक मिटाय । साधु पूजि घर आये राय ॥ यह सुनि दुष्टसंग परिहरो । सुखदायक सतसंगति करो ॥ १२४ ॥ छप्पय--तपे तवापर आय, स्वातिजलबूंद विनठ्ठी । कमलपत्रपरसंग,वही मोतीसम दिठ्ठी ॥सागरसीप समीप, भयो मुक्ताफल सोई । संगतको परभाव, प्रगट देखो सब कोई ॥ यों नीचसंगतैं नीचफल, मध्यमतैं मध्यम सही॥ उत्तमसँजोगतैं जीवको, उत्तमफलप्रापति कही ॥१२५॥

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां मरुभूतभववर्णनं नामप्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽधिकारः।

दोहा--अश्वसेनकुलचंद्रमा, बामाउरअवतार ॥ बंदौं पारसपदकमल, भविजनअलि

आधार॥१॥ पद्धड़ी छंद ॥ इसभाँति तजे मरुभूति प्रान। अब सुनो कथा आगे सुजान॥
अतिसघन सल्लकी बन विशाल। जहँ तरुवर तुंग तमाल ताल ॥२॥ बहु बेलजाल छाये
निकुंज। कहिं सूखि परे तिन पत्रपुंज ॥ कहिं सिकताथल कहिं शुद्ध भूमि। कहिं कपि
तरुडारन रहे झूमि॥३॥ कहिं सजलथान कहिं गिरि उतंग। कहिं रीछ रोझ विचैरैं कुरंग॥
तिस थानक आरतध्यानदोष। उपज्यो वनहस्ती वज्रघोष ॥४॥ अति उन्नत मस्तक शि-
खर जास। मदजीवनझरना झरहि तास॥ दीसै तमवरन विशाल देह। मानो गिरिजंगम
दुरस येह ॥ ५ ॥ जाको तन नख शिख छोभवंत। मुसलोपम दीरघ धवल दंत॥ मदभी-
जे झलकैं जुगल गंड। छिन छिनसों फेरै सुंड दंड ॥ ६ ॥ जो वरुना नामैं कमठ नार।
पोदनपुर निवसै निराधार॥ सो मरि तिहि हथनी हुई आन। तिस संग रमै नित रंजमा-
न॥७॥कबही बहु खंडैं विरछबेलि। कबही रजरंजित करहिं केलि ॥८ ॥ कबही सरवरमें
तिरहिं जाय। कबही जल छिरकैं मत्तकाय॥ कबही मुखपंकज तोरि देय। कबही दहकादो
अंग लेय ॥ ९ ॥ दोहा--यों सुछंद क्रीड़ा करै, वरुना हथनी सत्थ॥ बन निवसै बारण
बली, मारणशील समत्थ ॥ १० ॥ चौपाई—एक दिवस अरविंद नरेश। ज्यों विमानमें
स्वर्ग सुरेश ॥ यों निजमहलन निवसै भूप। देखो बादल एक अनूप ॥ ११ ॥ तुंग शि-

खर अति उज्जल महा। मानो मंदिर ही बनि रहा॥ नरवै निरखि चिंतवै ताम। ऐसो ही करिये जिनधाम॥१२॥ लिखनहेत कागद कर लियो। इतने सो संरूप मिटिगयो॥ तब भूपति उर करै विचार। जगतरीति सब अथिर असार॥ १३॥ तन धन राज संपदा सबै। यों ही विनशि जायगी अबै॥ मोहमत्त प्रानी हठ गहै। अथिर वस्तुको थिर सरदहै॥ १४॥ जो पररूप पदारथजाति। ते अपने मानै दिनराति॥ भोगभाव सब दुखके हेत। तिनहीको जानै सुखखेत॥ १५॥ ज्यों माचन कोदों परभाव। जाय जथारथ दिष्टि स्वभाव॥ समझै पुरुष औरकी और। त्यों ही जगजीवनकी दौर॥१६॥ पुत्र कलत्र मित्रजन जेह। स्वारथ लगे सगे सब येह॥ सुपनसरूप सकल संभोग। निजहितहेत बिलंब न जोग॥१७॥ यों भूपति वैराग विचारि। डारी पोट परिग्रह भारि॥ राजसमाज पुत्रको दियो। सुगुरुसाखि नृप चारित लियो॥ १८॥ धरी दिगंबरमुद्रा सार। करै उचित आहार विहार॥ बारहविधि दुद्धर तपलीन। छहौंकायपीहर परवीन॥१९॥ एकसमय अरविंद सुनीश। सारथबाहीके संग ईश॥ शिखर सुमेरु बंदनाहेत। चले ईर्ज्यापथ पग देत॥ २०॥ गये सल्लकी वनमें लंघ। तहां जाय उतर्‍यो सब संघ॥ निजसिज्झायसमय मन लाय। प्रतिमायोग दियो मुनिराय॥२१॥तावत वज्रघोष गजरा-

ज। आयो कोपि कालसम गाज ॥ सकलसंगमें खलबल परी। भाजे लोग कूकि धुनि करी ॥२२॥ गजके धकै पर्‌यो जो कोय। सो प्राणी पहुँच्यो परलोय ॥ मारे तुरग तिसाये गैल। मारे मारगहारे बैल ॥ २३ ॥ मारे भूखे करहा खरे। मारे जन भाजे भय भरे ॥ इहिविधि हाथी करत सँवार। मुनि सनमुख आयो किलकार॥२५॥अति विकराल रोषविष भरो। मुनि मारनको उद्यम करो ॥ साधुसुदर्शन मेरु समान। सिरीवच्छ लच्छन उर थान ॥२६॥ सो सुचिन्ह गज देख्यो जाम। जाती सुमरन उपज्यो ताम ॥ ततखिन शाँत भयो गजईश। मुनिके चरन धर्‌यो निज शीश ॥२७॥ तब मुनि चवै मधुर धुनि महा। रे गयंद यह कीनो कहा ॥ हिंसा करम परम अघहेत। हिंसा दुरगतिके दुख देत ॥ २८॥ हिंसासों भमिये संसार। हिंसा निजपरको दुखकार ॥ तैं ये जीव विध्वंसे आय। पातकतें न डरो गजराय॥२८॥ देखि देखि अघके फल कौन। लई विप्रतें कुंजर जौन ॥ तू मंत्री मरुभूति सुजान। मैं अरविंद क्यों न पहिचान ॥ २९ ॥ धर्मविमुख आरतके दोष। पशु परजाय लई दुखकोष ॥ अब गजपति ये भाव निवारि। धर्मभावना हिरदे धारि ॥ ३० ॥ सम्यकदरशन पूरब जान। पालि अणुव्रत जब लों प्रान ॥ सुन करिंद उर कोमल थयो ॥ किये पापनिज निंदत भयो ॥ ३१ ॥ दोहा—फिर गुरु पायन सिर धरो।

धर्म गहन उर हेत ॥ तब सत्यारथ धर्म विधि, कही साधु समचेत ॥ ३२ ॥ चौपाई—सुन हस्ती शासन अनुकूल । सकल धरमको दर्शनमूल ॥ सब गुणरत्नकोष यह जान । मुक्ति धौरहरथुर सोपान ॥ ३२ ॥ तातें यह सबहीको सार । या विन सब आचरन असार ॥ जो सरदहै औरकी और । सो मिथ्यातभावकी दौर ॥ ३५ ॥ दोष अठारह वरजित देव । दुविधसंगत्यागी गुरु एव ॥ हिंसावरजित धरम अनूप । यह सरधा समकितको रूप ॥ ३६ ॥ दोहा—शंकादिक दूपन विना, आठों अंग समेत ॥ मोखविराछिअंकूर यह, उपजै भविउरखेत ॥ ३७ ॥ चौपाई—अंगहीन दर्शन जगमाहिं । भवदुखमेटन समरथ नाहिं ॥ अक्षरऊनमंत्र जो होय । विषबाधा मेटै नाहिं सोय ॥३८॥ तातैं यह निरनय उर आन । यह हिरदै सम्यक सरधान ॥ पंच उदंबर तीन मकार । इनको तजि बारह व्रत धार ॥ ३९॥ इहि विधि गुरु दीनो उपदेश । वारण हरपित भयो विशेष ॥ सुगुरुवचन सब हिरदै धरै । सम्यकपूरव व्रत आदरै ॥ ४० ॥ बार बार भुविसों सिर लाय । मुनिवर चरन नमै गजराय ॥ चले साधु तिहिं हित उपजाय । तब हाथी आयो पहुँचाय ॥४१॥ दोहा—करि उपगार मुनीश तहँ, कीनो सुविधि विहार । वन निवसै गजपति व्रती, सुगुरु सीख उर धार ॥ ४२ ॥ चालछंद—अब हस्ती संजम साधै । त्रसजीव

न भूल विराधै ॥ समभाव छिमा उर आनै । अरि मित्र बराबर जानै ॥ ४३ ॥ काया कसि इंद्री दंडै । साहस धरि प्रोषध मंडै ॥ सूखे तृण पल्लव भच्छै॥ परमार्दित मारग गच्छै ॥४४॥ हाथीगन डोह्यो पानी । सो पीवै गजपति ज्ञानी ॥ देखे विन पांव न राखै । तन पानी पंक न नाखै ॥ ४५ ॥ निजशील कभी नहिं खोवै । हथनीदिशि भूल न जोवै ॥ उपसर्ग सहै अति भारी । दुरध्यान तजै दुखकारी ॥४६॥ अघके भय अंग न हालै । दिढ़ धीर प्रतिज्ञा पालै ॥ चिरलों दुद्धर तप कीनो । बलहीन भयो तन छीनो ॥ ४७ ॥ परमेष्टि परमपद ध्यावै । ऐसें गज काल गमावै ॥ एकै दिन अधिक तिसायो । तब वेगवती तट आयो ॥ ४८ ॥ जल पीवन उद्यम कीधो । कादोद्रह कुंजर बीधो ॥ निहचै जब मरन विचारो । सन्यास सुधी तब धारो ॥ ४९ ॥ सो कमठ कलंकी मूवो । ता बन कुरकट अहि हूवो ॥ तिन आय डस्यो गज ज्ञाता । यह बैर महादुखदाता ॥ ५० ॥ दोहा—मरन करो गजराज तब, राखे निर्मल भाव ॥ सुरग बारवें सुर भयो, देखो धर्मप्रभाव ॥ ५१ ॥ चौपई—तहां स्वयंप्रभनाम विमान । शशिप्रभदेव भयो तिहिं थान ॥ अवधि जोड़ सब जान्यो देव । व्रतको फल पूरबभव भेव ॥ ५२ ॥ जिनशासन शंसो बहुभाय । धर्मविषै दिढ़ता मन लाय ॥ सदा सासते श्रीजिनधाम । पूजा करी तहाँ अभिराम ॥५३॥

महामेरु नंदीसुर आदि। पूजे तहँ जिनबिंब अनादि॥ कल्याणक पूजा विस्तरै। पुन्य-भँडार देव यों भरै॥ ५४॥ सोलह सागर आयु प्रमान। सादे तीन हाथ तन जान॥ सोलह सहस वर्ष जब जाहिं। अशन चाह उपजै उरमाहिं॥५५॥ अनुपम अम्रतमय आहार। मनसों भुंजै देवकुमार॥ आठद्गुन पख बीतैं जास। तब सो लेय सुगंध उसाँस॥ ५६॥ अवधि चतुर्थ अवनि परजंत। यही विक्रियाबल बिरतंत॥ अवधिछेत्र जावत परमान। होय विक्रिया तावत मान॥ ५७॥ दोहा—वदनचंद्र उपमा धरै, विकसित बारिज नैन। अंग अंग भूषण लसैं, सब बानक सुखदैन॥ ५८॥ सुंदर तन सुंदर वचन, सुंदर स्वर्गनिवास॥ सुंदर वनितामंडली, सुंदर सुरगन दास॥ ५९॥ अणिमा महिमा आदि दे, आठ ऋद्धि फल पाय। सुर सुछंदक्रीड़ा करै, जो मन बरतै आय॥ ६०॥ सुनत गीत संगीत धुनि, निरखत निरत रसाल। सुखसागरमें मगन सुर, जात न जानै काल॥ ६१॥ लोकोत्तम सब संपदा, अनुपम इंद्री भोग॥ सुफल फलो तपकल्पतरु, मिलो सकल सुखजोग॥ ६२॥ जैवंतो बरतो सदा, जैनधर्म जगमाहिं॥ जाके सेवत दुखसमुद, पशुपंछी तिर जाहिं॥ ६३॥ छंद-इसही जंबूदीप, पूर्वविदेहमझारे। पहुप कलावती देश, विकसत नैन नि-

हारे ॥ ६४ ॥ तहाँ विजयारध नाम, सोहै शैल रवानो । उज्जल वरन विशाल, रूपमई गिरराना ॥ ६५ ॥ जोजन परम पचास, भूमिविषै चौड़ाई ॥ तुंग पचीस प्रमाण, शोभा कही न जाई ॥ ६६ ॥ चौथाई- भूमांझ, नौ सिर कूट विराजैं ॥ सिद्धशिखर जिनधाम- मणिप्रतिमा तहां छाजैं ॥ ६७ ॥ उत्तम दच्छिन ओर, श्रेणी दोय जहां हैं । दोय गुफा गिर हेठ, अति अंधियार तहां हैं ॥ ६८ ॥ तापर स्वर्ग समान, लोकोत्तम पुर सोहै । वापी कूप तलाव, मंडित सुर मनमोहै ॥ ६९ ॥ विद्युतगति भूपाल, न्याय प्रजा प्रतिपालै । नीत निपुण धर्मज्ञ, संत सुमारग चालै ॥ ७० ॥ विद्युत माला नांव, ता घर नार सयानी । मानो मनमथ जोग, आय मिली रतिरानी ॥ ७१ ॥ तिनकै सो सुर आय, पुत्र भयो बड़भागी । अग्निवेग तसु नाम अति सुंदर सौभागी ॥ ७२ ॥ सोमप्रकृति परवीन, सकल सुलच्छनधारी । जिनपदभक्ति पुनीत, सबहीको सुखकारी ॥ ७३ ॥ राजसंपदा भोग, भुंजत पुन्य नियोगै । एक दिना इन साधु, भेंटे भाग सॅजोगै ॥ ७४ ॥ श्रवन सुन्यो उपदेश, भर जोवन वैराग्यो । आसन भव्य कुमार, संजमसों अनुराग्यो ॥ ७५ ॥ तजि परिग्रह गुरुसाख, पंचमहाव्रत लीने । दुद्धर तप आराध, रागादिक कृप कीने ॥ ७६ ॥ छीन किये परमाद, विचरैं एकविहारी । बारह अंग समुद्र, पार भयो

श्रुतधारी ॥ ७७ ॥ एक दिवस धरि योग, हिमगिरिकंदरमाहीं ! निवसै आतमलीन, बाहरकी सुधि नाहीं ॥ ७८ ॥ कुर्कुट नामा कमठचर, दुष्टनाग दुखदाय । सो मरि पंचम नरकमें, पर्यो पाप वशजाय ॥ ७९ ॥ छेदन भेदन आदि बहु, तहां वेदना घोर । सहस जीभसों वरनये, तऊ न आवै ओर ॥८०॥ ऐसे दुखमें कमठ जिय, कीनी पूरन आव । सत्रह सागर भुगतकै, निकसो क्रूरसुभाव ॥ ८१ ॥ चौपई—वैर भाव उरतैं नाहि टर्यो । फेरि आय अजगर अवतर्यो ॥ संसकारवश आयो तहां । हिम-गिरिगुफा मुनीश्वर जहां ॥ ८२ ॥ गिले साधु संजमधर धीर । समभावनतैं तज्यो शरीर ॥ लीनो स्वर्गसोलवें बास । जो नितनिरुपम भोगनिवास ॥ ८३ ॥ जन्म सेजतैं जोवन पाय । उठो अमर संपूरण काय ॥ देख संपदा विस्मय भयो । अवधि होत संशय सब गयो ॥ ८४ ॥ पूजा करी जिनालय जाय । भाव भक्ति रोमांचित काय पूरवसंचित पुन्यसँजोग । करै तहां सुर वांछित भोग॥ ८५॥ गये वर्ष बाईस हजार । भो-जन भुंजै मनसाहार ॥ तावत मान पक्ष जब जाय । तब ऊसाँसो दिशिमहकाय॥८६॥ देखै पंचम भूपरजंत । अवधिज्ञानवल मूरतिवंत । तितने मान विक्रिया करै । गमनागमन हिये जब धरै ॥ ८७ ॥ तीन हाथ अति सुंदर काय । लेश्या शुकल महा

सुखदाय ॥ थिति सागर बाईस विशाल । इहिविधि बीतै सुखमें काल ॥ ८८ ॥ दोहा—आदि अंत जिस धर्मसों, सुखी होंय सब जीव । ताको तनमन वचनकर, हे नर सेव सदीव ॥ ८९ ॥

इतिश्रीमत्पार्श्वनाथपुराणभाषायां गजस्वर्गगमनविद्याधरभवविद्युत्प्रभदेव-
भववर्णनं नाम द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

तृतीयोऽधिकारः ।

दोहा—अश्वसेनकुलकमलरवि, वामाकुँवर कृपाल ॥ बंदौं पारसचरनयुग, सरनागत प्रतिपाल ॥ १ ॥ चौपई—जंबूदीप बसै बहु फेर । जाके मध्य सुदर्शन मेर ॥ कंचनमणिमय अतुल सुहाग । ता पर्वतके पच्छिम भाग ॥ २ ॥ अपर-विदेह विराजै खेत । सो नित चौथे काल समेत ॥ पदपद जहां दिपैं जिनधाम । नहीं कुदेवनको विश्राम ॥ ३ ॥ जैनजतीजन दीखैं सोय । नहीं कुलिंगी दीखै कोय ॥ उत्तमधर्म सदा थिर रहै । हिंसाधर्म प्रकाश न लहै ॥ ४ ॥ तीनों वरण बसैं जहां लोय । ब्राह्मणवरण कभी नहिं होय ॥ तामें पद्मदेश अभिराम ॥

सोहै नगर अश्वपुरनाम ॥ ५ ॥ तहां वज्रवीरज भूपाल । न्यायै प्रजा करै प्रतिपाल ॥
गुणनिवास सूरजसम दिपै । आन भूप उडगणछबि छिपै ॥ ६ ॥ विजया नामैं नरपति
नारि । रूपवंत रतिकी उनहारि ॥ पटरानी सबमें परधान, पूरबपुन्यउदय गुणखान॥७॥
एक समय निशिपच्छिमजाम । पंच सुपन देखे अभिराम ॥ मेरु दिवाकर चंद्र विमान ।
सजल सरोवर सिंधुसमान ॥ ८ ॥ प्रात भये आई पिय पास । विकसतलोचन हिये हु-
लास ॥ रात सुपन अवलोके जेह । नृप आगैं परकाशे तेह ॥ ९ ॥ तब नरिन्द्र बोले वि-
कसाय । सुंदर वचन श्रवन सुखदाय ॥ सुनि रानी इनको फल जोय । पुत्र प्रधान तु-
म्हारे होय ॥ १० ॥ ऐसे वच पियके अवधार । अति आनंद भयो नृपनार । अचुत
स्वर्ग तैं सो सुर चयो । वज्रनाभि नामा सुत भयो॥११॥ चौसठ लच्छन लच्छित काय ।
पुन्ययोग जिमि उतरो आय॥ जन्ममहोच्छव राजा कियो । जिन पूजे याचक धन दियो
॥ १२॥ बढ़ै बाल जिमि बालक चंद । सुजनलोकलोचनसुखकंद ॥ क्रम क्रमसों शिशु
भयो कुमार । पढ़ लीनी विद्या सब सार ॥ १३ ॥ जो वनवंत कुमर जब भयो । निर्मल ॥१२॥
नीतिपंथ पग ठयो॥रूप तेज बलबुद्धि विज्ञान । सकल सारगुणरत्ननिधान॥१४॥कीनी
पिता व्याहविधियोग । राजसुता बहु बरीं मनोग ॥ क्रमकर कुमर पितापद पाय । राज

करै थुति करिय न जाय॥१५॥ पुन्यजोग आयुधगृह जहां। चक्ररतन वर उपज्यो तहां॥
छहों खंडवरती भूपाल। वश कीने नाये निजभाल ॥ १६ ॥ देवदैत्य विद्याधर
नये। नृप मलेच्छ सब सेवक भये॥ बढ़ी संपदा पुन्यसँयोग। इन्द्रसमान करै सुखभोग
॥ १७ ॥ दोहा—संपूरण सुख भोगवै, वज्रनाभि चक्रेश ॥ तिस विभूतिबल वरन-
ऊ, यथाशक्ति लवलेश ॥ १८ ॥ चौपई—सहसबतीस सासते देश । धनकनकं-
चन भरे विशेष ॥ विपुल बाड़ बेढ़े चहुंओर। ते सब गांव छानवै कोर ॥ १९ ॥
कोट कोट दरवाजे चार । ऐसे पुर छब्बीसहजार ॥ जिनको लगैं पांचसौ
गांव। ते अटंब चउसहस सुठांव ॥ २० ॥ पर्वत और नदीके पेट । सोलह सहस कहे
वेखेट॥ कर्वट नाम सहस चौवीस । केवल गिरिवर बेढ़े दीप ॥ २१ ॥ पत्तन
अड़तालीस हजार । रत्न जहां उपजैं अतिसार ॥ एकलाख द्रोणामुख बीर । सहस
घाट सागरके तीर ॥ २२ ॥ गिरि ऊपर संबाहन जान। चौदह सहस मनोहर थान ॥
अट्ठाईस हजार अशेश। दुर्ग जहां रिपुको न प्रवेश ॥ २३ ॥ उपसमुद्रके मध्य महान।
अंतर दीप छपन परिमान ॥ रत्नाकर छब्बीसहजार। बहु विधि सार वस्तुभंडार ॥२४॥
रत्नकुक्ष सुंदर सातसै। रत्नधरा थानक जहँ लसै ॥ इन पुरसों बस राजैं खरे। जैनधाम

धरनी जनभरे ॥२५॥ वर गयंद चौरासीलाख । इतने ही रथ आगम साख ॥ तेज तुरंग अठारह कोर । जे बढ़ चलैं पवनतैं जोर ॥२६॥ पुनि चौरासी कोटि प्रमाण। पायक संव बड़े बलवान ॥ सहस छानवै वनिता गेह। तिनको अब विवरन सुन लेह ॥२७॥ आर-जखंड बसैं नरईश। तिनकी कन्या सहसबतीस ॥ इतनी ही अतिरूप रसाल। विद्याधर-पुत्री गुणमाल ॥ २८ ॥ पुनि मलेच्छ भूपनकी जान। राजकुमारी तावत मान ॥ नाटकगण बत्तीस हजार। चक्री नृपको सुखदातार ॥ २९ ॥ आदि शरीर आदि संठान। पूर्वकथित तन लच्छन जान ॥ बहुविधि विंजनसहित मनोग। हेमवरन तन सहज निरोग ॥ ३० ॥ छहों खंड भूपति बलरास। तिनसों अधिक देहबल जास ॥ सहसबतीस चरनतल रमैं। मुकटबंधराजा नित नमैं ॥ ३१ ॥ भूपमलेच्छ छोरि अभिमान। सहस अठारह मानैं आन ॥ पुनि गणवद्ध बखानैं देव। सोलह सहस करैं नृप सेव ॥ ३२ ॥ कोटि थाल कंचननिर्मान। लाखकोटि हलसहित किसान ॥ नाना वरन गऊकुल भरे। तीनकोटि व्रज आगम धरे ॥ ३३ ॥ दोहा--अब नवनिधिके नाम गुण, सुनो जथारथ-रूप। जैनी विन जानै नहीं,जिनको सहज स्वरूप॥३४॥ चौपई—प्रथम कालनिधि शुभ आकार। सो अनेक पुस्तकदातार ॥ महाकालनिधि दूजी कही। याकी महिमा सुनि

यो सही ॥ ३५ ॥ असि मसि आदिक साधन जोग। सामिग्री सब देय मनोग ॥ तीजी निधि नैसर्प महान। नाना विधि भाजनकी खान ॥ ३६ ॥ पांडुक नाम चतुरथी होय। सब रसधान समप्पै सोय ॥ पदम पंचमी सुकृतखेत। वांछित वसन निरंतर देत ॥ ३७ ॥ मानव नाम छठी निधि जेह। आयुधजात जन्मभू तेह ॥ सप्तम सुभग पिंगला नाम। बहुभूषण आपै अभिराम ॥ ३८ ॥ शंखनिधान आठमी गनी। सब वाजित्र भूमिका बनी ॥ सर्वरत्ननवमी निधि सार। सो नित सर्वरत्नभंडार ॥ ३९ ॥ दोहा—ये नौनिध चक्रेशकै, शकटाकृत संठान। आठचक्रसंजुक्त शुभ, चौखूँटी सब जान ॥ ४० ॥ जोजन आठ उतंग अति, नवजोजन विस्तार। बारह मित दीरघ सकल, बसैं गगन निरधार ॥ ४१ ॥ एक एकके सहसमित, रखवाले जखदेव। ये निधि नरपति पुन्यसौं, सुखदायक स्वयमेव ॥ ४२ ॥ चौपई—प्रथमसुदरशन चक्रपसत्थ। छहोखंडसाधन समरत्थ ॥ चंडवेग दिढ़ दंड दुतीय। जिसबल खुलै गुफा गिरिकीय ॥ ४३ ॥ चर्मरत्न सो तृतिय निवेद। महा वज्रमय नीर अभेद ॥ चतुरथ चूड़ामनि मनि रैन। अंधकारनाशक सुखदैन ॥ ४४ ॥ पंचमरत्न काँकिणी जान। चिंतामणि जाको अभिधान ॥ इन दोनोंतैं गुफामँझार। शशि सूरज

लखिये निरधार ॥ ४५ ॥ सूरजप्रभ शुभछत्र महान । सो अति जगमगाय ज्यों भान-सौनंदक आसि अधिक प्रचंड । डरै देखि बैरी बलवंड ॥ ४६ ॥ पुनि अजोध सेनापति सूर । जो दिगविजय करै बल भूर॥ बुधसागर प्रोहित परवीन । बुधिनिधान विद्यागुण-लीन ॥ ४७ ॥ थपितभद्रमुख नाम महंत । शिलपकलाकोविद गुणवंत ॥ कामवृद्ध गृहपति विख्यात । सबगृह काज करै दिनरात ॥ ४८ ॥ व्याल विजयगिरि अति अ-भिराम । तुरग तेज पवनंजय नाम॥ वनिता नाम सुभद्रा कही । चूरै वज्र पानिसों सही ॥ ४९ ॥ महादेहबल धारै सोय । जा पटतर तिय अवर न कोय ॥ मुख्यरत्न यह चौदह जान । और रत्नको कौन प्रमान ॥ ५० ॥ दोहा—राजअंग चौदह रतन, विविधि भां-ति सुखकार ॥ जिनकी सुर सेवा करैं, पुन्यतरोवर डार ॥ ५१ ॥ चक्र छत्र आसि दंड मणि, चर्म कांकणी नाम । सातरत्न निर्जीव यह, चक्रवर्तिके धाम ॥ ५२ ॥ सेनापति गृहपति थपित, प्रोहित नाग तुरंग । वनिता मिलि सातों रतन, ये सजीव सरवंग ॥ ५३ ॥ चक्र छत्र आसि दंड ये, उपजैं आयुधथान ॥ चर्म कांकणी मणि-रतन, श्रीगृह उतपाति जान ॥५४॥ गजतुरंग तिय तीन ये, रूपाचलतैं होत । चार रतन बाकी विमल, निजपुर लहैं उदोत ॥ ५५ ॥ चौपई—मुख्य संपदाको विरतंत ।

आगै और सुनो मतिवंत ॥ सिंहवाहनी सेज मनोग। सिंहारूढ़ चक्कवै जोग ॥५६॥ आसन तुंग अनुत्तर नाम। माणिकजालजटित अभिराम ॥ अनुपम नामा चमर अनूप। गंगातरलतरंगसरूप ॥ ५७ ॥ विद्युतिद्युति मणिकुंडल जोट । छिपै और द्युति जाकी ओट ॥ कवच अभेद अभेद महान। जामैं भिदै न बैरीवान ॥ ५८ ॥ विषमोचनी पादुका दोय। परपदसों विष मुंचै सोय ॥ अजितंजै रथ महारवन्न ।जलपै थलवत करै गवन्न ॥ ५९ ॥ वज्रकांड चक्रीधर चाप। जाहि चढ़ावत नरपति आप ॥ बाण अमोघ जबै कर लेत। रणमें सदा विजय वर देत ॥ ६० ॥ विकट वज्रतुंडा अभिधान। शत्रुखंडनी शकती जान ॥ सिंहाटक वरछी विकराल। रत्नदंड लागी रिपुकाल ॥६१॥ लोहवाहनी तीखनछुरी। जिमि चमकै चपलाद्युति दुरी॥ ये सब वस्तुजाति भूमाहिं। चक्री छूट और घर नाहिं ॥ ६२ ॥ दोहा—मनोवेग नामा कणय, ग्रंथन कह्यो विख्यात। खेटभूतमुख नाम है, दोनों आयुध जात ॥ ६३ ॥ चौपई—आनंदन भेरी दश दोय। बारह जोजन लों धुनि होय ॥ वज्रघोष पुनि जिनको नाम। बारह पटह नृपतिके धाम ॥ ६४ ॥ वर गंभीरावर्त गरीश। शोभनरूप शंख चौबीस ॥ नानावरन धुजा रमनीय। अड़तालीस कोटमित कीय ॥ ६५ ॥ इत्यादिक बहुवस्तु अपार। वरनन करत न लहिये

पार्र ॥ महलतनी रचना असमान । जिनमत कही सो लीजो जान ॥ ६६ ॥ दोहा--चक्री नृपकी संपदा, कहै कहां लों कोय ॥ पुन्यबेल पूरब बई, फली सांवणी सोय ॥ ६७ ॥ इहि विधि वज्रनाभि नरराय । करै भोग चक्रीपद पाय ॥ धर्मध्यान अहनिशि आचरै। निर्मल नीतिपंथ पग धरै ॥६८॥ पूजा करै जिनालय जाय । पूजै सदा सो गुरुके पाय॥ सामायिक साधै अवनास । करै परव प्रोषधउपवास ॥६९॥ चारप्रकार दान नित देय । औगुण त्यागै गुण गह लेय ॥ सप्तशील पालै बड़भाग । मनवचकाय धर्मसों राग ॥७०॥ सिंहासनपर बैठि नरेश । करै पुनीत धर्म उपदेश ॥ सुजन सभाजन किंकरलोग । देय सुहिताशिक्षा सब जोग ॥७१॥ दोहा—बीजराखि फल भोगवें, ज्यों किसान जगमाहिं। त्यों चक्रीनृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं ॥ ७२॥ (नरेन्द्र--जोगीरासा) इहिविधि राज करै नरनायक, भोगै पुन्य विशालो । सुखसागरमें रमत निरंतर, जात न जानै कालो ॥ एक दिना शुभकर्मसँजोगे, छेमंकर मुनि वंदे । देखे श्रीगुरुके पदपंकज, लोचन अलि आनद ॥ ७४ ॥ तीन प्रदछना दे सिर नायो, करि पूजा थुति कीनी । साधु समीप विनय कर बैठो, पायनमें दिठ दीनी ॥ ७५ ॥ गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमनि, सुनि राजा वरोग ॥ राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥ ७६ ॥ मुनिसूरजकथनी

किरनावलि, लगत भरमबुध भागी। भवतन भोग सरूप विचारैं, परम धरम अनुरागी ॥ ७७ ॥ इस संसार महावनभीतर, भ्रमते ओर न आवे । जामनमरनजरादों दाझ्यो, जीव महादुख पावे ॥ ७८ कबही जाय नरकाथिति भुंजै, छेदन भेदन भारी । कबही पशु परजाय धरै तहँ, वध बंधन भयकारी ॥ ७९ ॥ सुरगतिमें परसंपति देखे, रागउदयदुख होई । मानुष जौनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नाहिं कोई ॥ ८० ॥ कोई इष्टवियोगी विलखै, कोई अशुभसँयोगी । कोइ दीन दारिद्र विगूचे, कोई तनके रोगी ॥ ८१ ॥ किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई । किसहीके दुख बाहर दीखै, किसही उर दुचिताई ॥ ८२ ॥ कोई पुत्र विना नित झूरै, होय मरै तब रोवै। खोटी संततिसों दुख उपजै। क्यों प्रानी सुख सोवै ॥ ८३ ॥ पुन्यउदय जिनके तिनको भी, नाहिं सदा सुख साता । यों जगवास जथारथ देखत । सब दीखै दुखदाता॥८४॥ जो संसारविषै सुख होतो, तीर्थंकर क्यों त्यागैं । काहेको शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागैं ॥ ८५ ॥ देह अपावन अथिर घिनावन । यामैं सार न कोई। सागरके जलसों शुचि कीजै, तौ भी शुचि नाहिं होई ॥ ८६ ॥ सात कुधातमई मलमूरति, चाम पलेटी सोहै। अंतर देखत या सम जगमें, और अपावन को है ॥ ८७ ॥

नवमलद्वार स्रवैं निशिवासर, नांव लिये घिन आवै । व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां, कौन सुधी सुख पावै॥ ८८॥ पोखत तौ दुख दोख करै सब, सोखत सुख उपजावै । दुर्जन देहस्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥ ८९ ॥ राचनजोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है । यह तन पाय महा तप कीजै, यामें सार यही है ॥ ॥९०॥ भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, बैरी हैं जगजीके । बेरस होहिं विपाक समै अति, सेवत लागैं नीके ॥ ९१ ॥ वज्र अग्नि विषसों विषधरसों, ये अधिके दुखदाई । धर्मरतनके चोर चपल ये, दुर्गतिपंथ सहाई ॥ ९२ ॥ ज्यों ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै । तृष्णा नागनि त्यों त्यों डंकै, लहर जहरकी आवै ॥ ९३ ॥ मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै । ज्यों कोई जन खाय धतूरो, सो सब कंचन मानै ॥ ९४॥ मैं चक्री पद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे तौ भी तनक भये नहि पूरन, भोगमनोरथ मेरे ॥ ९५ ॥ राज समाज महा अघकारन, बैर बढ़ावनहारा । वेश्यासम लछमी अति चंचल, याको कौन पत्यारा ॥ ९६ ॥ मोह महा रिपु बैर विचारा, जगजिय संकट डाले । घर काराग्रह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवाले ॥ ९७ ॥ सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये जियके हितकारी । ये ही सार असार और

सब, यह चक्री चितधारी ॥ ९८ ॥ छोड़े चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी । कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥९९॥इत्यादिक सम्मति बहुतेरी, जीरण तृण ज्यों त्यागी । नीति विचार नियोगी सुतको, राज दियो बड़भागी ॥ १०० ॥ होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषन वसन उतारे । श्री गुरुचरन धरी जिन मुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥१०१॥धन यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धन यह धीरज भारी । ऐसी संपति छोरि बसे बन, तिन पद ढोक हमारी॥१०२॥दोहा--परिग्रहपोट उतारि सब, लीनो चारित पंथ। निज सुभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ॥ १०३ ॥चौपई—बारहविधि दुद्धरतप करै। दशलाछनी धरम अनुसरै ॥ पढ़ै अंगपूरव श्रुतिसार । एकाकी विचरै अनगार ॥ १०४ ॥ ग्रीषमकाल बसै गिरिशीश । बर्षामें तरुतल मुनिईश ॥ शीतमास तटनीतट रहैं । ध्यान अगिनिमें कर्मनि दहैं ॥ १०५ ॥ एक दिना बनमें थिर काय । जोग दिये ठाड़े मुनिराय ॥ कमठजीव अजगरतन छोरि । उपज्यो छठे नरक अतिघोर ॥ १०६ ॥ थिति सागर बाईस प्रमाण । देखे दुख जानै भगवान॥पूरनआयु भोगकर मरयो । बनहिं कुरंग भील अवतरयो॥१०७॥कालसरूप वदन विकराल । वनचर जीवनको छयकाल॥ धनुषबान लीये निजपान । भ्रमैं मांसलोभी बन थान ॥ १०८ ॥ सो पापी चल आयो

तहां । जोगारूढ खड़े मुनि जहां ॥ शत्रुमित्रसों समकर भाव । लगे आपमें शुद्धसुभाव ॥ १०९ ॥ कुंकुम कादो महल मसान । कोमल सेज कठिन पाषान ॥ कंचन काच दुष्ट अरु दास । जीवन मरन बराबर जास॥११०॥ निर्ममत्त तनकी सुधि नाहि । सातों भय वरजित उरमाहिं ॥ देखि दिगंबर कोप्यो नीच । कंपित अधर दशनतल मींच ॥ १११ ॥ तान कमान कान लों लई । तीखन शर मार्यो निर्दई ॥ मुनिवर धर्मध्यान आराध । दुखमें धीरज तजो न साध ॥ ११२ ॥ दर्शनज्ञानचरन तप सार । चारों आराधन चित धार ॥ देहत्याग तब भये मुनिंद्र । मध्यम ग्रैवेयक अहमिंद्र ॥ ११३ ॥ तहँ उत्पादशिला निकलंक । हंसतूलयुत रत्न पलंक ॥ उठो सेज तजि दीपत काय । अलपकालमें जोवन पाय ॥ ११४ ॥ देखै दिशि अतिविस्मयरूप । महा मनोग विमान अनूप ॥ अतुल तेज अहमिंद्र निहार । अवधिज्ञान उपज्यो तिहिं बार॥११५॥जान्यो सब पूरनभवभेव । चारित वृच्छ फल्यो सुखदेव ॥ अनुपम आठों दरब सँजोय । रत्नबिंब पूजे थिर होय ॥ ११६ ॥ आयो सुर हर्षित निजथान । महारिद्ध महिमा असमान ॥ तीनभवनवरती जिनधाम । भावभक्ति नित करै प्रणाम ॥ ११७ ॥ तीर्थंकर केवल समुदाय । निजथानक थित पूजे पाय॥पंचकल्यानक काल विचारि । प्रणमैं हस्तकमल सिरधारि॥११८॥ दोहा—अनाहूत

अहमिंद्र गण, आवैं सहज सुभाव । धर्मकथा निजगुणकथन, करैं सनेह बढ़ाव ॥११९॥ कबहीं रत्नबिमानमें, कबहीं महलमझार । कबहीं बनक्रीड़ा करैं, मिलि अहमिंद्र कुमार ॥ १२० ॥ और बास निज बासतैं, उत्तम दीसै नाहिं ॥ ताहीतैं ते अमरगण, और कहीं नहिं जाहिं ॥१२१॥ प्रीत भरे गुण आगरे, सुभग सोम श्रीवन्त । सातधात मलसों रहित, लेश्या शुकल धरंत ॥१२२॥ सब समान संपति धनी, सब मानें हम इन्द्र । कला ज्ञान विज्ञानसम, ऐसे सुर अहमिन्द्र ॥ १२३ ॥ शुकल वरन तनमनहरन, दोय हाथ परिमान । मानो प्रतिमा फटककी, महातेज द्युतिवान ॥ १२४ ॥ कामदाह उरमें नहीं, नहिं वनिताको राग । कल्पलोकके सुर सुखी, असंख्यातवें भाग ॥ १२५ ॥ सत्ताईस हजार मित, वर्ष बीति जब जाहिं । मानसीक आहारकी, रुचि उपजै मनमाहिं ॥ ॥१२६॥ साढ़े तेरह पच्छपर, लेत सुगंध उसास । छठी अवनि लों जिन कही, अवधिविक्रिया जास ॥१२७॥ सागर सत्ताईस मित, परम आयु तिहिं थान । सुभग सुभद्र विमानमें यों सुख करै महान ॥ १२८ ॥ चौपई—अब सो भील महादुख दाय । रुद्रध्यानसों छोड़ी काय ॥ मुनिहत्या पातकतैं मर्‌यो । चरम शुभ्रसागरमें पर्‌यो॥१२९॥ दोहा—कथा तहांके कष्टकी, को कर सकै बखान । भुगतै सो जानै सही, कै जानै भगवान ॥

॥ १३० ॥ दोहा--जन्मथान सब नरकमें, अंध अधोमुख जौन । घँटाकार घिनावनी, दुसह बास दुखभौन ॥ १३१ ॥ तिनमें उपजैं नारकी, तलसिर ऊपर पाय । विषम वज्र कंटकमई, परें भूमिपर आय॥ १३२॥ जो विषैल बीछू सहस, लगे देह दुख होय । नरक धराके परसतैं, सरस वेदना सोय ॥ १३३ ॥ तहां परत परवान अति, हाहा करते एम । ऊँचे उछलैं नारकी, तये तवा तिल जेम ॥ १३४ ॥ सोरठा—नरक सातवेंमाहिं, उछलन जोजन पाँचसौ । और जिनागममाहिं, जथाजोग सब जानियो ॥ १३५ ॥ दोहा—फेर आन भूपर परै, और कहां उड़िजाहिं । छिन्नभिन्नतन अति दुखित, लोट लोट बिल-लाहिं ॥ १३६ ॥ सब दिश देखि अपूर्व थल, चकित चित भयवान । मन सोचै मैं कौनहूं पर्‍यो कहां मैं आन ॥ १३७॥ कौन भयानक भूमि यह, सब दुखथानक निंद । रुद्र-रूप ये कौन हैं, निठुर नारकीवृंद ॥ १३८ ॥ काले बरन कराल मुख, गुंजा लोचन धार । हुंडक डील डरावने, करैं मार ही मार ॥ १३९ ॥ सुजन न कोई दिठ परै, शरन न सेवक कोय । ह्यां सो कछु सूझै नहीं, जासों छिन सुख होय ॥ १४० ॥ होत विभंगा अवधि तब, निजपरको दुखकार । नरक कूपमें आपको, पर्‍यो जान निरधार ॥१४१॥ पूरवपापकलाप सब, आप जाय कर लेय । तब विलापकी ताप तप, पश्चात्ताप करेय॥१४२॥

धाय धाय मारन उठैं, महादुष्ट दुरभेख १६७ ॥ सब
नारकि निर्दई, नयो नारकी देख। धाय धाय मारन उठैं, महादुष्ट दुरभेख। दुःख देनको अति निपुन, निठुर नपुंसक-
क्रोधी कलही सकल, सबके नेत्र फुलिंग। दुःख देनको अति निपुन, निठुर नपुंसक-लिंग ॥ १६८॥ कुंत कृपान कमान शर, शकती मुगदर दंड। इत्यादिक आयुध विविधि-
लिये हाथ परचंड ॥ १६९ ॥ कह कठोर दुर्वचन बहु, तिल तिल खंडैं काय।
सो तबही ततकाल तन, पारे वत मिल जाय ॥ १७० ॥ काँटेकर छेदैं चरन, भेदैं मरम
विचारि। अस्थिजाल चूरन करैं, कुचलैं खाल उपारि ॥ १७१ ॥ चीरैं करवत काठ
ज्यों, फारैं पकरि कुठार ॥ तोड़ैं अंतरमालिका, अंतर उदर विदार ॥ १७२ ॥ पेलैं
कोल्हू मेलकै, पीसैं घरटी घाल । तावैं ताते तेलमें, दहैं दहन परजाल ॥ १७३ ॥
पकरि पांय पटकैं पुहुमि, झटकि परसपर लेहिं। कंटक सेज सुवावहीं, शूलीपर धरि देहिं
॥१७४॥ घसैं सकंटक रूखसों, बैतरनी ले जाहिं। घायल घेरि घसीटियैं, किंचित करुणा
नाहिं ॥ १७५ ॥ केई रक्त चुवाव तन, विहबल भाजैं ताम । पर्वत अन्तर जायके,
करैं बैठि विश्राम ॥ १७६ ॥ तहां भयानक नारकी, धारि विक्रिया भेष। बाघ सिंह
अहि रूपसों, दौरैं देह विशेष ॥ १७७ ॥ केई करसों पांय गहि, गिरसों देहिं गिराय।
परैं आन दुर्भूमिपर, खंड खंड हो जाय ॥ १७८ ॥ दुखमों कायर चित्तकरि, ढूंढ़ें शरन

सहाय। वे अति निर्दय घातकी, यह अति दीन विवाय ॥ १७९ ॥ व्रण वेदन नीकी करैं, ऐसे कारि विश्वास । सींचैं खारे नीरसों, जो अति उपजै त्रास ॥ १८० ॥ केई जकरि जँजीरसों, खैंचि थंभ आतिबांधि । शुध कराय अब मारिये, नाना आयुध साधि ॥ १८१ ॥ जिन उद्धत अभिमानसों, कीने परभव पाप ॥ तपतलोहआसननिषै, त्रासदिखावैं थाप ॥ १८२॥ ताती पुतली लोहकी, लाय लगावैं अंग । प्रीतकरी जिन पूर्वभव, परकामिनिके संग ॥ १८३ ॥ लोचनदोषी जानिकै, लोचन लेहिं निकाल । मदिरापानी पुरुषको, प्यावैं तांबो गाल ॥ १८४ ॥ जिन अंगनसों अघ किये, तेई छेदे जाहिं पल भच्छनके पापतैं, तोड़ि तोड़ि तन खाहिं ॥ १८५ ॥ केई पूरव बैरके, याद दिवावें नाम । कह दुर्वचन अनेक विधि, करैं कोप संग्राम ॥ १८६ ॥ भये विक्रिया देहसों, बहुविधि आयुध जात । तिनहीसों अति रिस भरे, करैं परस्पर घात ॥ १८७ ॥ शिथिल होय चिर युद्धतैं, दीन नारकी जाम । हिंसानंदी असुर दुठ, आन भिरावैं ताम ॥१८८॥ सोरठा—तृतिय नरक परयंत, असुरादिक दुख देत हैं । भाख्यो जैनसिधंत, असुरगमन आगे नहीं ॥ १८९ ॥ दोहा—इहिविधि नरक निवासमें, चैन एकपल नाहिं । तपैं निरंतर नारकी, दुखदावानलमाहिं ॥ १९० ॥ मार मार सुनिये सदा, छेत्र महा दुरगंध ॥

मैं मानुष परजाय धरि, धन–जोबन–मदलीन। अधम काज ऐसे किये, नरकवास जिन दीन ॥ १४३ ॥ सरसोंसम सुखहेत तब, भयो लंपटी जान। ताहीको अब फल लग्यो, यह दुख मेरु समान ॥ १४४ ॥ कंदमूल मद मांस मधु, और अभच्छ अनेक। अच्छन वश भच्छन किये, अटक न मानी एक ॥ १४५ ॥ जल थल नभचारी विविध, विल-बासी बहु जीव। मैं पापी अपराध बिन, मारे दीन अतीव ॥ १४६ ॥ नगरदाह कीनो निठुर, गाम जलाये जान। अटवीमें दीनी आगिन, हिंसा कर सुखमान ॥ १४७ ॥ अपने इंद्रीलोभको, बोल्यो मृषा मलीन। कलपित ग्रंथ बनायकै, बहकाये बहुदीन॥१४८॥ दावघातपरपंचसों, परलछमी हरलीय। छलबल हठबल दरबबल, परवनिता वश कीय ॥ १४९ ॥ बढ़ी परिग्रहपोट सिर, घटी न घटकी चाह। ज्यों ईंधनके जोगसों, अगिन करै अतिदाह ॥ १५० ॥ विन छान्यो पानी पियो, निश भुंज्यौ अविचार। देव-दरब खायो सही, रुद्रध्यान उर धार ॥ १५१ ॥ कीनी सेव कुदेवकी, कुगुरुनको गुरु मानि। तिनहींके उपदेशसों, पशु होमे हित जानि ॥ १५२ ॥ दियो न उत्तमदान मैं, लियो न संजमभार। पियो मूढ़ मिथ्यातमद, कियो न तप जगसार ॥ १५३ ॥ जो धर्मीजन दयाकरि, दीनी शीख निहोर। मैं तिनसों रिस करि अधम, भाषे बचन

कठोर ॥ १५४ ॥ करी कमाई परजनम, सो आई मुझ तीर । हा हा अब कैसे धरूं, नरक-धरामें धीर ॥१५५॥ दुर्लभ नरभव पायकें, केई पुरुष प्रधान । तपकरि साधें स्वर्ग शिव, मैं अभागि यह थान ॥ १५६ ॥ पूरब संतन यों कही, करनी चालै लार । सो अब आंखन देखिये, तब न करी निरधार ॥ १५७ ॥ जिस कुटुंबके हेत में, कीने बहुविधि पाप । ते सब साथी बीछड़े, पर्यो नरकमें आप ॥ १५८ ॥ मेरी लछमी खानकों, सीरी हुए अनेक । अब इस विपत विलापमें, कोइ न दीखै एक ॥ १५९॥ सारस सरवर तजि गये, सूखो नीर निराट । फलविन विरख विलोकिकैं, पंछी लागे बाट ॥ १६० ॥ पंचकरण पोषण अरथ, अनरथ किये अपार । ते रिपु ज्यों न्यारे भये, मोहि नरकमें डार ॥१६१॥ तब तिलभर दुख सहनको, हुतो अधीरज भाव । अब ये कैसे दुसह दुख, भरिहों दीरघ आव ॥ १६२ ॥ अघ वैरीके वश पर्यो, कहा करूं कित जाउं । सुनै कौन पूछूं किसे, शरन कौन इस ठाउं ॥ १६३ ॥ यहां कछू दुख हतनको, उक्त उपाव न मूर । थिति विन विपत समुद्र यह, कब तिरहों तट दूर ॥ १६४ ॥ ऐसी चिंता करत हू, बढ़ै बेदना एम । घीव तेलके जोगतें, पावक प्रज्वलै जेम ॥ १६५ ॥ सोरठा—इहिंविधि पूरव पाप, प्रथम नारकी शुधि करैं । दुखउपजावन जाप, होय विभंगा अवधितैं ॥ १६६ ॥ दोहा—तब ही

बहै बात असुहावनी, असुध छेत्र सम्बंध ॥ १९१ तीनलोकको नाज सब, जो भच्छन-कर लेय। तौभी भूख न उपशमै, कौन एक कन देय ॥ १९२ ॥ सागरके जलसों जहां, पीवत प्यास न जाय। लहै न पानी बूंदभर, दहै निरंतर काय ॥ १९३ ॥ वायपित्त कफजनित जे, रोगजात जावंत । तिन सबहीको नरकमें, उदय कह्यो भगवंत ॥१९४॥ कटुतुंबीसो कटुक रस, करवतकीसी फांस । जिनकी मृतक मंझारसों, अधिक देह-दुरबास ॥ १९५ ॥ योजन लाख प्रमाण जहँ, लोहपिंड गल जाय। ऐसीही अति उष्णता, ऐसी शीत सुभाय ॥ १९६ ॥ छंद अरिल्ल—पंकप्रभा परजंत उशनता अति कही। धूमप्रभामें शीतउष्ण दोनो सही ॥ छ्टी सातमी भूमि न केवल शीत है। ताकी उपमा नाहिं महा विपरीत है ॥ १९७ ॥ दोहा—श्वान श्याल मंजारकी, पड़ी कलेवर रास। मास वसा अरु रुधिरको, कादो जहां कुबास ॥ १९८ ॥ ठाम ठाम असुहावने, सेंभल तरुवर भूर । पैने दुखदैने विकट, कंटककलित करूर ॥ १९९ ॥ और जहां असिपत्र वन, भीम तरोवर खेत । जिनके दल तरवारसे, लगत घाव कर-देत ॥ २०० ॥ वैतरनी सरिता समल, लोहित लहर भयान । वहै खार शोणित भरी, मासकीच घिन घान ॥ २०१ ॥ पक्षी वायस गीधगण, लोहतुंडसों जेह । मरमविदारैं

दुख करें, चूंटै चहुँदिश देह ॥ २०२ ॥ पंचेंद्री मनको महा, जे दुखदायक जोग । ते सब नरकनिकेतमें, एकपिंड अमनोग ॥ २०३ ॥ कथा अपार कलेशकी, कहे कहां लों कोय । कोड़ जीभसों वरनिये, तऊ न पूरी होय ॥ २०४ ॥ सागरबंध प्रमाणाथिति, छिन्नछिन्न तीखन त्रास । ये दुख देखें नारकी, परवश परे निरास ॥ २०५ ॥ जैसी परवश वेदना, सहे जीव बहु भाय । स्ववश सहे जो अंश भी, तो भवजल तिरजाय ॥ २०६ ॥ ऐसे नरकहि नारकी,भयो भील दुठ भाव । सागर सत्ताईसकी, धारी मध्यम आव ॥२०७॥ सागर काल प्रमाण अब, वरनों औसरपाय । जिनसों नरकनिवासकी, थिति सब जानी जाय ॥ २०८ ॥ चौपई–पहले तीन पल्यके भेव । एक चित्तकरि सो सुन लेव ॥ जिनसों सागर उपजै सही । यथारीत जिनशासन कही ॥ २०९ ॥ सोरठा–प्रथम पल्य व्योहार, द्वितिय नाम उद्धार भण । अर्धा त्रितिय विचार अब इनको विस्तार सुन ॥ २१० ॥ चौपई–पहले गोल कूप कल्पिये । जोजन बड़े मान थरापिये ॥ इतनो ही करिये गंभीर । त्रुधिबल ताहि भरो नर धीर ॥ २११ ॥ सात दिवसके भीतर जेह । जने भेड़के बालक लेह॥ उत्तम भोगभूमिके जान । तिनके रोमअग्र मनआन ॥ २१२ ॥ ऐसे सूच्छम करिये सोय । फेर खंड जिनको नाहिं होय ॥ तिन

सों महाकूप वह भरो। बारंबार कूट दिढ़ करो ॥ २१३ ॥ तिन रोमनकी संख्या जान। पैंतालीस अंक परवान ॥ ते श्रीजिनशासनमें कहे । कर प्रतीत जैनी सरदहे ॥ २१४॥ चामर–चार एक तीन चार पांच दो छ तीन ले । सुन्न तीन सुन्न आठ दोय अंक सुन्न दे ॥ तीन एक सात सात सात चार नौ करो । पांच एक दोय एक नौ समार दो धरो ॥२१५॥ दोहा—सात बीस ये अंक लिखि, और अठारह सुन्न। प्रथम पल्यके रोमकी, यह संख्या परिपुन्न ॥ २१६ ॥ चौपाई—सौ सौ बरस बीत जब जाहिं । एक एक काढ़ो यामाहिं ॥ ऐसी विधि सब करते सोय । कूप उदर जब खाली होय ॥२१७॥ जो कछु लगै कालपरवान। सो व्योहार पल्य उरआन ॥ प्रथम पल्य सबतैं लघुरूप । बीजभूत भाख्यो जिनभूप ॥२१८॥ दोहा--संख्या कारण जिन कह्यो, और न यासों काज। द्वुतिय पल्य विवरण सुनो, जो भाख्यो जिनराज ॥२१९॥ चौपई—पूरवकथित रोम सब धरो । तिनके अंश कल्पना करो ॥ बरस असंख कोटिके जिते। समय होहिं आतम परिमिते ॥ २२० ॥ एक एकके तावत मान । करो भाग विकलप मन आन ॥ याविधि ठान रोमकी रास। समय समय प्रति एक निकास ॥ २२१ ॥ जितनो काल होय सब येह । सो उद्धार पल्य सुन लेह ॥ याके रोमनसों

परवान। दीपोदधिकी संख्या जान ॥ २२२ ॥ दोहा–कोड़ाकोड़ि पचीसके, पल्य रोम जावन्त। तितने दीप समुद्र सब, बरने जैनसिधन्त ॥२२३॥ चौपई–अब सुन त्रितिय पल्यकी कथा। श्रीजिनशासन बरनी जथा ॥ द्वुतियपल्यके अमित अपार। रोम अंश लीजे निर्धार ॥२२४॥ एक एकके भाग प्रमान। करि सौ वर्ष समय परवान ॥ इहिविधि राशि होय फिर एह। समय समय प्रति लीजै तेह॥२२५॥ऐसे करत लगै जो काल। सोई अर्धापल्य विशाल॥ करमनकी थिति यासों जान। यह उत्कृष्ट कही भगवान ॥२२६॥ दोहा–प्रथमपल्य संख्यातमित, द्वुतिय असंख्यप्रमान। असंख्यातगुण तीसरी, लिख्यो जिनागम जान ॥ २२७ ॥ इन सब तीनों पल्यमें, अद्धापल्य महान। दश कोड़ा कोड़ी गये, अद्धासागर ठान ॥ २२८ ॥ इस ही अद्धासिंधुसों, पुन्यपाप परिभाव। संसारीजन भोगवैं, स्वर्गनरककी आव ॥ २२९ ॥ ऐसे दीरघ काल लों, नरक सातवें थान। कमठ जीव दुख भोगवै, पर्‍यो कर्मवश आन ॥ २३० ॥ धिक धिक विषयकषायमल, ये वैरी जगमाहिं। ये ही मोहित जीवको, अवशि नरक ले जाहिं ॥ २३१ ॥ धर्म पदारथ धन्य जग, जा पटतर कछु नाहिं। दुर्गतिवास बचायकै, धरै स्वर्गशिवमाहि ॥ २३२ ॥

यही जान जिनधर्मको, सेवो बुद्धिविशाल । मनतन वचन लगायकैं, तिहुँपन तीनो काल ॥ २३३ ॥

इतिश्रीमत्पार्श्वपुराणभाषायां वज्रनाभअहमिन्द्रसुखभिल्लनारकदुःख-
वर्णनं नाम तृतीयोऽधिकारः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽधिकारः ।

सोरठा--मारूथल संसार, वामानंदन कल्पतरु । वांछितफलदातार, सुखकामी सेवो सदा ॥ १ ॥ इसही जम्बूदीपमझार । भरतखंड दच्छिन दिश सार ॥ कौशलदेश वसै अभिराम । नगर अजोध्या उत्तमठाम ॥ २ ॥ आरजखंडमाहिं परधान । मध्यभाग राजै शुभथान ॥ गढ़ गोपुर खाई गृहपांति । बनघनसों सोहैं बहुभांति ॥ ३ ॥ ऊंचे जिनमंदिर मनहरैं । कंचन कलश धुजा फरहरैं ॥ वज्रबाहु भूपति तिहिं थान । वरइ-ख्वाकवंश-नभ-भान ॥ ४ ॥ जैनधर्म पालै बड़भाग । निजपद कमलनि मधुप सराग ॥ प्रभाकरी तिय ताघर सती । जीती जिन रंभा–रति–रती ॥ ५ ॥ दोहा–यथाहंसके वंशको, चाल न सिखवै कोय । त्यों कुलीन नर नारिके, सहज नमनगुण होय ॥ ६ ॥

चौपई—वह अहमिंद्र तहाँतैं चयो । तिनके सुदिन पुत्र सो भयो ॥ नांव धरयो आनंद-कुमार । अतुल तेज सब लक्षण सार ॥ ७ ॥ सुभग सोम श्रीवंत महान । बलवीरज धीरज गुणथान ॥ नरनारीमनमाणिकचोर । देखत नयन रहैं जा ओर ॥ ८ ॥ जाके सुगुण शेष कह थकै । और कौन बरनन कर सकै ॥ जोबनवंत जनक तिस देख । ब्याह महोत्सव कियो विशेख॥९॥परनी राजसुता बहु भाय । जिनकी छबि बरनी नहिं जाय ॥ क्रमसों कुमर पितापद पाय । बलसे वश कीये बहुराय॥१०॥ दोहा—जोबन वय संपति बढ़ी, मिल्यो सकल सुख जोग । महामंडली पद लह्यो, पूरब पुन्य नियोग ॥ ११ ॥ चौपई—अब सुन आठजातिके भूप । जिनको जिनमत कह्यो सरूप ॥ कोटि ग्रामको अधिपति होय । राजा नाम कहावै सोय ॥ १२ ॥ नवैं पांचसौ राजा जाहि । अधिराजा नृप कहिये ताहि ॥ सहस राय जिस मानै आन । महाराजराजा वह जान ॥ १३ ॥ दोय सहस नृप नवैं अशेश । मंडलीक वह अर्ध नरेश ॥ चार सहस जिस पूजें पाय । सोई मंड-लीक नरराय ॥ १४ ॥ आठ सहस भूपतिको ईश । मंडलीक सो महा महीश ॥ सोलह सहस नवैं भूपाल । सो अधचक्री पुन्यविशाल ॥ १५ ॥ सहस बतीस आन जिस बहैं । ताहि सकलचक्री बुध कहैं ॥ इनमें श्रीआनंदनरेश । महामंडली पद परमेश ॥ १६ ॥

सोरठा—आठ सहस सुख हेत, नृप नछत्र सेवैं सदा । कीरति किरण समेत, सोहै नरपति चंद्रमा ॥ १७ ॥ चौपई—एक दिना आनंद महीश । बैठ्यो सभा सिंहासन शीश ॥ मंत्री तहां स्वामिहित नाम । कहै विवेकी सुवचन ताम ॥ १८ ॥ स्वामी यह वसंत ऋतुराज । सब जन करैं महोच्छवकाज ॥ नंदीश्वर व्रत औसर येह । करिये प्रभु पूजा निजगेह ॥ १९ ॥ पूजा सदा पाप निरदलै । पर्वसंजोग महाफल फलै ॥ परम पुन्यको कारन आन । नहीं जगतमें जज्ञ समान ॥ २० ॥ दोहा--जिनपूजाकी भावना, सब दुखहरन उपाय । करते जो फल संपजै, सो वरन्यो किमि जाय ॥ २१ ॥ चौपाई—सुनि राजा मंत्री उपदेश । नगर महोच्छव कियो विशेश ॥ करि सनान जिनमंदिर जाय । जैनबिंब पूजे विहसाय॥२२॥बहुविधि पूजा दरब मनोग । धरे आन जिनपूजनजोग॥भावभक्तिसों मंगल ठयो । राजाके मन संशय भयो ॥ २३ ॥ विपुलमती मुनिवर तिहि थान । दरशन कारन आये जान ॥ तिनै पूजि नृप पूछै येह । भो मुनींद्र मुझ मन संदेह ॥२४॥ दोहा—प्रतिमा धात पषानकी, प्रगट अचेतन अंग । पूजक जनको पुन्यफल, क्यों कर देय अभंग ॥ २५ ॥ तुम जगमें संशय तिमिर, दूरकरन रविरूप । यह मुझ भरम मिटाइये, करै वीनती भूप ॥ २६ ॥ तब ज्ञानी गणधर कहैं, समाधान

सुन राय। भवि जनको प्रतिमाभगति, महापुन्य फलदाय ॥२७॥ भाव शुभाशुभ जीवके, उपजैं कारण पाय। पुन्य पाप तिनसों बँधै, यों भाषो जिनराय ॥ २८ ॥ कुसुम वरनको जोग लहि, जैसे फटक पषान। अरुन श्याम द्युतिकों धरै, यही जीवकी बान ॥ २९॥ सो कारन है दोय विधि, अंतरंग बहिरंग ॥तिनके ही उर आय है, जे समझें सरवंग ॥३०॥ बाहिज कारण जानियो, अंतरंगको हेत। सोई अंतरभाव नित, कर्मबंधको देत ॥३१॥ जिन परिणामन पुन्य बहु, बँधैं अन्यथा नाहिं ॥ तिन भावनको निमित है, जिनप्रतिमा जगमाहिं ॥ ३२ ॥ वीतरागमुद्रा निरखि, सुधि आवै भगवान। वही भावकारण महा, पुन्यबंधको जान ॥३३॥ रागद्वेषवर्जित अमल, सुखदुखदाता नाहिं। दर्पनवत भगवान हैं, यह आनो उरमाहिं ॥३४॥ तिनको चिंतन ध्यान जप,थुति पूजादिविधान ॥ सुफल फले निज भावसों, है मुक्ती सुखदान ॥ ३५ ॥ जैसे गुण प्रभुके कहे, ते जिन मुद्रामाहिं। थिरसरूप रागादिविन, भूषन आयुध नाहिं ॥ ३६ ॥ यद्यपि शिल्पीकृत कृतम, जिनवरबिम्ब अचेत। तदपि सही अंतरविषे, शुभभावनको हेत ॥ ३७ ॥ और एक दिष्टांत अब, सुन अवनीपति सोय। जियके उर दृष्टांतसों, संशय रहै न कोय ॥ ३८ ॥ चौपई—गणिका धरी चितामें जाय। विसनी

पुरुष देखि पछताय ॥ जो जीवत मुझ मिलतो जोग। तो मैं करतो वांछित भोग ॥ ३९ ॥ श्वान कहै उर क्यों यह दही। मैं निजभक्षण करतो सही ॥ पुनि तिहिं देख कहै सुनिराय। क्यों न कियो तप यह तन पाय॥४०॥ इहि विधि देखि अचेतन अंग। उपजैं भाव पाय परसंग ॥ तिन ही भावनके अनुसार। लाग्यो फल तिनको तिहिं बार ॥ ४१ ॥ दोहा--व्यसनी नर नरकहिं गयो, लह्यो भूखदुख श्वान ॥ साधु सुरग पहुँचे सही, भावनको फल जान ॥ ४२ ॥ चौपई--यों जिनबिंब अचेतनरूप। सुखदायक तुम जानो भूप ॥ कारनसम कारज संपजै। यामैं बुध संशय नहिं भजै ॥ ४३ ॥ दोहा--जैसे चिंतामणि रतन, मनवांछित दातार। तथा अचेतन बिंब यह, वांछापूरनहार ॥ ४४ ॥ ज्यों याचत सुख कल्पतरु,दानी जनको देय ॥ त्यों अचेत यह देत है, पूजकको सुख श्रेय ॥४५॥मणि मंत्रादिक औषधी, हैं प्रतच्छ जड़रूप। विष रोगादिकको हरैं, त्यों यह अघहर भूप ॥ ४६ ॥ जड़सरूपको पूज पद, प्रगट देखिये लोय। राजपत्र सिर धारिये, मुद्राअंकित होय ॥ ४७ ॥ राजपत्र सिर धारिये, राजाको भय मानि। जिनवरमुद्रा पूजिये, पातकको डर जानि॥ ४८ ॥ प्रतिमापूजन चिंतवन, दरशनआदि विधान। हैं प्रमान तिहुँ कालमें, तीन लोकमें जान ॥ ४९ जे प्रतिमा पूजैं नहीं, निंदा करैं अजा-

न। तीनलोक तिहुं कालमें, तिनसम अधम न आन ॥५०॥ जे प्रतिमा पूजें सदा, भावभक्ति विधि शुद्धि। तिनको जन्म सराहिये, धन तिनकी सद्बुद्धि ॥ ५१ ॥ इत्यादिक उपदेश सुनि, आई उर परतीत । जिनप्रतिमापूजनविषें, धरी राय दिढ प्रीत ॥ ५२ ॥ चौपई—तिस औसर मुनि वरनै ताम । तीनभवनवरती जिनधाम ॥ भानविमानविषै जिनगेह। सो पहले वरनै धारि नेह ॥ ५३ ॥ रतनमई प्रतिमा जगमगै। कोटभानुछबि छीनी लगै ॥ निरुपम रचना विविध विशाल। सूरजदेव नमें तिहुंकाल ॥ ५४ ॥ सुन आनंदो आनँदराय। विकसत आनन अंग न माय ॥ जब संदेहशल्य निर्वरै। तब अवश्य उर सुख विस्तरै ॥ ५५ ॥ प्रात सांझ मंदिर चढ़ि सोय। अर्घ देय रविसन्मुख होय ॥ करि जिनबिंबनको मन ध्यान। अस्तुति करै राग मन आन ॥ ५६ ॥ रविविमान मनिकंचनमई। निरमापो अद्भुत छवि छई ॥ जैनभवनकरि मंडित सोय। देखत जनमन अचरज होय ॥ ५७ ॥ पूजा तहां करै नित राय। महा महोच्छव हर्ष बढ़ाय ॥ प्रतिदिन देय दया उर आन। दीन दुखितजनको बहु दान ॥ ५८ ॥ यह नित नेम करै भूपाल। चली नगरमें सोई चाल ॥ सब सूरजको करैं प्रनाम। देखादेखि चलो मत ताम ॥ ५९ ॥ समझे नहीं मूढ़ परनये । भानुउपा-

सक तबसों भये ॥ जो महंत नर कारज करै । ताकी रीत जगत आचरै ॥ ६० ॥
यों बहु पुन्य करै भूपाल । सुखमें जात न जानो काल ॥ एक दिना निजसभा नरेश ।
निवसै मानो स्वर्गसुरेश ॥ ६१ ॥ धवल केश देख्यो निज शीश । मन कंप्यो सोचै
नरईश ॥ जाहि देखि मनउत्सव घटै । कामी जीवनको उर फटै ॥ ६२ ॥ सो लखि
सेत बाल भूपाल । भोगउदास भये ततकाल ॥ जगतरीति सब अथिर असार । चिंतै
चितमें मोह निवार ॥ ६३ ॥ बाल अवस्था भई वितीत । तरुनाई आई निज रीत ॥
सो अब बीती जरा पसाय । मरन दिवस यों पहुंचै आय ॥ ६४ ॥ बालक काया कूंपल
सोय । पत्ररूप जोबनमें होय ॥ पाको पात जरा तन करै । काल बयारि चलत झर
परै ॥ ६५ ॥ कोई गर्भमाहिं खिर जाय । कोई जन्मत छोड़ै काय ॥ कोई बालदशा
धरि मरै । तरुन अवस्था तन परिहरै ॥ ६६ ॥ मरन दिवसको नेम न कोय । यातैं
कछु सुधि परै न लोय । एक नेम यह तो परिवान । जन्म धरै सो मरे निदान ॥ ६७॥
महापुरुष उपजे बड़भागि॥ सब परलोक गये तन त्यागि ॥संसारी जन अपनी बार ।
पूरब उदै करै अनुसार ॥ ६८ ॥ परवतपतित नदीके न्याय । छिनही छिन थिति बीती
जाय ॥ रागअधप्रानी जगमाहिं । भोगमगन कछु सोचै नाहिं ॥ ६९ ॥ अंतकाल जब

पहुंचै आय । कहा होय जो तव पछिताय ॥ पानी पहले बँधे जो पाल । वही काम आवै जलकाल ॥७०॥ यही जान आतमहितहेत । करै विलंब न संत सुचेत ॥ आज काल जे करत रहाहिं । ते अजान पीछे पछताहिं॥७१॥रात दिवस घटमाल सुभाव । भरि भरि जलजीवनकी आव ॥ सूरज चांद बैलये दोय । काल रँहट नित फेरैं सोय ॥ ७२ ॥

अथ वारह भावनाका स्वरूप ।

दोहा——राजा राना छत्रपति, हाथिनके असवार । मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥ ७३ ॥ दलबल देवी देवता, मात पिता परिवार । मरती बिरियाँ जीवको कोई न राखनहार ॥ ७४ ॥ दामविना निर्धन दुखी, तिस्नावश धनवान । कहीं न सुख सँसारमें, सब जग देख्यो छान ॥ ७५ ॥ आप अकेला अवतरै, मरै अकेला होय । यों कबही इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥ ७६ ॥ जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय । परसम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परियन लोय ॥ ७७ ॥ दिपै चाम चादर मढी, हाड़ पींजरा देह। भीतर या सम जगतमें, और नहीं घिनगेह ॥ ७८ ॥ सोरठा—मोहनींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा। कर्मचोर चहुँओर, सरवस लूटैं सुधि नहीं॥७९॥ सतगुरु देहिं जगाय, मोहनींद जब उपशमै । तब कछु बनै उपाय, कर्मचोर आवत

रुकै ॥ ८० ॥ दोहा—ज्ञान दीप तप तेल भरि, घर सोधै भ्रम छोर। याविधि विन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ॥ ८१ ॥ पंचमहाव्रत संचरन, समित पंच परकार। प्रबलपंच इन्द्री-विजय, धार निर्जरा सार ॥ ८२ ॥ चौदह राजु उतंग नभ, लोकपुरुष संठान। तामैं जीव अनादिसों, भरमत है विन ज्ञान ॥ ८३ ॥ जाचैं सुरतरु देहिं सुख, चिंतत चिंता-रैन। विन जाचैं विन चिंतवैं, धर्म सकल सुख-दैन ॥ ८४ ॥ धनकन कंचन राजसुख, सबै सुलभ करि जान। दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ ८५ ॥ चौपई—इहि-विधि भूप भावना भाय। हितउद्यम चिंत्यो मन लाय ॥ सबसों मोह ममत निरवारि। उठ्यो धीर धीरज उरधारि ॥८६॥ जेठे सुतको दीनो राज। आप चले शिवसाधनकाज॥ सागरदत्त मुनीश्वरपास। संयम लियो तजी जगआस ॥ ८७ ॥ घनें भूप भूपतिके संग। धरे महाव्रत निर्भय अंग ॥ अब आनन्द महामुनि धीर। वननिवास विचरैं वर-बीर ॥ ८८ ॥ दुद्धरतप बारह विधि करै। दुविधि संग ममता परिहरै ॥ तिनके नाम कहूं कछु धार। जिनशासन जिनको विस्तार ॥ ८९ ॥ प्रथम महातप अनशन नाम। दूजो ऊनोदर गुनधाम ॥ तीजो है व्रतपरिसंख्यान। रसपरित्याग चतुर्थम मान ॥ ९० ॥ पंचम भिन शयनासन सार। कायकलेश छठो अविकार ॥ यह षटविधि बाहजतप जान।

अब अन्तरतप सुनो सुजान ॥ ९१ ॥ पहले प्राछित विनय दुतीय । वैयाव्रत तीजो गनलीय ॥ चौथो अन्तरंग सिज्झाय । पंचम तप व्युतसर्ग बताय ॥ ९२ ॥ षष्टम ध्यान हरै सब खेद । ये अन्तरतपके सब भेद ॥ अब इनको संछेप सरूप । सुनो संत तजि भावविरूप ॥९३ ॥ जिनके सुनत बँधै शुभध्यान । सेवत पद लहिये निरवान ॥ तप विन तीनकाल तिहुँलोय । कर्मनाश कबही नहिं होय ॥ ९४ ॥ दिनसों लेय वरष लागि करै । चार प्रकार असन परिहरै ॥ रागरोग निर्दलन उपाय । सो अनशन भाष्यो जिनराय ॥ ९५ ॥ पौन अर्ध चौथाई टेक । एक ग्रास अथवा कन एक ॥ ऐसी विधि जो भोजन लेत । ऊनोदर आलस हर लेत ॥ ९६ ॥ जैसी प्रथम प्रतिज्ञा करै । ताही विधि भोजन आदरै ॥ सो कहिये व्रतपरिसंख्यान । आशाव्याधि विनाशन जान ॥ ९७ ॥ लवनादिक रस छार उपाध । नीरसभोजन भुंजै साध ॥ रसपरित्याग कहावै एम । इन्द्रियमदनाशन यह नेम ॥ ९८ ॥ शून्यगेह गिरि गुफा मसान । नारि-नपुंसक-वर्जित थान ॥ बसै भिन्न शयनासन सोय । यासों सिद्धि ध्यानकी होय ॥ ९९ ॥ ग्रीषमकाल बसै गिरि सीस । पावसमें तरुवरतल दीस ॥ शीतसमय तटनीतट रहै । काय कलेश कहावै यहै ॥ १०० ॥ दोहा—या तपके आचरनसों, सहनशील मुनि होय । अब अन्तर

तप भेद छह, कहूं जिनागम जोय ॥ १०१ ॥ चौपाई—जो प्रमादवश लागै दोष। सोधै ताहि छोड़ि छल रोष ॥ आचारजवानी अनुसार। यही प्रथम प्राछित तप सार ॥ ॥ १०२ ॥ जे गुण जेठे साधु महन्त। दरशन ज्ञानी चारितवंत ॥ तिनकी विनय करै मन लाय। विनय नाम तप सो सुखदाय ॥१०३॥ रोगादिक पीड़ित अविलोय। बाल विरध मुनिवर जो होय ॥ सेव करै निजसंयम राखि। सो वैयाव्रत आगमसाखि ॥ १०४ ॥ शक्तिसमान सकल गुण ठाठ। करै साधु परमागमपाठ ॥ परमात्तम तप सो सिज्झाय। जासों सब संशय मिट जाय ॥ १०५ ॥ निजशरीरममता परिहरै। काउसग्गमुद्रा दिढ़ धरै ॥ अन्तर बाहर परिग्रह छार। सोई तप व्युत्सर्ग उदार ॥ १०६ ॥ आरत रौद्र निवारै सोय। धर्म शुकुल ध्यावै थिर होय ॥ जहां सकल चिन्ता मिट जाहिं। वही ध्यानतप जिनमतमाहिं ॥ १०७ ॥ दोहा—यह बारह विधि तप विषम, तपै महामुनि धीर ॥ सहै परीषह बीसदो, ते अब वरनों बीर ॥ १०८ ॥

अथ बावीसपरीषह।

छप्पय—छुधा तृषा हिम उष्ण, डंस मंसक दुखभारी। निरावरन तन अरति, खेद उपजावन नारी ॥ चरिया आसन शयन, दुष्ट वायक वध बंधन। याचै नहीं अलाभ

रोग तिण फरस निबंधन ॥ मलजनित मान सनमान वश, प्रज्ञा और अज्ञान कर ॥ दरशन मलीन बाईस सब, साधुपरीषह जान नर ॥ १०९ ॥ दोहा—सूत्रपाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम ॥ इनके दुख जे मुनि सहैं, तिनप्रति सदा प्रणाम॥११०॥ सोमावती—अनशन ऊनोदर तप पोषत, पाखमास दिन बीत गये हैं । जोग न बनै जोग भिक्षाविधि, सूख अंग सब शिथिल भये हैं ॥ तब बहु दुसह भूखकी वेदन, सहत साधु नाहिं नेक नये हैं। तिनके चरनकमल प्रतिदिन दिन, हाथ जोरि हम सीस ठये हैं॥१११॥ पराधीन मुनिवरकी भिच्छा, परघर लेहिं कहैं कछु नाहीं । प्रकृति विरोध पारना भुंजत, बढ़त प्यासकी त्रास तहांहीं॥ ग्रीषमकाल पित्त अति कोपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं । नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवंते वरतो जगमाहीं॥११२॥ शीतकाल सबही जन कांपैं, खड़े जहां बन विरछ डहे हैं । झंझा बायु बहै वरषा ऋतु, वरषत बादल झूम रहे हैं ॥ तहां धीर तटनीतट चौबट, ताल पालपै कर्म दहे हैं ॥ सहैं सँभाल शीतकी बाधा, ते मुनि तारनतरन कहे हैं ॥ ११३ ॥ भूख प्यास पीड़ै उर अन्तर, प्रजलै आंत देह सब दागै । अग्निसरूप धूप ग्रीषमकी, ताती बाल झालसी लागै ॥ तपै पहार ताप तन उपजै, कोपै पित्त दाहज्वर जागै । इत्यादिक ग्रीषमकी बाधा, सहत साधु धीरज नहिं त्या-

गै ॥ ११४ ॥ डांस मांस माखी तन काटैं, पीड़ैं वनपंछी बहुतेरे । डसैं व्याल वि-षयाले बीछू, लगैं खजूरे आन घनेरे ॥ सिंह स्याल सुंडाल सतावैं, रीछ रोझ दुख देहिं बड़ेरे । ऐसे कष्ट सहैं समभावन, ते मुनिराज हरो अब मेरे ॥ ११५ ॥ अंतर विषय वासना बरतै, बाहर लोकलाज भय भारी । तातैं परम दिगंबरमुद्रा, धर नहिं सकैं दीन संसारी ॥ ऐसी दुद्धर नगन परीषह, जीतैं साधु शीलव्रतधारी । निर्वि-कार बालकवत निर्भय, तिनके पायन ढोक हमारी॥११६॥ देश कालको कारन लहिकै, होत अचैन अनेक प्रकारै । तब तहां खिन्न होहिं जगवासी, कलमलाय थिरतापद छारै ॥ ऐसी अरति परीषह उपजत, तहां धीर धीरज उर धारै । ऐसे साधनको उर अंतर, बसो निरंतर नाम हमारै ॥ ११७ ॥ जे प्रधान केहरिको पकरैं, पन्नग पकर पांवसों चंपत । जिनकी तनक देखि भौं बांकी, कोटक सूर दीनता जंपत ॥ ऐसे पुरुष पहार उड़ावन, प्रलय पवन तिय वेद पयंपत । धन्य धन्य ते साधु साहसी, मनसुमेरु जिनको नहिं कंपत ॥ ११८ ॥ चारहाथ परवान निरखि पथ, चलत दिट इत उत नाहिं तानै । कोमल पांय कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहि मानै ॥ नाग तुरंग पालकी चढ़ते, ते सवाद उर यादि न आनैं । यों मुनिराज भरैं चर्यादुख, तब दिढ़कर्म

कुलाचल भानैं ॥ ११९ ॥ गुफा मसान शैल तरु कोटर, निवसैं जहां शुद्धि भू हेरैं। परिमित काल रहैं निश्चल तन, बारबार आसन नाहिं फेरैं ॥ मानुष देव अचेतन पशुकृत, बैठे विपत आन जब घेरैं। ठौर न तजैं भजैं थिरता पद, ते गुरु सदा बसो उर मेरैं ॥ १२० ॥ जे महान सोनेके महलन, सुंदरसेज सोय सुख जोवैं। ते अब अचलअंग एकासन, कोमल कठिन भूमिपर सोवैं॥ पाहन खंड कठोर कांकरी, गड़त कोर कायर नाहिं होवैं। ऐसी शयन परीषह जीतत, ते मुनि कर्मकालिमा धोवैं॥ १२१ ॥ जगत जीव यावंत चराचर, सबके हित सबके सुखदानी। तिनैं देख दुर्वचन कहैं दुठ, पाखंडी ठग यह अभिमानी ॥ मारो याहि पकरि पापीको, तपसी भेष चोर है छानी। ऐसे वचनवाणकी वर्षा, छिमाढाल ओढ़ैं मुनिज्ञानी॥ १२२ ॥ निरपराध निर्वैर महा मुनि, तिनको दुष्टलोग मिलि मारैं। केई खैंच थंभसौं बाँधत, केई पावकमें परजारैं॥ तहाँ कोप नाहिं कराहिं कदाचित, पूरव कर्मविपाक विचारैं। समरथ होय सहैं वध बंधन, ते गुरु सदा सहाय हमारैं॥ १२३ ॥ घोरवीर तप करत तपोधन, भयो खीन सूखी गल बाहीं। अस्थि-चाम अवशेष रह्यो तन, नसाजाल झलको जिसमाहीं॥ औषधि अशन पान इत्यादिक, प्रान जाय पर जांचत नाहीं। दुद्धर अजाचीक व्रत धारैं, कराहिं न मलि-

न धरमपरछाहीं ॥ १२४ ॥ एक वार भोजनकी विरियाँ, मौन साधि बसतीमें आवैं ॥ जो नाहिं बनै जोग भिच्छाविधि, तौ महंत मन खेद न लावैं ॥ ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीते, तब तप विरद भावना भावैं । यों अलाभकी परम परीषह, सहैं साधु सोई शिव पावैं ॥ १२५ ॥ वातपित्त कफ शोणित चारों, ये जब घटैं बढ़ैं तनमाहैं । रोग सँजोग सोग तन उपजत, जगत जीव कायर हो जाहैं ॥ ऐसी व्याधि वेदना दारुन, सहैं शूर उपचार न चाहैं ॥ आतम-लीन देहसों विरकत, जैन जती निज नेम निवाहैं ॥ १२६॥ सूखे तिन अरु तीखन कांटे, कठिन कांकरी पांय विदारै । रज उड़ि आय परै लोचनमें, तीर फांस तन पीर विथारै ॥ तापर पर सहाय नाहिं वांछत, अपने करसों काढ न डारैं । यों तृण-परस परीषह विजई, ते गुरु भव भव शरन हमारैं॥१२७॥जावजीव जलन्हौन तज्यो जिन नगनरूप वनथान खरे हैं। चलैं पसेव धूपकी बिरियाँ, उड़त धूल सब अंग भरे हैं ॥ मलि-न देहको देखि महामुनि, मलिन भाव उर नाहिं करे हैं। यों मलजानित परीषह जीतें, तिनै हाथ हम सीस धरे हैं ॥ १२८ ॥ जे महान विद्यानिधि विजई, चिरतपसी गुन अतुल भरे हैं । तिनकी विनय वचनसों अथवा, उठि प्रनाम जन नाहिं करे हैं ॥ तौ मुनि तहाँ खेद नाहिं मानैं, उर मलीनता भाव हरे हैं । ऐसे परमसाधुके अहनिशि, हाथजोर हम

पांय परे हैं ॥ १२९ ॥ तर्क छन्द व्याकरन कलानिधि, आगम अलंकार पढ़ जानैं ॥ जाकी सुमति देखि परवादी, बिलखे होहिं लाज उर आनै ॥ जैसे नाद सुनत केहरि-कों, वनगयन्द भागत भय मानैं । ऐसी महाबुद्धिके भाजन, पै मुनीश मद रंच न ठानैं ॥१३०॥ सावधान बरतैं निशिवासर, संयमशूर परमवैरागी । पालत गुपति गए दीरघ दिन, सकल संग ममता परित्यागी ॥ अवधिज्ञान अथवा मनपरजय, केवलकिरन अजों नहिं जागी । यों विकलप नाहिं कराहिं तपोधन, सो अज्ञानविजई बड़भागी॥१३१॥ मैं चिर घोर घोर तप कीनौं, अजों रिद्धि अतिशय नहिं जागे । तपबल सिद्ध होंहिं सब सुनिये, सो कछु बात झूठसी लागै ॥ यों कदापि चितमें नहिं चिंतत, समकित शुद्ध शांतरस पागै । सोई साधु अदर्शनविजई, ताके दर्शनसों अघ भागै ॥ १३२ ॥ कवित्त इकतीसा—ज्ञानावरणीसों दोय प्रज्ञा अज्ञान होय, एक महामोहतें अदर्शन बखानिये । अंतरायकर्मसेती उपजै अलाभ दुख, सपत चारित्रमोहनीके बल जानिये ॥ नगन निषिद्या नारि मान सनमान गारि, जाचना अरति सब ग्यारै ठीक ठानिये । एकादश बाकी रही वेदनी उदोत कही, बाइस परीषा उदै, ऐसे उर आनिये ॥ १३३ ॥ अड़िल्ल—एक वार इनमाहिं, एक मुनिकै कही । सब उनीस उतकृष्ट, उदय आवैं सही ॥

आसन शयन विहार, दोय इनमाहिंकी । शीत उष्णमें एक, तीन ये नाहिंकी॥१३४॥

अथ दशलक्षण धर्म ।

दोहा—अब दशलक्षण धर्मके, कहूँ मूल दश अंग । जे नित श्रीआनंद-मुनि, पालत हैं सरवंग ॥ १३५ ॥ चौपाई—विनादोष दुर्जन दुख देय । समरथ होय सकल सह लेय ॥ क्रोध कषाय न उपजे जहां। उत्तम छिमा कहावै तहां ॥१३६॥ आठ महामद पाय अनूप । निरभिमान बरतै मृदुरूप ॥ मानकषाय जहां नहिं होय । मार्दव नाम धरम है सोय ॥ १३७ ॥ जो मनचिंतै सो मुख कहै। करै कायसों कारज वहै ॥ मायाचार न उर पाइये। आर्जव धर्म यही गाइये ॥ १३८ ॥ बोलै वचन स्वपरहितकार । सत्यसुरूप सुधा उनहार ॥ मिथ्यावचन कहै नहिं भूल। सोई सत्य धर्मतरुमूल ॥ १३९ ॥ पर कामिनि परदरबमँझार। जो विरक्त वरतै छल छार ॥ अंतर शुद्ध होय सरवंग। सोई शौच धर्मको अंग ॥ १४० ॥ मन समेत ये इन्द्री पंच। इन-को शिथिल करै नहिं रंच ॥ त्रस थावरकी रक्षा जोय। संजम धर्म बखान्यो सोय ॥१४१॥ख्याति लाभ पूजा सब छंड। पंचकरणको दीजै दंड ॥ सो तपधर्म कह्यो जग-सार। अनशनादि बारहपरकार॥१४२॥ संजमधारी वृतिपरधान । दीजै चउविधि उत्त-

म दान ॥ तथा दुष्टविकलप परिहार । त्यागधर्म बहु सुखदातार ॥१४३॥ बाहिज परिग्रहको परित्याग । अंतर ममता रहै न लाग ॥ आकिंचन यह धर्म महान । शिवपददायक निहचै जान ॥ १४४ ॥ बड़ी नारि जननी सम जान । लघु पुत्री सम बहिन बखान ॥ तजि विकार मन बरतै जेह । ब्रह्मचर्य परिपूरण एह ॥ १४५ ॥

अथ सोलह कारण भावना ।

दोहा—सोलह कारन भावना, भावैं मुनि आनंद । तिनको नाम सरूप कछु, लिखौं सकल सुखकंद ॥१४६॥ चौपाई—आठ दोष मद आठ मलीन । छै अनायतन शठता तीन॥ ये पचीस मल वरजित होय । दर्शनशुद्धि कहावै सोय ॥ १४७ ॥ रत्नत्रयधारी मुनिराय । दर्शनज्ञानचरितसमुदाय ॥ इनकी विनयविषैं परवीन । द्युतियभावना सो अमलीन ॥ १४८ ॥ शीलभार धारै समचेत । सहस अठारह अंग समेत ॥ अतीचार नहिं लागै जहां । तृतिय भावना कहिये तहां ॥ १४९ ॥ आगमकथित अर्थ अवधार । यथाशक्ति निजबुधि अनुसार ॥ करें निरंतर ज्ञान अभ्यास । तुरिय भावना कहिये तास ॥ १५० ॥ दोहा—धर्म धर्मके फलविषैं, बरतै प्रीति विशेख । यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख॥१५१॥ चौपई—औषधि अभय ज्ञान आहार । महादान यह चार प्रकार॥

शक्तिसमान सदा निरवहै । छठीभावनाधारक वहै ॥ १५२ ॥ अनशन आदि मुक्ति-
दातार । उत्तमतप बारह परकार॥बल अनुसार करै जो कोय । सो सातमी भावना होय ।
जतीवर्गको कारन पाय । विघन होत जो करै सहाय ॥ साधुसमाधि कहावै सोय । यही
भावना अष्टम होय ॥१५४॥ दशविधि साधु जिनागम कहे । पथपीड़ित रोगादिक गहे॥
तिनकी जो सेवा सतकार । यही भावना नौमी सार ॥१५५॥ परमपूज्य आतम अरहंत ।
अतुल अनंत चतुष्टयवन्त ॥ तिनकी थुति नति पूजा भाव । दशमभावना भवजलना-
व ॥ १५६ ॥ जिनवरकथित अर्थ अवधार । रचना करै अनेक प्रकार ॥ आचारजकी
भक्तिविधान । एकादशम भावना जान ॥ १५७ ॥ विद्यादायक विद्यालीन । गुणगरिष्ट
पाठक परवीन ॥ तिनके चरन सदा चित रहै । बहुश्रुतिभक्ति बारमी यहै ॥ १५८ ॥ भ-
गवतभाषित अर्थ अनूप । गनधर ग्रंथित ग्रंथसरूप ॥ तहां भक्ति वरतै अमलान । प्रव-
चनभक्ति तेरमी जान ॥ १५९ ॥ षट आवश्यक क्रिया विधान । तिनकी कबही करै न
हान॥सावधान वरतै थिरचित्त । सो चौदहमी परमपवित्त॥१६०॥ करि जप तप पूजा व्रत
भाव। प्रगट करै जिनधर्मप्रभाव ॥ सोई मारग परभावना। यहै पंचदशमी भावना॥१६१॥
चार प्रकार संघसों प्रीति । राखै गायवच्छकी रीति ॥ यही सोलमी सबसुखदाय। प्रवच-

नवात्सल्य अभिधाय ॥ १६२ ॥ दोहा—सोलहकारन भावना, परमपुण्यको खेत । भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकरपद हेत ॥ १६३ ॥ बंधप्रकृति जिनमतविषैं, कहीं एकसौ बीस । सो सत्रह मिथ्यातमें, बांधत है निशिदीस ॥१६४॥ तीर्थंकर आहार दुक, तीन प्रकृति ये जान । इनको बंध मिथ्यातमें, कह्यो नहीं भगवान ॥ १६५ ॥ तातैं तीर्थंकर प्रकृति , तीनों समकितमाहिं ॥ सोलह कारनसों बँधै, सबको निहचै नाहिं ॥ १६६ ॥ सोरठा—पूज्यपाद मुनिराय, श्रीसरवारथसिद्धिमें । कह्यो कथन इहि भाय, देखि लीजियो सुबुधिजन ॥ १६७॥ कुसुमलता—सोलह कारन ये भवतार,सुमरत पावन होय हियो । भावैं श्रीआनंदमहामुनि, तीर्थंकरपद बंध कियो ॥ १६८ ॥ काय कषाय करी कृश अति ही, सत संयम गुण पोढ़ कियो । तपबल नाना रिद्धि उपन्नी, राग विरोध निवार दियो ॥ जिस वन जोग धरैं जोगेश्वर, तिस वनकी सब विपत टलैं। पानी भरहिं सरोवर सूखे , सब रितुके फलफूल फलैं॥ १७० ॥ सिंहादिक जें जातविरोधी, ते सब बैरी बैर तजैं । हंस भुजंगम मोर मजारी, आपसमें मिलि प्रीति भजैं ॥ १७१ ॥ सोहैं साधु चढ़े ममतारथ, परमारथपथ गमन करैं । शिवपुर पहुंचनकी उर वांछा,और न कछु चितचाह धरैं ॥ १७२ ॥ देहविरक्त ममत्तविना मुनि, सबसों मैत्री भाव वहैं । आतमलीन अदीन

अनाकुल, गुन वरनत नाहिं पार लहैं॥१७३॥एक दिना ते छीर वनांतर, ठाड़े मुनि वैराग
भरे। पौनपरीषहसों नाहिं कांपैं, मेरुशिखर ज्यों अचल खरे॥१७४॥सो मर नरक कमठचर
पापी, नानाभांति विपत्ति भरी। तिसही काननमें विकटानन, पंचाननकी देह धरी
॥ १७५॥ देखि दिगंबर केहरि कोप्यो, पूर्वभवांतर वैर दह्यो। धायो दुष्ट दहाड़ ततच्छन,
आन अचानक कंठ गह्यो ॥ १७६ ॥ तीखे नखन विदारै काया,हाथ कठोरन खंड करै॥
बांकी दाढ़नसों तन भेद्यो, वदन भयानक ग्रास भरै॥ १७७ ॥ यों पशुकृत परचंड
परीषह; समभावनसों साधु सही॥ क्रोध विरोध हिये नाहिं आन्यो, परमाछिमा उरमांझ
वही॥१७८॥धनि धनि श्रीआनंदमुनीश्वर,धनि यह धीरजभाव भजे। ऐसे घोर उपद्रव-
में जिन, जोगजुगतसों प्रान तजे॥१७९॥अंतसमयपरजंत तपोधन, शुभभावनसों नाहिं
चये। आनत नाम स्वर्गमें स्वामी, सुरगनपूजित इन्द्र भये॥ १८० ॥ दोहा—स्वर्गलोक
बरनन लिखों, जथाशक्तिसुखरीत। धर्म धर्मके फलविषैं, ज्यों मन उपजै प्रीत॥ १८१॥

स्वर्गवर्णन।

चौपाई—चंदकांतिमूँगामणिमई। नानावरन भूमि वरनई ॥ रातदिवसको भेद न
जहां। रत्नउदोत निरंतर तहां ॥१८२॥ मणि कंगुरे कंचन प्राकार। औंड़ी परिखा ऊंचे
द्वार॥ तोरन तुंग रतनग्रह लसैं। ऐसे स्वर्गलोकपुर बसैं॥१८३॥चंपक पारिजात मंदार।

फूलन फैल रही महकार ॥ चैत विरछैं बढ़्यो सुहाग । ऐसे स्वर्ग स्वाने बाग॥१८३॥ विपुल वापिका राजैं खरी । निर्मल नीर सुधामय भरी॥कँचनकमल छई छविवान । मानिकखंडखचित सोपान ॥१८५॥ कामधेनु सोहैं सब गाय । कल्पवृच्छ सबही तरुराय ॥ रत्नजाति चिंतामनि सबै । उपमा कौन स्वर्गको फवै ॥ १८६ ॥ गान करैं कहिं सुरसुंदरीं । वन वीथिन बैठी रस भरीं ॥ कहीं देवगन वनिता संग । लीलावन विचरैं मनरंग ॥ १८७ ॥ मंद सुगंध बहै नित वाय । पहुपरैनुरंजित सुखदाय ॥ आंधी मेह न कबहीं होय । ताप तुसार न व्यापै कोय ॥ १८८ ॥ रितुकी रीति फिरै नाहिं कदा । सोमकाल सुखदायक सदा ॥ छत्रभंग चोरी उतपात । सुपने नहीं उपद्रवजात ॥ १८९ ॥ ईति भीति भूचाल न होय । बैरी दुष्ट न दीसै कोय ॥ रोगी दोखी दुखिया दीन । विरधवैस गुणसंपातिहीन ॥ १९० ॥ बढ़ती अंगविकलता कहीं । ये सब स्वर्गलोकमें नहीं ॥ सहज सोम सुंदरसरवंग । सब आभरनअलंकृत अंग ॥ १९१ ॥ लच्छनलंछित सुरभि शरीर । रिद्धिसिद्धमंदिर मनधीर ॥ कामसरूपी आनँदकंद । कामिनिनेत्रकमलनीचंद ॥१९२॥ वदन प्रसन्न प्रीतरस भरे । विनयबुद्धिविद्या आगरे ॥ यों बहुगुणमंडित स्वयमेव । ऐसे स्वर्गनिवासी देव ॥ १९३ ॥

दोहा—ललितवचन लीलावती, शुभलच्छन सुकुमाल । सहजसुगंध सुहावनी, जथा मालतीमाल ॥ १९४ ॥ शीलरूप लावण्यनिधि, हावभावरसलीन । सीमा सुभगसिंगारकी, सकलकलापरवीन ॥ १९५ ॥ निरत गीत संगीत सुर, सब रसरीतमँझार ॥ कोविद होंहि सुभावतैं, सुरगलोककी नार ॥ १९६ ॥ पंचइन्द्रिमनको महा, जे जगमें सुखहेत । तिन सबहीको जानियो, सुरगलोकसंकेत ॥ १९७ ॥ चौपई—इत्यादिक बहुसंपतिथान । देवलोकमहिमा असमान ॥ आनतवर विमान है जहां । धर्‍यो जन्म सुरपतिने तहां॥१९८॥दोहा—उपज्यौ संपुट गर्भतैं,तेज पुंज अति चंड । मानो जलधरपटलतैं प्रगट्यो दामिनि दंड ॥१९९॥ एक महूरतमें तहां, संपूरन तन धार। किधौं रतनकी सेज तजि, सोवत उठ्यो कुमार॥ २०० ॥ मनिकिरीट माथे दिपै, आनन अधिकसरूप । कानन कुंडल जगमगैं, पानन कटक अनूप ॥ २०१ ॥ भुजभूषणभूषित भुजा, हिये हार छबि देत । अंग अंग इत्यादि बहु, सब आभरनसमेत ॥ २०२ ॥ चौपई—शनै शनै देखै दिश सही । लोचनकोर कानलागि रही॥विसमयवंत होय मन ताम । कहैं कौन आयो किस धाम ॥२०३ ॥ अहो कौन यह उत्तम देश । सकलसंपदाथान विशेश ॥ कंचनके मन्दिर मनि जरे । दीसैं दिव्य अपछरा भरे॥ २०४॥ अति उतंग अति ही द्युति

धरै । मध्य सभा मंडप मनहरै ॥ सिंहासन अद्भुत इहि ठाम । मानो मेरुशिखर आभिराम ॥ २०५ ॥ अनुपम नाटक देखनजोग । श्रवणसुखद ये गीत मनोग ॥ ये लावण्यवतीं वरनारि । रूपजलधिबेला उनहारि ॥२०६॥ ये उतंग हाथी मदभरे । तेज तुरंगनके गन खरे ॥ कंचनरथ पायकदल जेह । मो प्रति सिर नावैं सब येह ॥२०७॥ सब आनन्द भरे मुझ देख । सब विनीत सब सुन्दर भेख ॥ जयजयकार करैं विहसाय । कारन कछु जान्यो नहिं जाय ॥ २०८ ॥ दोहा--इन्द्रजाल अथवा सुपन, कै माया भ्रम कोय । यों सुरेश सोचै हिये, पै निरनय नहिं होय ॥ २०९ ॥ चौपाई—तब तिस थानक देव प्रधान । मनकी बात अवधिसों जान ॥ जोगवचन बोले सिरनाय । संशयहरन श्रवनसुखदाय ॥ २१० ॥ हम विनती सुनिये सुरराज । जीवन जनम सफल सब आज ॥ अब सनाथ स्वामी हम भये । जन्मजोगतैं पावन थये ॥२११॥ सूरज उदय कमलनी बाग । विकसै जथा जग्यो सिर भाग ॥ नन्द वर्ध हम देहिं अशीश । चिर यह राज करो सुरईश ॥ २१२ ॥ अहो नाथ यह उत्तम ठाम । स्वर्ग तेरमो आनत नाम ॥ जगतसार लछमीको येह । निरुपमभोग निरन्तर गेह ॥ २१३ ॥ तुम इहि थान इन्द्र अवतरे । पूर्व जन्म दुद्धर तप धरे ॥ ये सब सुर सेवक तुम तने । ये परिवार लोक हैं घने ॥ २१४ ॥

ये मनोग वनितामंडली । तुम आदेश चहै मनरली ॥ ये पटदेवी लावनखान। सब देवीं इन मानैं आन ॥ २१५ ॥ ये विमान पुर महल उतंग । चमर छत्र सेना सप्तंग ॥ धुजा-सिंहासनआदि मनोग । सकल सम्पदा यह तुमजोग ॥ २१६ ॥ ऐसे वचन अनन्तर तबै । जान्यो इन्द्र अवधिबल सबै ॥ मैं पूरब कीनों तप घोर। दंडे करम धरमधन-चोर ॥२१७॥ जीव जातको निर्भयदान । दीनो आप बराबर जान ॥ सब उपसर्ग सहे धरि धीर । जीत्यो महारागरिपु वीर ॥२१८॥ काम विषम बैरी वश कियो । अरु कषाय वन कूँचा दियो ॥ जिनवरआन अखंडित पोष। चारित चिर पाल्यो निरदोष ॥ २१९॥ इहि विधि सेयो धर्म महान । तिस प्रभाव दीखै यह थान ॥ दुरगतिपात निवारन करो। तिन मुझ इन्द्रलोक ले धरो॥२२०॥ सो अब सुलभ नहीं इस देह। भोग जोग है थानक येह ॥ रागआग दुखदायक सदा । चारितजल विन बुझै न कदा ॥ २२१ ॥ सो कारन सुरगतिमें नाहिं । व्रतको उदय न या पदमाहिं॥ ह्यां सम्यक्दर्शन अधिकार । शंकादिक मलवरजित सार ॥२२२॥ कै जिनवरकी भक्ति सहाय । और न दीखै धर्म उपाय ॥ यह विचारि जिनपूजनहेत । उठ्यो इन्द्र परिवारसमेत॥२२३॥ अमृतवापिकामें करि न्हौन। गयो जहां मणिमय जिनभौन ॥ रतनाविम्ब वन्दे विहसाय । भावभगतसों सीस

नवाय ॥२२४॥ पूजा करी दरव धरि आठ । पुलकित अंग पढ्यो थुतिपाठ ॥ चेतवृक्ष-
जिनप्रतिमा जहां । महामहोच्छव कीनो तहां ॥ २२५ ॥ यों वहु पुन्य उपायो सही ।
फेरि आय निज सम्पति गही ॥ दिव्यभोग भुंजे वड़भाग । लोकोत्तम जिस सहजसु-
हाग ॥२२६॥ शोभनरूप प्रथम संठान । वसुवैक्रियक सुलच्छन वान ॥ कोमल सुरभि
सचिक्कन देह । सातधातवरजित गुनगेह ॥२२७॥ पलकपात लोचनमें नहीं । मलपसेव
नख केश न कहीं ॥ जरा कलेश न चिन्ता सोग । नाहीं अलप मृत्युभय रोग ॥ २२८॥
इत्यादिक दुखजोग अनेक । तिनमें नहीं अमरके एक ॥ आठरिद्धि अणिमादि पसत्थ ।
तिसबल सकलकाज समरत्थ॥२२९॥सुरग लोकके सुखकी कथा । कहै कहां लों बुधबल
जथा ॥ वैठि मनोगत विमल विमान । विचैरै नभपथ वांछितथान ॥२३०॥ कबही मेरु
जिनालय गमै । कबही आन कुलाचल रमै ॥ दीप समुद्र असंख अपार । करै सुरेन्द्र सु-
छन्द विहार ॥२३१॥ वर्ष वर्षमें हर्ष बढ़ाय । तीन बार नन्दीसुर जाय ॥ पंचकल्याणक
समयसुजोग । करै तीर्थपदनमन नियोग ॥ २३२ ॥ और केवली प्रभुके पाय । दोय
कल्यानक पूजै आय ॥ निज कोठे थिर होय सुज्ञान । करै दिव्यवानी रस पान॥२३३॥
सभासिंहासन वैठि सुरेश । देय सुरनप्रति हितउपदेश ॥ करै तत्त्ववर्णन विस्तार । अने-
कांतवाणी अनुसार ॥ २३४ ॥ जे सुर सम्यकदर्शनहीन । तपबल देव भये सुखलीन ॥

तिनप्रति धर्मवचन उच्चरै । दर्शनगुनकी प्रापति करै ॥ २३५ ॥ इहिविधि विविध करै शुभकाज । महापुन्य संचै सुरराज ॥ दर्शनज्ञान रतनभंडार । चारित गुणको नहिं अधिकार ॥२३६॥ धर्मवासनावासित जोग । करै पुनीत पुन्य फल भोग ॥ कबहीं सुनै अपछरा गान । निरखय नाटक निरुपम थान ॥ २३७ ॥ कबहीं शुभ सिंगाररसलीन । हाव भाव जोवै परवीन ॥ कबही हास्यकथा विस्तरै । वनक्रीड़ा देविन सँग करै ॥ २३८ ॥ यों नानाविधि करत विलास । प्रतिदिन सुखसागरमें बास ॥ साढ़े तीन हाथ परवान । दिव्यशरीर अतुल द्युतिवान ॥ २३९ ॥ सागर बीस परमथिति जास । बीस पच्छपर लेय उसास ॥ बीसहजार वर्ष अवसान । मनसा भोजन करै महान ॥ २४० ॥ पंचम पिरथी लों जिस सही । अवधिशक्ति जिनशासन कही ॥ तावत मान विक्रियाखेत । सकलकाज साधनसुखहेत ॥ २४१ ॥ असंख्यात सुर सेवन पाय । देवीनेत्रकमलदिनराय ॥ यों पूरवकृत पुन्यसँयोग । करैं इन्द्र इन्द्रासन भोग ॥ २४२ ॥

दोहा—कहा इन्द्रअहमिंद्र पद, जन्म धरै फिर आय ॥ जैन धर्म नृपकी धुजा, लोक शिखर फहराय ॥ २४३ ॥

इति श्रीमत्पार्श्वपुराणभाषायां आनन्दरायइन्द्रपदप्राप्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽधिकारः ।

अथ पञ्चमोऽधिकारः ।

दोहा—वंदौं पारसपदकमल; अमलबुद्धिदातार ॥ अब वरनौं जिनराजके, पंच कल्यानक सार ॥ १ ॥ चौपाई—प्रथम अनंत अलोकाकाश । दशौं दिशा मरजाद न जास ॥ दूजो दरव जहां नहिं और । सुन्न सरूप गगन सब ठौर ॥२॥ तहां अनादि लोक थिति जान । छीदे पाँय पुरुष संठान ॥ कटिपै हाथ सदा थिर रहै । यह सरूप जिनशासन कहै ॥ ३ ॥ पौन पिंड वेढ़ो सरवंग । चौदह राजू गगन उतंग ॥ घनाकार राजू गण ईश । कहे तीनि सौ तेंतालीश ॥ ४ ॥ जीवादिक छह दरव सदीव । तिनसों भरयो जथा घट घीव ॥ स्वयंसिद्ध रचना यह वनी । ना इस करता हरता धनी ॥५॥ दरव दृष्टिसों ध्रौव्यसरूप । परजयसों उतपत छयरूप ॥ जैसे समुद सदा थिर लसै । लहर न्याय उपजै अरु नसै ॥ ६ ॥ लोक नाड़ि तिस मध्य महान । चौदह राजू व्योम उचान ॥ राजूमित चौड़ी चहुँपास । यह त्रसखेत जिनागम भास ॥ ७ ॥ याके बाहर जंगम जीव । समुदघात विन नाहिं सदीव ॥ तामें तीनों लोक विशाल । ऊरध मध्य और पाताल ॥ ८ ॥ सोलह स्वर्ग पटल बावन्न । नव ग्रीवक नव जान रवन्न॥ अनुदिश और अनुत्तर येह । एक एक ही पटल गिनेह ॥ ९ ॥ ये सब त्रेसठ पटल वखा-

न । सिद्धखेत सोहैं सिर थान॥ ऊरध लोक बसै इहि भाय । उत्तम सुरथानक सुखदाय ॥ अधोलोकमें बहुविधि भेय । सात नरक असुरादिक देव ॥ मध्यलोक पुनि तीजो तहां । असंख्यात दीपोदधि जहां ॥ ११ ॥ तिनमें शोभावंत सुहात । जंबूदीप जगत-विख्यात ॥ लच्छ महाजोजन विस्तार । सूरजमंडलकी उनहार ॥ १२ ॥ वज्रकोट जिस ओटैं अभंग । परिमित जोजन आठ उतंग ॥ चारों दिश दरवाजे चार । तिनके नाम लिखों अवधार ॥१३॥ विजय नाम पूरवमें जान । वैजयंत दाच्छिन दिश ठान ॥ पश्चिम भाग जयंत दुवार । उत्तरमें अपराजित सार ॥ १४ ॥ लवन समुद्र खातिका रूप । चहुंदिश बेढ़्यो सजल सरूप॥ तहां सुदर्शन मेरु महान । मध्य भाग शोभा असमान ॥१५॥ अति उतंग लख जोजन सोय । रिज्जुविमान जा ऊपर होय ॥ सब शैलनमें ऊंचो यहै ॥ ग्रीव उठाय किधौं इम कहै ॥१६॥ करै कौन गिरि मेरी रीस । जिनपति न्हौन होय मुझ सीस ॥ चारों दिशि चारों गजदंत । नील निषधसों लगे महंत ॥१७॥ छह कुलपर्वत बडे विथार । पूरव पच्छिम दीरघ सार ॥ आठ महागिरि दिग्गज नाम । मेरु निकट आठोंदिशि ठाम ॥ १८ ॥ कनक वरन सोलह वच्छार । महाविदेहविषैं छबिसार ॥ कंचनगिरि दीसै परवान । सीता सीतोदा तट थान ॥ १९ ॥ कुरु भूमाहिं

जमकगिरि चार। नील निषधके निकट निहार ॥ चार नाभिगिरि मिथ्या नाहिं। मध्यम जघनभोगभूमाहिं ॥ २० ॥ विजयारध पर्वत चौंतीस । इतने ही वृषभाचल दीस ॥ ते मलेच्छमधिखंडनाविखें । चक्री जहां नांव निज लिखैं ॥ २१ ॥ यों गिरि दीपविषैं वरनये । ग्यारह अधिक एक सौ भये ॥ भद्रशाल वन दोय सुवास । पूरव अपर मेरुके पास ॥ २२ ॥ दो तरु जंबूसैंभलनने । उत्तम भोगभूमिमें बने ॥ छह द्रह बड़े कुलाचलसीस । पद्म महापद्मादिक दीस ॥ २३ ॥ वीस सरोवर और सुनेह । सीता सीतोदामाधि तेह ॥ उत्तम मध्यम जघन विशेश । भोगभूमि छह कही जिनेश ॥ २४ ॥ महादेश चौंतीस सुखेत। ऐरावत अरु भरत समेत ॥ इतनी ही नगरी परवान । आरजखंडमध्य थिर थान ॥ २५ ॥ उपससुद्रकी संख्या यही । कछु विनाशिक कछु थिर सही ॥ पूरवदिशि दो बाग महंत । देवारण्य दीपके अन्त ॥ २६ ॥ ऐसे ही पच्छिम दिश दोय। भूतारण्य नाम तिन होय॥ गंगादिक सरिता दशचार । चौंसठ महा विदेहमझार ॥ २७ ॥ बारह विपुल विभंगा जेह । महानदी नब्बै सब येह ॥ इतने ही सब कुंड महान । जहां तरंगिनि उतरैं आन ॥ २८ ॥ सत्रह लाख सघन परिवार । सहसछानवै ऊपर धार ॥ यह सब जम्बूदीपसमास । आगममें विस्तार प्रकाश ॥ २९ ॥

दोहा—यही कथन अंगनविषैं, वरन्यौ गनधर ईश ॥ तीनलाख पदमें सही, ऊपर सहस पचीस ॥ ३० ॥ चौपाई—यों अनेक रचना आधार । दीपराज राजै अधिकार ॥ तहां मेरुके दच्छिन भाग । किधों भूमितिय सुभग सुहाग ॥ ३१ ॥ भरतखंड छह-खंड समेत । धनुषाकार विराजत खेत ॥ तामें सबसुखधर्मनिवास । काशीदेश कुशल-जनवास ॥ ३२ ॥ गांव खेट पुर पट्टन जहां । धनकन भरे बसैं बहु तहां ॥ निवसैं नागर जैनी लोय । दयाधर्म पालैं सब कोय ॥ ३३ ॥ जिनमँदिर ऊँचे जिनमाहिं । नरनारी नित पूजन जाहिं ॥ पद पद पुरपंकित पेखिये । उदवसथान न कहिं देखिये ॥ ३४ ॥ नीर अगाध नदी नित बहैं । जलचर जीव जहां नित रहैं ॥ मुनिजनभूषित जिनके तीर । काउसग्ग धरि ठाड़े धीर ॥ ३५ ॥ ऊंचे परवत झरना झरैं । मारग जात पथिक मन हरैं ॥ जिनमें सदा कन्दराथान । निहचल देह धरैं मुनि ध्यान ॥ ३६ ॥ जहां बड़े निर्जनवनजाल । जिनमें बहुविधि विरछ विशाल ॥ केला करपट कटहल कैर । कैथ करोंदा कौंच कनैर ॥ ३७ ॥ किरमाला कंकोल कल्हार । कमरख कंज कदम कचनार ॥ खिरनी खारक पिंडखजूर । खैर खिरहटी खेजड़ भूर ॥३८॥ अर्जुन अँवली आँब अनार । अगर अंजीर अशोक अपार ॥ अरनी औंगा अरलू भने । ऊंबर अंड अरीठा घने ॥ ३९ ॥

पाकर पीपल पूंग प्रियंग। पील्लू पाटल पाढ़ पतंग॥ गौंदी गुड़हल गूलर जान। गांडर गुंजा गोरखपान॥ ४०॥ पंचा चीढ चिरोंजी फली। चंदन चोल चँबेली भली॥ जंड जँभीरी जामन कोट। नीम नारियल हीस हिगोट॥ ४१॥ सौना सीसम सेंभल शाल। सालर सिरस सदा फलजाल॥ बांस बबूल बकायन बेर। बेत बहेड़ा बड़हल पेर॥ ४२॥ महुआ मौलसिरी मचकुन्द। मरुवा मोखा करना कुन्द॥ तूत तबोंलनि तींदू ताल। तगर तिलक तालीस तमाल॥ ४३॥ इहि विधि रहे सरोवर छाय। सबही कहत कथा बढ़ जाय॥ तहां साधु एकांत विचार। करैं पठनपाठनाविधि सार॥ ४४॥ विविध सरोवर शीतल ठाम। पंथी बैठि लेहिं बिसराम॥ निर्मल नीर भरे मनहार। मानो मुनिचित विगतविकार॥ ४५॥ सोहैं सफल सालके खेत। भये नम्र फलभारसमेत॥ सज्जनजन ज्यों संपति पाय। छोड़ गुमान चलैं सिर नाय॥४६॥ केवलज्ञानी करत विहार। जहां सदा सबसुखदातार॥ आचारज चहुसंघसमेत। विहरमान भविजन हितहेत॥ ४७॥ केई जहां महाव्रत लेहिं। भवदुखवास जलांजलि देहिं॥ केई धीर उग्र तप करैं। ते अहिमिंद्र जाय अवतरैं॥ ४८॥ केई श्रावकके व्रत पाल। अच्युत स्वर्ग बसैं चिरकाल॥ केई कर जिनजज्ञ विधान। पावैं पुन्नी अमरविमान॥ ४९॥ केई

मुनिवरदानप्रभाव । भोगैं भोगभूमिकी आव ॥ अतिपुनीत सब ही विधि देश । जहां जन्म चाहैं अमरेश ॥ ५० ॥ तहां वनारस नगरी बसै । देखत सुरनरमन हुलसै ॥ है प्रसिद्ध धरनीपर सोय । तीरथराज कहैं सब कोय ॥ ५१ ॥ शोभा जाकी कही न जाय । नाम लेत रसना शुचि थाय ॥ जहां सरोवर नाना भांति । जिनके तीर तरोवर पांति ॥ ५२ ॥ निजजीवन जीवन सुख देहिं । कमलसुबास शिलीमुख लेहिं ॥ सोहैं सघन रवाने बाग । फले फूल फल बढ़्यो सुहाग ॥ ५३ ॥ सजल खातिका राजै खरी । उठैं लहरि लोयन गति हरी ॥ कोट उतंग कांगुरे लसैं । मानो सुरगलोक दिशि हँसैं ॥ ५४ ॥ ऊंचे महल मनोहर लगैं । सोरन कलश शिखर जगमगैं ॥ अति उन्नत जिनमंदिर जहां । तिन महिमा वरनन बुध कहां ॥ ५५ ॥ रतनाविम्ब राजै जिहिमाहिं । शिखर सुरंग धुजा फहराहिं ॥ कंचनके उपकरन समाज । आवैं भविजन पूजाकाज ॥ ५६ ॥ जय जय शब्द सहित छबि छजै । किधौं धर्म रयणायर गजै ॥ नगरनारि नित वंदन जाहिं । जिनदर्शन उच्छव उरमाहिं ॥ ५७ ॥ भूषनभूषित सुंदर देह । मानो सुभग अपछरा येह ॥ सब ग्रहस्थ साधैं षट कर्म । पालैं प्रजा अहिंसाधर्म ॥ ५८ ॥ दोष अठारहवराजित देव । तिस प्रभुको पूजें बहु भेव ॥ चा-

ह चिनग वरजित जो धीर । सोई गुरु सेवैं बरवीर ॥ ५९ ॥ आदि अंत जे विगत विरोध । तेई ग्रंथ सुनैं मनसोध ॥ सत्य शील गुन पालैं सदा । तातैं लोग सुखी सर्वदा॥६०॥

दोहा—प्रजा वनारस नगरकी, नागर नीत सुजान ॥ चार रतनके पारखी, लहिये वर घर थान ॥ ६१ ॥ देव धर्म गुरु ग्रंथ ये, बड़े रतन संसार । इनको परखि प्रमानिये, यह नर भव फल सार ॥ जे इनकी जानैं परख, ते जग लोचन वान । जिनको यह सुधि ना परी, ते नर अंध अजान ॥६३॥ लोचनहीने पुरुषको, अंध न कहिये भूल ॥ उर लोचन जिनके मुँदे, ते अंधे निर्मूल ॥६४॥

चौपाई--इहि विधि नगर बसै बहु भाय । सब शोभा वरनी नहिं जाय ॥ अश्वसेन भूपति बड़ भाग । राज करै तहाँ अतुल सुहाग ॥ ६५ ॥ काशिपगोत्र जगतपरशंस । वंश इष्वाकाविमलसरहंस ॥ तेजवंत दिनपति ज्यों दिपै । प्रभुता देखि शचीपति छिपै ॥६६ ॥ कलपतरोवर सम दातार । रतिपति लाजै रूप निहार ॥ रयनायर सम अति गंभीर । पर्वतराज बराबर धीर ॥ ६७ ॥ सोम समान सबन सुखदाय । कीरति किरन रही जगछाय ॥ तीन ज्ञानसंजुक्त सुजान । परम विवेकी दयानिधान ॥ ६८ ॥ जिनपद भक्ति धर्म धन वास । गुरुसेवारति नीतिनिवास ॥ कला चातुरी बुधि विज्ञान । विद्या विनय संपदा थान ॥ ६९॥ सकल सारगुनमानिककोष ।

उभय पच्छ निर्मल निर्दोष ॥ जिनसूरजउदयाचल राय। तिस महिमा वरनी किमि जाय ॥७०॥ वामादेवी नाम पवित्त। तिनके घर रानी शुभ चित्त ॥ निरुपम लावन सब्बगुन भरी। रूपजलधिवेला अवतरी॥७१॥ नखशिख सहज सुहागिनि नार॥ तीनलोकतियतिलक सिंगार ॥ सकल सुलच्छनमंडित देह । भाषा मधुर भारती येह ॥ ७२ ॥ रंभा रति जिस आगे दीन। रोहिनि रूप लगै छबि छीन॥इन्द्र बधू इमि दीसे सोय। रविद्युति आगे दीपकलोय ॥ ७३ ॥ जनमनहरषबढ़ावन एम । कातिकचंद्र चंद्रिका जेम ॥ सकल सार गुनमानिकी खानि। शीलसंपदाकी निधि जानि ॥७४॥ सज्जनताकी अवधि अनूप। कला सुबुधिकी सीमारूप ॥ नाम लेत अघ तजै समीप । महापुरुषमुकाफलसीप॥७५॥ त्रिभुवननाथ रत्नकी मही। बुधिबल महिमा जाय न कही ॥बहु विधि दंपति संपति जोग। करैं पुनीत पुन्यफल भोग॥७६॥ उक्तं च षट्पाहुड़ग्रन्थेआर्या—तित्थयरा तप्पियरा हलहर चक्कांई वासदेवांई। पडिवास भोय भूमिय आहारो णत्थि णीहारो ॥७७॥ चौपाई-जिनवर जिनमाता जिनतात।बासदेव बलदेव विख्यात॥चक्री राय जुगलिया जोय इन सबके मल मूत्र न होय ॥७८॥ दोहा—पूरव गाथाको अरथ, लिख्यो चौपई लाय ॥ षटपाहुडटीकाविषै, देख लेउ इहि भाय॥७९॥चौपाई—अब आगे भविजन मन थंभ। सुनो

गर्भमंगल आनंद ॥ एक दिना सौधर्म सुरेश ॥ धनपति प्रति दीनो उपदेश ॥ ८० ॥
आनतेंद्रकी थितमें सही । आयु छ मास शेष सब रही ॥ तेवीसम अवतार महान । हो-
सी नगर बनारस थान ॥ ८१ ॥ अश्वसेन भूपतिके धाम । पंचाचरज करो अभिराम ॥
यह सुरेन्द्रने आज्ञा करी । सो कुबेर निज माथें धरी ॥८२॥ चल्यौ तुरत लाई नहिं बार ।
सोहै संग अमर परवार ॥ हरपित अंग पिता घर आय । करी रतन वर्षा बहुभाय ॥८३॥
जिनके तेज तिमर नहिं रहै । नाना वरन प्रभा लहलहै ॥ ऐसे निर्मोलक नग भूर । बरषें
नृपके आंगन पूर ॥८४॥ दोहा—नभसों आवें झलकती, मानिधारा इहि भाय ॥ सुरग-
लोक लछमी किधौं, सेवन उतरी माय॥८५॥ चौपाई—साढ़े तीन कोड़ परवान। यों नित वरषै
रतन महान॥ सुरभि सुगंध कलपतरुफूल। वरषावैं सुर आनँदमूल॥८६॥ गंधोदककी वरषा
करैं। मानो मुकताफल अवतरैं ॥ प्रातिदिन देव दुंदभी बजैं । किधौं महासागर यह गजैं
॥ ८७ ॥ नंद वरद जयजय उच्चरें । मात पिता प्रति सुर यौं करें ॥ इहि विधि पंचाचरन
विलोक । जैनी भये मिथ्याती लोक ॥ ८८ ॥ दोहा—देवन किये छ मास लौं, पंचाचरज
अनूप॥ देखि देखि परजा भई, आनँद अचरजरूप॥८९॥ चौपाई—यों अतिआनँदसों दिन
जाहिं। माता मगन सुखोदधिमाहिं॥ मानिकजटित मनोहर धाम। रत्नपलंक सेज अभि-

राम ॥९० ॥ मणिमय दीप जहां जगमगैं। अति सुगंध आवत अलि पगैं ॥ करि चतुर्थ आनन्दस्नान। करैं शयन जननी सुखमान॥९१॥ पच्छिम रैन रही जब आय। सोलह सुपनें देखे माय ॥ तिनको नाम लिखों अवलोय। पढ़त सुनत पातक छय होय ॥९२॥

पद्धडी-- सुपनावलि सोलह सुनहु मीत। जिनराजजन्मसूचक पुनीत। ऐरावत हाथी प्रथम दीस। मदगीलो गंड विशाल सीस ॥९३॥ देख्यो डकारत वृषभराज। अतिउज्जल मोतीवरन भ्राज ॥ देख्यो पंचानन धवलदेह। निज नाद करै ज्यौं शरदमेह ॥ ९४ ॥ देख्यो मणिआसनशोभमान। तहँ हेमकलश कमलासनान॥ देखी दो पावन पहुपमाल। भ्रमरावलि बेढ़ी अतिविशाल॥९५॥ रविमंडल देख्यो तम दलंत। उदयाचल ऊपर उद-यवंत। संपूरन तारापति विमान। ताराचलमध्य विराजमान॥९६॥जलतिरत मनोहर मीन जोट। देखे जिनजननी पलकओट॥ देखे चामीकरकलश दोय। अति झलकैं वारिजचढके सोय ॥ ९७ ॥ देख्यो कमलाकर कमलछन्न। बहु हंसी हंसनसों रवन्न ॥ देख्यो रयणायर गर्जमान। पुनि सिंहपीठ मानिकनिधान॥ ९८॥ फिर देख्यो देव विमान जोग। धुज घंटा झालरसों मनोग॥प्रगट्यो महि फोरि फनेंद्रधाम। मणि कंचनमय नयनाभिराम॥९९॥ पुनि रत्नराशि देखी अनूप। इंद्रायुध वरन विचित्ररूप, निर्धूम धनंजय दीपमान। ये देखे

सोलह सुपन जान ॥ १०० ॥ दोहा—गजप्रवेश मुखकमलमें, सुपनअंत अविलोय॥ सुखनिद्रा पूरी भई, भयो प्रात तम खोय ॥ १०१ ॥ दोहा--पूर्व दिवाकर ऊगयो, गयो तिमिर दुखदाय ॥ जैसे जैनसिधांत सुनि, भरमभाव मिट जाय ॥१०२॥ मंद तेज तारे भये, कछु दीखैं कछु नाहिं । ज्यों तीर्थंकरके उदय, पाखंडी छिप जाहिं ॥ १०३ ॥ सूरजवंशी जे कमल, खिले सरोवरमाहिं। ज्यों जिनबिंब बिलोकिके, भविलोचन पिक-साहिं ॥१०४॥ चंदविकाशी कमल जे, विकसत भये न सोय । ज्यों अजान जिनवचन सुनि, मुदित मूलनहिं होय ॥१०५॥ चक्रवाक हरषत भये, ज्यों जिनमत संयोग॥ जीव सुमति पियनारिको, मिट्यो अनादिवियोग ॥ १०६ ॥ घूघूगण भूतलविषै, आंधे भये असूझ ॥ जैनग्रन्थके रहसमें, ज्यों परमती अबूझ ॥१०७॥ कमलकोष मधुकर बँधे, छुटे जग्यो सिर भाग। यथा जीव जिनधर्मसों, मुक्त होय भवत्याग ॥ १०८ ॥ पथिक लोग मारग चले, सूझे घाट कुवाट । जिनधुनि सुनि सूझै यथा, स्वर्गमुक्तिकी बाट ॥ १०९ ॥ इहि विधि भयो प्रभात शुभ, आनंद भयो अतीव ॥ धर्मध्यान आराधना, करन लगे भवि जीव ॥ ११० ॥ जिनजननी रोमांचि तन, जगी मुदित सुख जान । किधौं सकंटक कमलनी, विकसी निशि अवसान ॥ १११ ॥ मंगलीक बाजि-

त्र धुनि, सुनि वन्दीजन गान । उठी सेज तजि सुखभरी, धर्‍यो हिये शुभ ध्यान ॥ ११२ ॥ सामायिकाविधि आदरी, पंच परमपदलीन । और उचित आचार सब, स्नान विलेपन कीन ॥ ११३ ॥ पहरे शुभ आभरन तन, सुन्दर वसन सुरंग । कलपबेल जंगम किधौं, चली सखीजन संग ॥११४॥ राजासिंहासन भूप तब, बैठे सभा सुथान । देवी आवत देखिकै, कियो उचित सनमान ॥ ११५ ॥ अर्धासन बैठन दियो, जोग वचन मुख भास । यों रानी विकसत वदन, बैठी भूपति पास ॥ ११६ ॥ सभालोक तार विविधि. भूपति चांद सरूप ॥ श्रीवामादेवी तहां, दिपै चन्द्रिकारूप ॥ ११७ ॥ स्वामी सोलह सुपन हम, देखे पच्छिम रैन । श्रीमुखतें इनको सुफल, कहौ श्रवनसुखदैन ॥ ११८ ॥ अश्वसेन भूपाल तब, बोले अवधि विचार । एकाचित्त करि देवि तुम सुनो सुपनफल सार ॥ ११९ ॥ चौपई--धुरि गजेन्द्रदर्शनतैं जान । होसी जगपति पुत्र प्रधान ॥ महावृषभ पुनि देख्यो सोय । जगजेठो नंदन तुम होय ॥१२०॥ श्वेतसिंह दरशनफल भास । अतुल अनंती शक्तिनिवास ॥ कमलामज्जनतैं सुरईश । करै न्हौन कनकाचलसीस ॥ १२१ ॥ पहुपदाम दो देखीं सार । तिसफल दुविधि धर्मदातार ॥ शशितैं शकल लोकसुखदाय । तेजपुंज सूरजतैं थाय ॥ १२२ ॥ मीन युगलतैं सब सुखभाज ।

कुंभबिलोकनतैं निधिराज ॥ सरवरतैं सब लक्षणवान । सागरतैं गंभीर महान ॥ १२३॥ सिंहपीठतैं मृगलोचनी । होय बाल तुम त्रिभुवनधनी ॥ सुरविमान देख्यौ सुख पाय । स्वर्गलोकतैं उपजै आय ॥ १२४ ॥ नागराज ग्रहको सुन हेत । जन्मै मतिश्रुति अवधिसमेत ॥ रत्नराशितैं गुनमनिथान । कर्मदहन पावकतैं जान ॥१२५ ॥ गजप्रवेश जो वदनमझार । सुपन अन्त देख्यौ वरनार ॥ श्रीपारसजिन जगतप्रधान । गर्भ तुम्हारे उतरे आन ॥१२६॥ दोहा—सुनि वामादे सुपनफल, रोमांचित तन भूर ॥ सुवचन जल सींचत किधौं, उगे हरष अंकूर ॥१२७॥ चौपई—अब सौधर्म सुरेश विचार । स्वामिगर्भअवसर निरधार ॥ कुलगिरिकमलवासनी जेह । श्रीआदिक देवी गुनगेह॥१२८॥ तिन्हैं बुलाय कह्यौ शुभ भाव । अश्वसेन भूपति घर जाव ॥ वामादेवीके उरथान । तेवीसम जिन उतरे आन ॥ १२९ ॥ तिनकी गर्भशोधना करो । निज नियोगसेवा मन धरो ॥ यह सुनि सब आनन्दित भई । इन्द्रआन माथे धर लई ॥१३०॥ स्वर्गलोक तजि आई तहां । बसै बनारसि नगरी जहां ॥ महाकांत तन लावनभरीं । मानो नभदामिनि अवतरीं ॥१३१॥ अंग अंग सब सजे सिंगार । रूपसम्पदा अचरजकार ॥ चूड़ामनि माथे जगमगै । देखत चकाचौंध सी लगै ॥ १३२ ॥ सुरतरुसुमनदाम उर धरी । अति सुवास

दशादिशि विस्तरी ॥ श्रवनसुखद नेवरझंकार । शोभा कहत न आवै पार ॥१३३॥आय
नृपतके पायन नई । आयस मांगि महलमें गई ॥ सिंहासनथित माय निहार । करि
प्रनाम कीनो जैकार ॥ १३४ ॥ दोहा—जननीदेह सुभावसों, अतिनिर्मल अविकार ॥
ताहि कुलाचलवासनी, और करैं शुचि सार ॥ १३५ ॥ कृष्णपाख वैशाख दिन, द्वितिया
निशि अवसान । विमलविशाखा नखतमें, बसे गर्भ जिन आन ॥ १३६ ॥ जथा सीप
सम्पुटविषैं, मोती उपजै आन । त्योंही निर्मल गर्भमें, निराबाध भगवान॥१३७॥गर्भ ब-
सैं पर गर्भतैं, बरतैं भिन्न सदीव ॥ घटतैं घटवरती गगन, क्यों नहिं भिन्न अतीव॥१३८॥
चौपाई—तब जिन पुन्यपवनवश हले । चहुँविधि सुरके आसन चले ॥ चिह्नदेख इन्द्रादि-
कदेव । जानों अवधिज्ञानबल भेव॥१३९॥जिनवर आज गर्भ अवतरे । यह विचार उर
आनँद भरे ॥ चढ़ि विमान परिवारसमेत । चले गर्भकल्यानकहेत॥१४०॥ जयजयकार
करत बहुभाय । उच्छवसहित पितावर आय ॥ मातपिता आसनपर ठये । कंचनकलश
नहावत भये ॥ १४१ ॥ गर्भमध्यवरती भगवान । प्रणमें देव धरो मन ध्यान ॥ गीत
निरत वाजित्र बजाय । पूजा भेंट करी शिरनाय॥१४२॥यों सुरगन सब साधि नियोग ।
गये गेह करि कारज जोग ॥ इन्द्रराजको आयस पाय । रुचकवासिनी देवी आय ॥

॥१४३॥ जथाजोग सब सेवा करैं। छिन छिन जिनजननीमन हरैं॥ रुचक दीप तेरहमो जहाँ। रुचकनाम पर्वत है तहाँ ॥ १४४ ॥ सो चौरासी सहस प्रमान। इतने जोजन उन्नत जान ॥ इतनो ही विस्तीरनधार। दीप मध्यसों बलयाकार ॥१४५॥ ताके शिखर कूट बहु लसैं। दिशाकुमारी तिनमें बसैं ॥ ते सब सेवन आवैं माय। यह नियोग इनको सुखदाय ॥ १४६ ॥ कुसुमलता—आंई भक्ति नियोगिनि देवी, जिन जननीकी सेव भजैं। कोई न्हान विलेपन ठानैं, कोई सार सिंगार सजैं ॥ १४७ ॥ कोई भूषन वसन समप्पैं, कोई भोजन सिद्ध करैं। कोई देय तँबोल रवाने, कोई सुन्दर गान करैं ॥ १४८ ॥ कोई रत्न सिंहासन थापैं, कोई ढालैं चमर बरो। कोई सुन्दर सेज बिछावैं, कोई चापैं चरन करो ॥ १४९ ॥ कोई चन्दनसों घर सींचैं, सारे महल सुबास करी ॥ कोई ऑगन देय बुहारी, झारैं फूल पराग परी ॥ १५० ॥ कोई जलक्रीडा कर रंजैं, कोई बहुविधि भेष किये। कोई मानि दर्पन कर धारैं, कोई ठाड़ी खड़्ग लिये ॥१५१॥ कोई गूंथि मनोहर माला, आवैं आन सुगंध खरी। कोई कलपतरोवरसों ले, फल फूलनकी भेट धरी ॥ १५२॥ कोई काव्य कथारस पोखैं, कोई हास्य विलास ठवैं। कोई गावैं बीन बजावैं, कोई नाचत सीस नवैं ॥ १५३ ॥ दोहा—इहिं विधि सेवा करत नि-

त, नवैं मास शुभ श्रेय। प्रश्न करैं सुरकामिनी, माता उत्तर देय ॥ १५४ ॥
अंतरलापि पहेलिका, बहिरलापिका एव । बिंदुहीन निरहोठपद, क्रियागुप्ति बहुभेव
॥ १५५ ॥ इत्यादिक आगमउकत, अलंकारकी जात । अर्थगूढ़ गंभीर सब, समझावैं
जिन मात॥१५६॥ चौपई—तुमसी त्रिया कौन जग आन । तीर्थंकर सुत जनै महान ॥
जगमें सुभट कौनसे माय। जे नर जीतैं विषय कषाय॥१५७॥कौन कहावै कायर दीन।
इन्द्रीमदमेटन बलहीन ॥ पंडित कौन सुमारग चलै। दुराचार दुमारग दलै ॥१५८॥
माता मूरख कौन महंत, विषयी जीव जगत जावंत । कौन सत्पुरुष नरभव धार, जो
साधै पुरुषारथ चार ॥ १५९ ॥ कौन कापुरुष कहिये मर्म । जो शठ साध न जानै ध-
र्म ॥ धन्य कौन नर इस संसार। योवन समय धरै व्रतभार ॥ १६० ॥ धिक किनको
कहिये सर्वंग । जे धर करें प्रतिज्ञा भंग ॥ कौन जीवके वैरी लोय। काम क्रोध हैं और
न कोय ॥ १६१ ॥ जननी जगमें कौन मलीन । पातकपंकमलिन मतिहीन ॥
कहो कौन नर नित्त पवित्त। ब्रह्मचर्यधारी दृढ़चित्त ॥१६२ ॥ कौन पशू मानुष आ-
कार। जिनके हिरदै नाहिं विचार ॥ अंध कौन जो देव अदेव । कुगुरुसुगुरुको भेद
न भेव ॥ १६३ ॥ बाधिर कौनसे उत्तर देह । जैनसिधाँत सुनै नहिं जेह ॥ मूकनाम

नर कैसें लहै । जो हित सांच वचन नहि कहै ॥ १६४ ॥ लाँबी भुजा कौन करहीन ।
जिनपूजा मुनि दान न दीन॥कौन पाँगले पाँवसमेत । जे तीरथ परसैं न अचेत॥१६५॥
कौन कुरूप जननि कहु एह । शीलसिंगार विना नरजेह ॥ वेग कहा करिये बड़
भाग । दिच्छागहन जगतको त्याग ॥ १६६ ॥ मित्र कौन हितवंछक होय । धर्म दि-
ढ़ावै आलस खोय ॥ शत्रु कौन जो दिच्छालेत । विघन करै परभवदुखहेत ॥ १६७ ॥
जियको कौन शरन है माय । पंचपरमगुरु सदा सहाय ॥ इहिविधि प्रश्न करैं सुरनारि ।
माता उत्तर देहिं विचारि ॥ १६८ ॥ वामादेवी सहज प्रवीन । सकल मरम जानै गुन-
लीन ॥ पुरुषरतन उरअन्तर बहै । क्यों नहिं ज्ञान अधिकता लहै ॥ १६९ ॥ दोहा—
निबसैं निर्मल गर्भमें, तीन ज्ञान गुनवान । फटकमहलमें जगमगै, ज्यों मनि दी-
प महान ॥ १७० ॥ उदयवान दिनकरसमय, पूर्व दिशा छबि तेम । त्रिभुवनपति सुत
उर धरैं, सोहत जननी एम ॥ १७१ ॥ गर्भभार व्यापै नहीं, त्रिबली भंग न होय ।
देह न दीखै पीतछबि, और विकार न कोय ॥ १७२ ॥ ज्यों दर्पन प्रतिबिंबसों, भारी
कह्यो न जाय । त्यों जिनपतिके गर्भसों, खेद न पावै माय ॥१७३॥ कलपलतासी लसत
अति, जननी छबिसंयुक्त । मंदहास कुसुमित भई अब फलि है फल पुत्त ॥१७४॥ देव-

राजके वचनसौं, अहनिश हर्षत अंग॥ अलखरूप सेवै शची लिये अपछरा संग॥१७५॥ पूरबवत नवमास लौं पंचाचरज अनूप ॥ अश्वसेन भूपालघर, किये धनद सुखरूप ॥ १७६ ॥ यों सुखसौं निशदिन गये, खेद नामकहिं नाहिं ॥ यह सब पुन्य प्रभाव है यही रहस इसमाहिं ॥ १७७ ॥

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां गर्भावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽधिकारः।

अथ षष्ठोऽधिकारः।

दोहा—रागादिक जलसौं भरो, तन तलाब बहु भाय । पारस रवि दरसत सुखै, अघ सारस उड़ि जाय ॥ १ ॥ गर्भ मास पूरन भये, नभ निर्मल आकार । पौष मास एकादशी, श्याम पच्छ शुभ बार ॥ २ ॥ वामादेवी पूर्व दिशि, जनम्यो जिनवर भान । मुदित भयो त्रिभुवनकमल, अशुभतिमिर अवसान ॥ ३ ॥ अश्वसेन नृप उदयगिरि, उगयो बाल दिनेश । तीनज्ञान किरनावली, लिये जगत परमेश ॥ ४ ॥ पद्धडी—जनम्यो जब तीर्थंकर कुमार । तिहुँलोक बढ्यो आनँदअपार ॥ दीखै नभनिर्मल दिशि अशेश । कहिं आंधी मेह न धूलि लेश ॥ ५ ॥ अति शीतल मंद

सुगंधि वाय । सो वहन लगी सुखशांतिदाय ॥ सब सुजनलोक हरषे विशेश । ज्यों कमल
खंड प्रगटत दिनेश ॥ ६ ॥ घंटा वन गरजे देवलोक । ज्योतिषिचर केहरिनाद थोक ॥
भवनालय बाजे सहज संख । विंतरनिवास भेरी असंख ॥ ७ ॥ ये अनहद बाजे
वजे जान । जिनराज जन्मअतिशय महान ॥ बहु कल्पनरोवर पहुपवृष्टि । स्वयमेव
करन लागे विशिष्टि ॥ ८ ॥ इन्द्रासन कांपे अकसमात । ये करन कियों सारय सुजान ॥
जिनजन्म भयो भूलोकमाहिं । उच्चासन अब तुम जोग नाहिं ॥ ९ ॥ आनम्र भये
मणिमुकट एम । श्रीजिनपति करत प्रनाम जेम ॥ ये चिह्न देखि इन्द्रादिदेव । तब अ-
वधिज्ञानबल जान भेव ॥ १० ॥ निरधार बनारसि नगरथान । तीरथपति जनम्यो
आज आन ॥ प्रभुजन्मकल्यानककरनकाज । उद्यम आरंभ्यो देवराज ॥ ११ ॥ परवार-
सहित सब इन्द्र नाम । आये मिल प्रथमसुरेन्द्रधाम ॥ नानाविधि वाहन चढे जेह ।
जिनभक्तिसलिलसिंचतसुदेह॥१२॥ सप्तांग सैन तब चली एम । यह महाजलधिकी लहर
जेम ॥ हाथी रथ पायक वृषभ वाज । गायनि निर्तकि सेनासमाज ॥ १३ ॥ एकेक सैन-
में सात कच्छ । तिहिमाहिं प्रथम चउ असी लच्छ ॥ फिर दुगुन दुगुन सात लों जान ।
इस भांत सात सेना महान ॥ १४ ॥ सौ कोर और छैकोर जोरि । अठसठ लाख ऊपर

बहोरि ॥ यह एकहस्ति सेनाप्रमान । ऐसी ही सब सातों समान ॥ १५ ॥ तहँ नागदन्त सुर आभियोग । सो करत विक्रिया निजनियोग ॥ ताप्रति आज्ञा दीनी सुरिन्द । तिन कीनों ऐरावत गइन्द ॥ १६ ॥ लख जोजन मान मतंगईस । अतिउन्नत देह उतंग सीस ॥ शुभसेतवरन मनहरन काय । लीलागति धारै ललितपाय ॥ १७ ॥ मदजीवन-कलित कपोल श्याम । नख विद्रुमवर्ण मनोभिराम ॥ सब लसत सुलच्छन अंग अंग । नहिं गिनी जाहिं जिस छबितरंग ॥ १८ ॥ गंभीर घनाघनघोष जास । बहु सुंदर सुंड सुगंध सांस । सो कामसरूपी कामगौन । जादेखैं मोहत तीन भौन ॥ १९ ॥ घनघोरत घंटा लंबमान । माणि घूंघुरमाला कंठथान ॥ सोवनपाखर सो दिपै देह । संपाजुत मानो शरद मेह ॥ २० ॥ सौ वदन विराजत शोभवन्त । एकेकवदनमें आठ दन्त ॥ प्रतिदंत सरोवर एक दीस । सरसरहँ कमलनी सौपचीस ॥ २१ ॥ एकेक कमलनी प्रति महान । पच्चीस मनोहर कमल ठान ॥ प्रतिकमल एकसौ आठपत्र । शोभावरनी नहिं जाय तत्र ॥ २२ ॥ पत्रनपर नाचें देवनार । जगमोहत जिनकी छबि निहार ॥ नव नवरस पोषैं करत गान । लावन्यजलधि बेलासमान ॥ २३ ॥ तिस हाथी ऊपर शचीसंग । सौधर्मसुरगपति मुदितअंग ॥ आरूढ़ भयो अति दिपत एम । उदयाचलमस्तक भानु जेम ॥ २४ ॥

चंद्रोपम चामर छत्रशीश । दशजाति कल्पसुरसाहित ईश ॥ ईशानप्रमुख इमि देवराज ।
निज निज बाहनको चले साज ॥२५॥परिजनसमेत उर हरषभाव। जिन जन्मकल्यान-
क करन चाव ॥ बाजे सुरदुन्दाभि विविधि भेव । जयकार करैं मिलि सकल देव ॥२६॥
उपज्यो कोलाहल गगन थान। सब दिशि दीखैं बाहन विमान॥ आकाशसरोवर अतिगँ-
भीर। इन्द्रादि अमर तन तेज नीर॥२७॥तहां विकसत मुख अपछरा एम । यह खिल्यो
कमलनीबाग जेम ॥ इहि विधि देवागम भयो जान। अवतरे बनारस नगर थान॥२८॥
चन्द्रादि जोतिषी पंच जात । दश भेद भवनवासी विख्यात ॥ पुनि आठ जातके वान
देव । सब आये इन्द्र समेत ऐव ॥ २९ ॥ निज निज बाहन चढ़ि सपरिवार । जिन जन्म
महोच्छ्व हिये धार॥ तब पुरप्रदच्छना सुरन दीन । अतिहरषत उर जयकार कीन॥३०॥
वन वीथी मारग गगन रोक । सब ठाड़े देवी देव थोक ॥ सत्र शक्रशची मिलि भूप गेह।
आये घर आंगन भरो तेह ॥ ३१ ॥ तब इन्द्रबधू अति रंजमान । सो गई गुप्त जिन-
जन्मथान ॥ देखी जिनमात सपुत्त ताम । परदच्छन दै कीनो प्रनाम ॥ ३२ ॥ सुतराग
रँगी सुखसेजमांझ । ज्यों बालक भानुसमेत सांझ॥कर जोरि जुगल सिर नाय नाय॥ थुति
कीनी बहु जानै न माय॥३३॥सुखनींद रची तब शची तास । मायामय राख्यो पुत्र पास॥

करकमलन बालकरतन लीन। जिन कोटभानुछवि छीन कीन ॥ ३४ ॥ सुख उपजै जो प्रभु परस देह। कविवानीगोचर नाहिं तेह ॥ प्रभुको मुखवारिज देख देख। हरषै सुररानी उर विशेख ॥ ३५ ॥ वसु मंगल दरव विभूति सार ॥ दिशदिव्यकुमारी अग्रचार ॥ इहिविधि सौधर्मसुरेशनार ॥ आन्यों शिवकन्या वर कुमार ॥ ३६ ॥ देख्यो हरिबालकचंद जाम ॥ आनंदजलधि उर बढ्यो ताम ॥ ३७ ॥ शिरनाय इन्द्र निज बार बार ॥ थुति कीनी कर जुग शीस धार॥छबि देखि नृपति नाहिं होय लेश। तब सहसआंख कीनी सुरेश ॥ करि नमस्कार निजगोद लीन्ह। ईशान इन्द्र शिर छत्र दीन्ह ॥ ३८ ॥ तहॉं सनत्कमार महेन्द्र सोय ॥ ए चामर ढालैं इन्द्र दोय ॥ ब्रह्मादि सुरगवासी सुरेश। जय नंद वर्ध बोलैं विशेष॥३९॥नाचैं सुररमनी रूपखान। गंधर्व करैं जिनसुजसगान ॥ सुरबाजे बाजैं बहुप्रकार। कर धरहिं किन्नरी बीन सार ॥ ४० ॥ केई सुर श्रीजिनसुभग भेष ॥ देखैं भरि लोचन निर्निमेष॥ केई यों भाषैं सुरसमाज॥हम देवजन्मफल लह्यो आज ॥ ४१ ॥ केई शरधायुत भये देव। मिथ्यात महाविष वम्यो एव ॥ इस भांति चतुरविधि देवसंघ। सब चले जोतिषीपटल लंघ ॥ ४२ ॥ दोहा—जोजन सहस निन्यानवै, सुरगिरि शिखर उतंग। गये सकल सुरगन तहां, भूषणभूषित अंग ॥ ४३ ॥ चौपाई—

महामेरुके मस्तक भाग । पांडुकवन बहु धरै सुहाग । जोजनसहस जासु विस्तार । सुर चारन खग करें विहार ॥ ४४ ॥ चहुँदिशि चार जिनालय तहां । सघन सासते तरुवर जहां ॥ मध्यचूलिका मुकट सरीस । सो उतंग जोजन चालीस ॥ ४५ ॥ बारह जोजन जड़ विस्तार । आठमध्य अर ऊपर चार ॥ जाके ऊपर रजकविमान । रोमांतर नरछेत्र प्रमान ॥ ४६ ॥ तिस ईशानादिशा शुभ थान । मनिमय शिला सासती जान ॥ पांडुक-नाम फटिक उनहार । आकृति अर्ध चन्द्रमाकार ॥ ४७ ॥ सौ जोजन आयाम अभंग । विस्तर आधी आठ उतंग ॥ सुरविद्याधर पूजत नित्त । भरतखण्ड जिन न्हौन पवित्त ॥ ४८ ॥ तहां हेमसिंहासन सार । रत्नजडत सो वलयाकार ॥ धनुष पांचसौ उन्नत जोय भूमिभाग विस्तीरन सोय ॥ ४९ ॥ ऊपर जास अर्ध विस्तार ॥ जाके तेज मिटै ऑधियार तिसहीपर पदमासन साज । पूरवमुख थापे जिनराज ॥ ५० ॥ इस औसर सोहैं इमि ईश । मानो मेघ रतनागिरि शीश ॥ धुजा कलश दर्पन भृंगार । चमरछत्र सुप्रतिष्टक तार ॥५१॥ मंगल दर्व मनोहर जहां । धरे अनादि निधन ये तहां ॥ आसनदोय उभय दिश और । जुगलइन्द्र ठाड़े तिहिं ठौर ॥ ५२ ॥ चारों दिश चारों दिगपाल । जथाजोग जिन-मज्जन काल ॥ शची सुरेन्द्र अपछरा थोक । सब ठाड़े पांडुक वन रोक ॥ ५३ ॥ चौविधि

देव खड़े चहुँपास । जनम न्हौन देखन हुल्लास॥ कियो महामंडप हरि तहां । तीनलोक जन निवसैं जहां ॥ ५४ ॥ कल्पकुसुममाला मनहार । लटकैं मधुप करैं झंकार ॥ सुर वाजित्र बजैं बहुभाय । सुरभि सुगंध रही महकाय ॥ ५५ ॥ मंगल मिल गावैं सब शची । नाचैं सुर वनिता रस रची॥ तब मज्जन आरंभ विशेष । उद्यम कियो प्रथम अमरेश॥५६॥ दोहा—तहां कुबेर रतन खची, रची पैंडका पंत । मेरु शिखरसों सोहिये, छीरोदधि पर जंत ॥५७॥ सुर श्रेणी सोपान पथ, पंचम सागर जाय । भर लाई कंचन कलश, चंदन चरचित काय ॥ ५८ ॥ जोजन एक प्रमानमुख, वसु जोजन गंभीर । यह मरजादा कलशकी, जिनशासनमें बीर ॥ ५९ ॥ मुकतमाल मंडित लसैं, कंचन कलश महंत ॥ नभवनिताके उरज ये, यों अति शोभावंत ॥ ६० ॥ चौपई—सहस भुजा सुरपति तब करी । भूषनभूषित शोभा भरी ॥ इस औसर हरि सोहैं एम । भूषनांग सुरतरुवर जेम ॥ ६१॥ कलश हाथ हरि लीने जाम । भाजनांग सम शोभा ताम । तीन बार कीनो जयकार । कलशोद्धरन मंत्रउचार ॥ ६२ ॥ इहिंविधि श्रीसौधर्माधीश । ढाले कलश स्वामिके शीश ॥ तब सब इन्द्र कियो जिनन्हौन । अतुल उछाव बढ्यौ जगभौन॥६३॥ महा धार जिनमस्तक ढरी । मानो नभगंगा अवतरी ॥ मुदित असंख अमरगन

तबै । जैजैकार कियो मिलि सबै ॥ ६४ ॥ उपज्यो अति कोलाहल सार । दशादिश वधिर भई तिहिं बार ॥ भयो असम औसर इहिं भाय । वचनद्वार वरनो नहिं जाय ॥ ६५ ॥ जाधारासों गिरिशिखर, खंड खंड हो जाय ॥ सो धारा जिनदेहपै, फूलकली सम थाय ॥ ६६ ॥ अप्रमान वीरजधनी, तीर्थंकर प्रभु होय । तातें तिनकी शक्तिको, उपमा लगै न कोय ॥ ६७ ॥ नीलवरन प्रभु देहपर, कलश नीरछवि एम । नीलाचलसिर हेमके, बादल वरषैं जेम॥६८॥ चली न्हौनके नीरकी, उछल छटा नभमाहिं ॥ स्वामिसंग अघविन भई, क्यों नहिं ऊरधजाहिं ॥ ६९ ॥ न्हौनछटा तिरछी भई, तिन यह उपमा धार । दिगवनिता मुख सोहियै, करनफूल उनहार ॥ ७० ॥ सोरठा—जिनतनपरस पवित्त, भई सकल जगशुचिकरन ॥ सो धारा मम नित्त, पाप हरो पावन करो ॥७१॥ चौपाई—यों सुरेन्द्र मज्जनविधि ठान । फिर कीनों गंधोदकन्हान ॥ सो जल लेय विनयविस्तरी । शांतपाठ पढ़ि पूजा करी ॥ ७२ ॥ शक्र शची सुर आनँद भरे । यथाजोग सब कारज करे॥परदच्छन दीनी बहुभाय । बारंबार नये सिरनाय॥७३॥ हरिगीति—सौधर्मपति अभिषेक कारन,न्हौनपीठ सुदंसनो । गंधर्व गायनि निरतकारक, अपछरा जनशंसनो॥ पंचम पयोनिध न्हौन कुंड,असंख सुर सेवक जहां॥ तिस जन्मम-

गलकी बड़ाई, कहन समरथ बुध कहां ॥ ७४ ॥ चौपाई--जन्महौनविधि पूरन भई । सकल सुरासुर देवनि ठई ॥ अब इन्द्रानी जिनवर अंग । निर्जल कियो वसन शुचिसंग ॥७५॥ कुंकुमादिलेपन बहु लिये । प्रभुके देह विलेपन किये ॥ इहि शोभा इस औसरमांझ । किधौं नीलगिरि फूली सांझ ॥७६ ॥ और सिंगार सकल सह कियो । तिलक त्रिलोकनाथके दियो ॥ मनिमय मुकुट शची सिर धरो । चूड़ामनि माथे विस्तरो ॥७७॥ लोचनअंजन दियो अनूप । सहजस्वामिदृगअंजितरूप ॥ मनिकुंडल कानन विस्तरे । किधौं चंद सूरज अवतरे ॥ ७८ ॥ कंठ कंठिका मोतीहार । मुक्तिरमणि झूला उनहार ॥ भुजभूषणभूषित भुज करी । कटक मुद्रिका शोभित खरी ॥ ७९ ॥ कटिभूषन कीनो कटि थान । मनिमय छुद्रघंटिका वान ॥ पग नेवर पहराये सार ॥ जिनमें रतन झलक झंकार ॥ ८० ॥ दोहा—अंगअंग आभरनजुत, यह उपमा तिहिं काल ॥ सुरतरुसम प्रभु सोहिये, भूषनभूपित डाल ॥ ८१ ॥ चौपाई–तब इन्द्रादि लगे थुतिकरन। जय जिनवर सब आरत हरन॥ त्रिभुवनभवन दीप उनहार । धन्य देव तेरो अवतार ॥ ८२ ॥ जय श्रीअश्वसेनकुलचंद । वामानंदन जोति अमंद ॥ सुखसागरके वर्धनहार । सब जग श्रेयशांतिदातार ॥ ८३ ॥ तुम जग भ्रमना-

शन अवतरे। हमसे दास महासुख भरे॥ विन रविउदय तिमिर क्यों जाय। कैसे कमलवाग विकसाय॥ ८४॥ मिथ्यामत रजनी अतिघोर। मूसैं धर्म कुलिंगी चोर॥ जो प्रभुजन्मप्रभात न थाय। तो किमि प्रजा वसै सुखपाय॥ ८५॥ ये अनादि संसारी जीव। विलखैं भवगद ग्रसे अतीव॥ सो दुखमेंटन दयानिधान। राजवैद जनमें भगवान॥ ८६॥ भरमकूपवरती बहु लोय। काढ़नहार तिन्हैं नहिं कोय॥ श्रीमुखवचनलेज-बल धार। अब उद्धार लहैं निरधार॥८७॥आप परमपावन परमेश। औरनको शुचि करहु विशेष॥ज्यों शशि सेत प्रभा तन धरै। सेत सरूप सबनको करै॥ ८८॥ विन स्नान तुम निर्मल नित्त। अंतर बाहज सहज पवित्त॥ हम मज्जनविधि कीनी आज निजपवित्रकारन जिनराज॥ ८९॥ तुम जगपति देवनके देव। तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव॥तुम जगरक्षक तुम जगतात।तुम विनकारन बंधु विख्यात॥९०॥ तुम गुनसागर अगमअपार। थुतिकर कौन जाय जन पार॥ सूच्छम ज्ञानी मुनि नाहिं तरैं। हमसे मंद कहा बल धरैं॥ ९१॥ नमो देव अशरन आधार। नमो सर्व अतिशयभंडार॥ नमो सकल शिवसंपतिकरन। नमो नमो जिनतारनतरन॥ ९२॥

दोहा— इहि विधि इन्द्रादिक अमर, सुरपदवी फल लेय। जन्म न्हौन विधि कर

चले, मानो निज शुभ श्रेय॥९३॥ जन्ममहोच्छव देख कर, सुरपतिकी परतीत । बहु सुर सरधानी भये, ताजि सरधा विपरीत॥९४॥चौपई—तब सब देव जनमपुरथान । पूरव-ली विधि कियो पयान॥ चढ़्यो इन्द्र ऐरावत शीश । गोद लिये त्रिभुवनपतिईश॥९५॥ पूरववत दुंदभि धुनिगाजावे ही गीत निरत सब साज॥आये जय जय करत अशेष । पि-ताभवन कीनों परवेश॥ ९६ ॥ मानिमय आंगनमें हरि आप। हेम सिंहासनपर प्रभु थाप॥ अश्वसेनभूपति तिहिं वार । देख्यो नंदन नयन पसार ॥ ९७ ॥ तेजपुंज निरुपम छबि देह । रोमांचित तन बढ़्यो सनेह ॥ माया नींद शची तब हरी । जिनजननी जागी सु-खभरी ॥ ९८ ॥ भूषनभूषित कांति विशाल। भर लोयन निरख्यो जिनबाल ॥ आति प्रमोद उर उमग्यो तबै। पूरन भये मनोरथ सबै ॥ ९९ ॥ तब सुरेश रोमांचित काय । मात पिता पूजे मन लाय ॥ भूषन वसन भेंट बहु धरी। हाथ जोर जुग थुति विस्तरी ॥ १०० ॥ तुम जगमें उदयाचल भूप। पूरव दिशि देवी शुचिरूप ॥ उदय भये त्रिभु-वनरवि जहां। तुम महिमा वरनन बुधि कहां ॥ १०१ ॥ धानि धानि अश्वसेन भूपाल । जिनके जगगुरु जनम्यो बाल॥ कीरतबेल अधिक तुम बढी । तीनलोकमंडप शिर चढी ॥ १०२ ॥ धानि वामादेवी जगमाय । जिन जायो नंदन जगराय ॥ तीनलोक-

शन अवतरे। हमसे दास महासुख भरे॥ विन रविउदय तिमिर क्यों जाय। कैसे कमलराग विकसाय॥ ८४॥ मिथ्यामत रजनी अतिघोर। मूसैं धर्म कुलिंगी चोर॥ जो प्रभुजन्मप्रभात न थाय। तो किमि प्रजा वसै सुखपाय॥ ८५ ॥ ये अनादि संसारी जीव। विलखैं भवगद ग्रसे अतीव॥ सो दुखमेंटन दयानिधान। राजवैद जनमें भगवान॥ ८६॥ भरमकूपवरती बहु लोय। काढ़नहार तिन्हैं नाहिं कोय॥ श्रीमुखवचनलेज-बल धार। अब उद्धार लहैं निरधार॥८७॥आप परमपावन परमेश। औरनको शुचि करहु विशेष॥ज्यों शशि सेत प्रभा तन धरै। सेत सरूप सबनको करै॥ ८८॥ विन स्नान तुम निर्मल नित्त। अंतर बाहज सहज पवित्त॥ हम मज्जनविधि कीनी आज निजपवित्रकारन जिनराज॥ ८९॥ तुम जगपति देवनके देव। तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव॥तुम जगरक्षक तुम जगतात।तुम विनकारन बंधु विख्यात॥९०॥ तुम गुनसागर अगमअपार। थुतिकर कौन जाय जन पार॥ सूच्छम ज्ञानी मुनि नाहिं तरैं। हमसे मंद कहा बल धरैं॥ ९१॥ नमो देव अशरन आधार। नमो सर्व अतिशयभंडार॥ नमो सकल शिवसंपतिकरन। नमो नमो जिनतारनतरन॥ ९२॥

दोहा— इहि विधि इन्द्रादिक अमर, सुरपदवी फल लेय। जन्म न्हौन विधि कर

चले, मानो निज शुभ श्रेय॥९३॥ जन्ममहोच्छव देख कर, सुरपतिकी परतीत । बहु सुर सरधानी भये, ताजि सरधा विपरीत॥९४॥चौपई—तब सब देव जनमपुरथान । पूरबली विधि कियो पयान ॥ चढ़्यो इन्द्र ऐरावत शीश । गोद लिये त्रिभुवनपतिईश ॥९५॥ पूरववत दुंदभि धुनिगाजावे ही गीत निरत सब साज॥आये जय जय करत अशेष । पिताभवन कीनों परवेश ॥ ९६ ॥ मनिमय आंगनमें हरि आप । हेम सिंहासनपर प्रभु थाप॥ अश्वसेनभूपति तिहिं वार । देख्यो नंदन नयन पसार ॥ ९७ ॥ तेजपुंज निरुपम छबि देह । रोमांचित तन बढ़्यो सनेह ॥ माया नींद शची तब हरी । जिनजननी जागी सुखभरी ॥ ९८ ॥ भूषनभूषित कांति विशाल । भर लोयन निरख्यो जिनबाल ॥ अति प्रमोद उर उमग्यो तबै । पूरन भये मनोरथ सबै ॥ ९९ ॥ तब सुरेश रोमांचित काय । मात पिता पूजे मन लाय ॥ भूषन वसन भेंट बहु धरी । हाथ जोर जुग थुति विस्तरी ॥ १०० ॥ तुम जगमें उदयाचल भूप । पूरव दिशि देवी शुचिरूप ॥ उदय भये त्रिभुवनरवि जहां । तुम महिमा वरनन बुधि कहां ॥ १०१ ॥ धनि धनि अश्वसेन भूपाल । जिनके जगगुरु जनम्यो बाल ॥ कीरतबेल अधिक तुम बढी । तीनलोकमंडप शिर चढी ॥ १०२ ॥ धनि वामादेवी जगमाय । जिन जायो नंदन जगराय ॥ तीनलोक-

तियसृष्टिसिंगार । धनि जननी तेरो अवतार ॥ १०३ ॥ तुम सम जगमें और न आन । जिनदेवल सम पूज्यप्रधान ॥ यों श्रुतिकरि हरि हिये प्रमोद । बाल दिवाकर दीनों गोद ॥ १०४ ॥ कही सकल पूरवली कथा । मेरु महोच्छव कीनो जथा ॥ तब निज नगरविषैं भूपाल । जन्म उछाह कियो तिहिंकाल ॥ १०५ ॥ हरषत सब पुरजन परिवार । घर घर भये मंगलाचार ॥ घर घर कामिनि गावैं गीत । घर घर होंय निरत संगीत ॥१०६॥ मंगलीक बाजे बहु भेव । बाजन लगे सकल सुखदेव ॥ श्रीजिनभवन न्हौन विस्तार ॥ किये सकल मंगल आचार ॥ १०७ ॥ छिरक्यो चंदन नगरमँझार ॥ रतन साथिया धरे संवार ॥ जाचक दान सुजन सनमान । जथा जोग सब रीति विधान ॥ १०८ ॥ इहि विधि अश्वसेन नरनाह । कीनो पुत्र जन्मउच्छाह ॥ पूरनआश भये सब लोय । दुखी दीन दीखै नाहिं कोय ॥१०९॥ दोहा—उदय भयो जिनचंद्रमा, कुलनभ-तिलक महंत ॥ सुखसमुद्रबेला तजी, बढ्यो लोक परजंत ॥११०॥—तब बहु देवनसंग विशेष । आनँद नाटक ठयो सुरेश ॥ करैं गान गंधर्व समाज । समयजोग सब बाजैसाज ॥ १११ ॥ देखैं अश्वसेन नरनाथ । पुत्रसहित सब परिजन साथ ॥ प्रथमरूप नव भव दरशाय । पहुपांजुलि खेपी सुरराय ॥ ११२ ॥ तांडव नाम निरत आरंभ । कियो

जगतजन करन अचंभ ॥ नट सरूप धारयो अमरेश । रंगभूमि कीनो परवेश ॥ ११३ ॥
मंगलीक सिंगार सँवार । सब संगीत वेद अनुसार ॥ ताल मान विधिसहित सुभाय ।
रंग धरापर फेरै पाय ॥ ११४ ॥ करें कुसुमवरषा नभ देव । देखि इन्द्रकी भक्ति सुभेव ॥
बीना मुरज बांसली ताल । बाजे गेह गीतकी चाल ॥ ११५ ॥ करैं किन्नरी मंगलपाठ ।
वरियां जोग बन्यो सब ठाठ ॥ नाचै इन्द्र भमैं बहु भाय । मोरैं हाथ कंठ कटि पाय॥११६॥
अद्भुत तांडवरस तिहिं बार । दरसावै जन अचरजकार ॥ सहस भुजा हरि कीनी तबै ।
भूषनभूषित सोहैं सबै ॥ ११७ ॥ धारत चरन चपल अति चलैं । पहुमी कांपै गिरिवर
हलैं ॥ भमैं मुकुट चकफेरी लेत । ताकी रतनप्रभा छबि देत ॥ ११८ ॥ बलयाकृति
है झलकै सोय । चक्राकार अगनि जिमि होय॥ छिनमें एक छिनक बहुरूप । छिन सू-
च्छम छिन थूलसरूप॥ ११९॥ छिनमें निकट दिखाई देय । छिनमें दूर देह धर लेय ॥
छिनआकाशमाहिं संचरै । छिनमें निरत भूमिपर करै ॥ १२० ॥ छिन छूवै तारावलि
जाय । छिनक चन्दसों परसै काय ॥ इन्द्रजालवत यों अमरेश । दरसाई निज रिद्धिवि-
शेष ॥ १२१ ॥ हाथ अंगुलिनपै अपछरा । नाचैं रूप रतनकी धरा॥ अंग अंग भूषन
झलकाहिं । विकसत लोचन मुखमुसकाहिं ॥ १२२ ॥ निरत भेदविधि धारै पांव । करै

कटाच्छ दिखावै भाव ॥ बहुविधिकला प्रकाशै सार । सुरकामिनि दामिनिउनहार ॥ १२३ ॥ तिनसंजुत हरि सुरतरु एम । कलपलता गन बेढ़्यो जेम ॥ यों नाटकविधि ठानअनूप । तिहुंजग शक्र किये सुखरूप ॥ १२४ ॥ स्वामिजनम अतिशय परताप । जिनवरपिता सभापति आप ॥ इन्द्र महानट नाचै जहां । तिस अवसर वरनन बुधि कहां ॥ १२५ ॥ तब तहां मातापिताकी साख । पारस नाम सकल सुरभाख ॥ राखि सुरासुर सेवा जोग । चले देव सब साधि नियोग ॥१२६॥ दोहा—इहिविधि इन्द्रादिक अमर, जन्मकल्यानकठान । बहुविधि पुन्य उपायकै, पहुँचे निज निज थान ॥ १२७ ॥ हरगीति—इन्द्रादि जन्मस्नान जिनको, करन कनकाचल चढ़े । गंधर्व देवन सुयश गायो, अपछरा मंगल पढ़े ॥ इहिविधि सुरासुर निज नियोगै, सकल सेवाविधि ठई । ते पासप्रभु मुझ आस पुरवो, शरन सेवकने लई ॥ १२८ ॥

इति श्रीमत्पार्श्वपुराणभाषायां जिनेन्द्रजन्मोत्सववर्णनं नाम षष्ठोऽधिकारः ।

अथ सप्तमोऽधिकारः ।

दोहा—पारस प्रभु तजि औरको, जे नर पूजनजाहिं ॥ कलपवृच्छको छांड़िकै, बैठैं थूहर छाहिं ॥१॥ चौपई—अब जिन बालचन्द्रमा बढ़ै । कोमल हांस किरनमुख कढ़ै ॥

छिन छिन तात मात मन हरै। सुखसमुद्र दिन दिन विस्तरै ॥ २ ॥ अम्रत इन्द्र अंगूठे देय। वही पोष पयपान न लेय ॥ देवी धाय हरष मन धरै । मज्जनमंडन विधि सब करै ॥ ३ ॥ केई मनिभूषन पहराय । करैं अलंकृत प्रभुकी काय ॥ केई कामिनि करैं सिंगार। श्रीमुखचंद्र निहार निहार ॥ ४ ॥ केई रहसवती तिय आय। हस्त कमलसों लेय उठाय ॥ मनिमय आंगनमांझ अनूप। विचरैं जिनपति बालसरूप ॥ ५ ॥ बहुविधि देवकुमार मनोग। बालकरूप भये वययोग ॥ घुटियां गमन करैं तिनसाथ। ज्यों नछत्र-गनमें निशि नाथ ॥ ६ ॥ कबहीं सैनासन सोवन्त । ऊपर दिढ़ जिन यों जोवन्त ॥ अजौं मुक्ति मो केतक परैं। मानो यह शंका मन धरैं ॥ ७ ॥ कबहीं पुहुमीपै जिनराय। कंपित चरन ठवैं इहि भाय॥ सहै कि ना धरती मुझभार। शंकै उर उपमा यह धार॥८॥ कबहीं स्वामि उझकि उठि चलैं । विकसत मुख सब दुखको दलैं॥ बांधें मुठी अटपटे पाँय। कैसे वह छबि वरनी जाय ॥ ९ ॥ कबहीं रतन भीतमें रूप। झलकै ताहि गहैं जगभूप ॥ जिनसों जिन न मिलैं सर्वथा। करत किधौं कहवत यह वृथा ॥१०॥ कबहीं रतनरेत कर लेत। करैं केलि सुरकुमरसमेत ॥ कबहिं माय विन रुदन करेय। देखैं फेर विहँसि हँस देय ॥ ११ ॥ कबहीं छोड़ि शचीकी गोद । जननी अंक जायँ मनमोद ॥

मातासों माने अति प्रीति । बाल अवस्थाकी यह रीति ॥ १२ ॥ यों जिन बालक्रीडा करें । त्रिभुवनजनमनमानिक हरें ॥ क्रमसों बालभारती नाम । श्रीमुखकमल लसी अभिराम ॥ १३ ॥ अनुक्रम भई अंगवढ़वार । तब त्रिभुवनपति भये कुमार ॥ निरूपमकांतिकला विज्ञान । जोवनरूपअतुलगुणथान ॥१४॥ मति श्रुति अवधि ज्ञानवन्त देव । जानें सकल चराचर भेव ॥ सोमस्वभाव सहज उपशंत । निर्मल क्षायकदर्शनवन्त ॥१५॥ इहिविधि आठवर्षके भये । तब प्रभु आप अनुव्रत लिये ॥ देवकुमार रहैं संग नित्त । ते छिन छिन रंजैं जिन चित्त ॥१६॥कबहीं गज तुरंग तन धरैं । तिनपै चढ़ि प्रभु जनमन हरैं ॥ कबहीं हंस मोर बन जाहिं । तिनसों जगपति केलि कराहिं ॥ १७ ॥ कबहीं जलक्रीड़ाथल गये । कबहीं वनविहारभू रये ॥ कबहीं करैं किन्नरीगान । सो प्रभु सुयश सुनैं निज कान ॥ १८ ॥ कबहीं निरत ठवैं सुर नार । देखैं जिनलोचन सुखकार ॥ कबहीं काव्यकथारस ठान । करैं गोठ जिन बुधि बलवान ॥ १९ ॥ बिना सिखाये बिन अभ्यास । सब विद्या मन कलानिवास ॥ यों सुखअनुभव करत महान । भये पास जिन जोवनवान ॥ २० ॥ दोहा—संपूरन जोवन समय, प्रभुतन सोहै एम ॥ सहज मनोहर चांदकी, शरद समय छवि जेम ॥२१॥ चौपई—प्रभुके अंग पसेव न होय । सहज सदा

मलवराजित सोय ॥ उज्जलवरन रुधिर जिमि खीर । सुसमचतुर संठान शरीर ॥ २२ ॥ प्रथम सारसंहनन सरूप । इन्द्र चन्द्र मनहरन अनूप ॥ विनाहेत तन सहज सुवास । प्रियहितवचन मधुर सुख जास ॥ २३ ॥ अतुलदेह बल धरत महान । सहस अठोतर लच्छनवान ॥ तिनके नाम लिखों कछु जोय । पढत सुनत सुखसंपति होय ॥ २४ ॥

हरिगीत–श्रीवृक्ष शख सरोज स्वास्तिक, शुक्र चक्र सरोवरो । चामर सिंहासन छत्र तोरन, तुरगपति नारी नरो ॥ सायर दिवायर कलपबेली, कामधेनु धुजा करी ॥ वरवज्रवान कमान कमला, कलश कच्छप केहरी ॥ २५ ॥ गंगा गऊपति गरुड़ गोपुर, बेणु वीणा बीजना । जुगमीन महल मृदंगमाला, रतन दीप दिपै घना ॥ नागेन्द्र भुवन विमान अँकुश, विरछ सिद्धारथ सही । भूषण पटम्बर हट्ट हाटक, चन्द्रचूड़ामणि कही ॥ २६ ॥ जम्बू तरोवर नगर सूवस, बाग जनमनभावना । नौनिधि नछत्र सुमेरु सारद, साल खेत सुहावना ॥ ग्रह मंगलाष्टक प्रातिहारज, प्रमुख और विराजहीं ॥ परमितअठोतर सहस प्रभुके, अंग लच्छन छाजहीं ॥२७॥ अंतर अनंती अतुल महिमा, कथन दूर रहो कहीं । बहिरंग गुनथुति करन जगमें, शक्रसे समरथ नहीं ॥ अब और जनकी कौन गिनती, दीन पार न पावना । परपासप्रभुकी सुयशमाला, पहिरि दास कहावना ॥ २८ ॥

दोहा—सहस अठोतर लच्छन ये, शोभित जिनवर देह । किधौं कल्पतरुराजके, कुसुम विराजत येह ॥ २९ ॥ चौपई—शुभ परमानूमय जिन अंग । नीलवरन नौ हाथ उतंग ॥ छवि वरनत नाहिं पावैं ओर । त्रिभुवनजनमनमानिकचोर ॥ ३० ॥ शतसंवत्सर आव प्रमान । अतुल असाधारन गुनथान ॥ शत्रुमित्रऊपर समभाव । दयासरोवर सोम सुभाव ॥ ३१ ॥ सागरसों प्रभु अति गंभीर । मेरुशिखरसों अधिकै धीर ॥ कांति देखि लाजै मिरगांक । तेज विलोकि छिपै रवि शंक ॥ ३२ ॥ कल्पविरछसों अधिक उदार । तिहुँजग आशा पूरनहार ॥ यों जिनगुनको उपमा कहीं । तीनकाल त्रिभुवनमें नहीं ॥ ३३ ॥ दोहा—यों सुख निवसत पास जिन, सेवत कमला पाय । सोलह वरष प्रमान प्रभु, भये जगत सुखदाय ॥ ३४ ॥ सभासिंहासन एक दिन, बैठे सहज जिनेन्द्र ॥ सुरनरमें प्रभु यों दिपैं, ज्यों उड़गनमें चन्द्र ॥ ३५ ॥ अश्वसेन भूपाल तब, बोले अवसर पाय । नेहसलिल भीजे वचन, सुनो कुमर जगराय ॥ ३६ ॥ एक राजकन्या वरो, करो उचित व्यवहार ॥ वंशवेल आगे चलै, सुख पावै परिवार ॥ ३७ ॥ नाभिराजकी आश ज्यों, भरी प्रथम अवतार ॥ तथा हमारी कामना, पूरन करो कुमार ॥ ३८ ॥ पितावचन सुनि प्रभु दियो, प्रतिउत्तर तिहिं

वार ॥ रिषभदेव सम मैं नहीं, देखो हिये विचार ॥ ३९ ॥ मेरी सब सौ वर्ष थिति, सोलह भये वितीत । तीस वर्ष संजम समय, फिर मत कहो पुनीत ॥ ४० ॥ अलपकालथिति अलपसुख, अलप प्रयोजनकाज । कौन उपद्रव सग्रहै, समुझि देख नरराज ॥ ४१ ॥ सुन नरेन्द्र लोचन भरे, रहे वदन विलखाय । पुत्रव्याहवर्जनवचन, किसे नहीं दुखदाय ॥ ४२ ॥ चौपई—इहिंविधि मंदराग जिनराय । निवसैं सबजीवनसुखदाय ॥ पूरवकथित कमठचर सीह । पाप करत मानी नहिं चोह ॥४३ ॥ मुनिहत्यावश दुर्गति गयो । पंचमनरकवास सो लयो ॥ सत्रहजलधि तहां दुख सहे । वचन द्वार जो जाहिं न कहे ॥ ४४ ॥ थिति पूरन कर छोड़ी ठौर । सागर तीन भर्मों फिर और ॥ पशुगतिमाहिं विपत बहु भरी । त्रसथावरकी काया धरी ॥ ४५ ॥ इहिविधि भयो पाप अवसान । काहू जन्मक्रिया शुभठान ॥ महीपालपुर सोहै जहाँ । महीपालनृप उपज्यो तहां ॥ ४६ ॥ पारसप्रभुकी वामा माय । इनको पिता भयो यह राय ॥ पटरानीके प्रानवियोग । उपज्यो विरह बढ़्यो चित सोग ॥ ४७ ॥ तपसी भेष धरो दुखमान । पंचागनि साधै वनथान ॥ सीसजटा मृगछाला संग । भसम पीस लाई सब अंग ॥ ४८ ॥ भ्रमत बनारसिके उद्यान । आयो कष्ट करत विनज्ञान ॥ इहि अवसर श्रीपार्श्वकुमार ।

गये सहज वन करन विहार ॥४९॥ राजपुत्र बहु सुरगन साथ। गज आरूढ़ दिपैं जिन-
नाथ ॥ कर सुछंद वनकेलि अनूप। चले नगरको आनँदरूप ॥५०॥ देख्यो मगमें जननी
तात। तपै पंचपावक तप गात ॥ सो समीप प्रभुको अविलोय। चिंतै चित रोषातुर होय
॥५१॥ मैं तपसी कुलवंत महंत। जननी पिता पूज सब भंत ॥ अहो कुमरके यह अभि-
मान। विनय प्रनाम करैं नहिं आन ॥५२॥ इतने ईंधन कारन जान। लकड़ी चीरन
लग्यो अयान ॥ हाथ कुल्हाड़ी लीनी जबै। हितमितवचन चये प्रभु तबै ॥५३॥
भो तपसी यह काठ न चीर। यामें जुगल नाग हैं बीर ॥ सुनि कठोर बोल्यो रिस आन।
भो बालक तुम ऐसो ज्ञान ॥५४॥ हरिहर ब्रह्मा तुम ही भये। सकलचराचरज्ञाता ठ्ये ॥ मनै
करत उद्धत अविचार। चीरो काठ न लाई बार ॥५५॥ ततखिन खंड भये जुगजीव।
जैनी विन सब अदय अतीव ॥ दयासरोवर जिन तब कहै। तपसी वृथा गरब तू वहै
॥५६॥ ज्ञान विना नित काया कसै। करुणा तेरे उर नहिं बसै ॥ तब शठ रोषवचन
फिर चयो। जननी जनकर तपसी भयो ॥५७॥ करै न मदवश विनय विधान।
और उलट खँडै मुझ आन ॥ पंच अगनि साधू तन दाह। रहूं एकपद ऊरध बाँह ॥५८॥
भूख प्यास बाधा सब सहूं। सूखे पत्र पारनै गहूं॥ ज्ञानहीन तप क्यों उच्चरै। क्यों कुमार

मुझ निंदा करै ॥ ५९ ॥ तब प्रभुवचन कहै हितकार । तुझ तपमें हिंसाअघभार ॥ छहों कायके जीव अनेक । नाश होंहिं नित नाहिं विवेक ॥ ६० ॥ जहां जीववध होय लगार । तहां पाप उपजै निरधार ॥ पाप सही दुर्गति दुख देह । यातें दयाहीन तप येह ॥ ६१ ॥ ज्ञान विना सब कायक्लेश । उत्तम फलदायक नहिं लेश ॥ जैसे तुस कंडन कनछार । यों अजान तप अफल असार ॥ ६२ ॥ अंधपुरुष वनदौमें दहै । दौर मरै मारग नहिं लहैं ॥ त्यों अजान उद्यम करि पचै । भवदावानलसों नाहिं बचै ॥ ६३ ॥ ऐसे ही किरिया विन ज्ञान । सो भी फलदायक नहिं जान ॥ तथा पंगु लोचनबल धरै । उद्यम विन दावानल जरै ॥ ६४ ॥ तातैं ज्ञानसहित आचार । निहचै वांछितफलदातार ॥ इहिविधि जिनमतके अनुसार । करि उत्तम तप यह हठ छार ॥ ६५ ॥ मैं तुझ वचन कहे हितकार । तू अपने उर देखि विचार ॥ भली लगै सोई करि मित्त । वृथा मलीन करै मति चित्त ॥ ६६ ॥ दोहा—नाग जुगल सुनि जिनवचन, क्रूरजीवअति निंद ॥ देह त्यागि ततखिन भये, पदमावती धानिंद ॥ ६७ ॥ नाग जुगलके भागकी, महिमा कही न जाय । जिनदर्शन प्रापति भई, मरन समय सुखदाय ॥ ६८ ॥ चौपई—घर आये श्री पार्श्वजिनंद । सुरनरनेत्रकमलनीचन्द ॥ समयपाय तपसी तजि देह । भयो जो-

तिषी संवर तेह ॥ ६९ ॥ देखो जगमें तपपरभाव । ज्ञान विना बांधी सुरआव ॥ जे नर करैं जैनतप सार । तिन्हैं कहा दुर्लभ संसार ॥७०॥ स्वामी मगन सुखोदधिमाहिं । हर्ष विनोद करत दिन जाहिं । प्रभुके इष्ट वियोग न होय। सोगसँजोग न कबहीं कोय॥७१॥ वायपित्तकफजनित विकार । सुपनै होय न सोच विचार ॥ जरा न व्यापै तेज न जाय । ना सुखकमल कभी कुम्हलाय ॥ ७२ ॥ होहि नहीं दुखकारन आन । पुन्यउदाधिवेला भगवान ॥ यों सुखभोग करत दिन गये । तब जिन तीसवर्षके भये॥७३॥ नृप जयसेन अयोध्या धनी । भक्ति प्रीत प्रभुसों अति घनी॥तुरगादिक बहु वस्तु अनूप । पठई विनय वचन कहि भूप॥७४॥राजदूत चलि आयो तहां । सभा थान जिन बैठे जहां ॥ हेमासनपर सोहैं एम । हिमगिरिशिखर श्यामघन जेम ॥७५॥ देखि दूत रोमांचित भयो । बहुविधि चरन कमलको नयो॥मान्यो सफलजन्म निज सार। त्रिभुवनपति परतच्छ निहार॥७६॥ धरी भेंट जो राजा दई । विनय प्रनाम वीनती चई॥ तब पूँछै तहां त्रिभुवनधनी। संपति नगर अजोध्यातनी ॥७७॥ कहै दूत कर जुग सिर धार । वरनै तीर्थंकर अवतार ॥ मोख गये वरने तिहिंठाम । सुनि स्वामी चिंतै उर ताम ॥ ७८ ॥ बेलीचाल— सुनि दूत वचन वैरागे । निज मन प्रभु सोचन लागे ॥ मैं इन्द्रासन सुख कीने । लोकोत्तम भोग न-

वीने ॥ ७९ ॥ ॥ तब तृपति भई तहां नाहीं । क्या होय मनुष पदमाहीं ॥ जो सागरके जलसेती । न बुझी तिषना तिस एती ॥ ८० ॥ सो डाभअनीके पानी । पीवत अ२ कैसे जानी ॥ ईंधनसों आगि न धापै । नदियों नहिं समुद समापैं ॥ ८१ ॥ यों भोगविषै अतिभारी । तृपतै न कभी तनधारी॥जो अधिक उदय यह आवै । तौ अधिकी चाह बढ़ावै ॥ ८२ ॥ जो इनसों तृपति विचारै । सो वैसानर घृत डारै ॥ इन सेवत जो सुख पावै । सो आकौं आंब उम्हावै ॥ ८३ ॥ ये भीम भुजंग सरीखे । भ्रम भाव उदय शुभदीखे ॥ चाखतहीके सुख मीठे । परिपाक समय कटु दीठे॥ ८४ ॥ ज्यों खाय धतूरा कोई । देखै सब कंचन सोई ॥ धिक ये इन्द्री सुख ऐसे । विषबेल लगे फल जैसे ॥ ८५ ॥ इनही वश जीव अनादी । भव भाँवर भ्रमत सवादी ॥ इन ही वश सीख न मानै । नाना विधि पातक ठानै ॥ ८६ ॥ थिर जंगम जीव सँघारै । इनके वश झूठ उचारै ॥ पर चोरीसों चित लावै । परतिय सँग शील गमावै ॥ ८७ ॥ परिग्रह तिस्ना विस्तारै । आरंभ उपाधि विचारै ॥ इत्यादि अनर्थ अलेखै । करि घोरनरक दुख देखै ॥८८॥ ये ही सुखपर्वतकेरे । जग फोरन वज्र बड़ेरे ॥ ये ही सबदोषभँडारे । धन धर्म चुरावनहारे ॥ ८९ ॥ मोही जन मोहैं योंहीं । ये आदर जोग न क्यों हीं ॥ इनसों ममता तज दीजे । पर त्यागत ढील

न कीजे ॥ ९० ॥ सामान पुरुष जग जैसे । हम खोये ये दिन ऐसे ॥ संयम विन काल गमायो । कछु लेखेमें नहिं लायो ॥ ९१ ॥ ममतावश तप नाहिं लीनो । यह कारजजोग न कीनो ॥ अब खाली ढील न कीजै । चारित चिंतामणि लीजे ॥ ९२॥ दोहा— भोगविमुख जिनराज इमि,सुधि कीनी शिव थान । भावैं बारहभावना,उदासीन हितदान॥९३॥ चौपई—द्रव्य सुभाव विना जगमाहिं । पर ये रूप कछु थिरनाहिं॥तनधन आदिक दीखजेह । कालअगनि सब ईंधन तेह ॥ ९४ ॥भववनभ्रमतानिरंतरजीव । याहि न कोई शरन सदीव । व्योहारै परमेठी जाप । निहचै शरन आपको आप॥९५॥सूर कहावे जो सिर देय । खेत तजे सो अपयश लेय ॥ इस अनुसार जगतकी रीत । सब असार सबही विपरीत ॥ ९६ ॥ तीनकाल इस त्रिभुवनमाहिं । जीव संघाती कोई नाहिं ॥ एकाकी सुख दुख सब सहैं । पाप पुन्य करनीफल लहैं ॥ ९७ ॥ जितने जग संजोगी भाव । ते सब जियसों भिन्न सुभाव॥ नितसंगी तन ही पर सोय । पुत्र सुजन पर क्यों नहि होय ॥ ९८ ॥ अशुचिअस्थि पिंजर तन येह । चाम वसन वेढो विनगेह ॥ चेतनाचिरा तहां नित रहै । सो विन ज्ञान गिलानि न गहै ॥ ९९ ॥ मिथ्या अविरत जोग कषाय । ये आस्रवकारन समुदाय ॥ आस्रव कर्मबंधको हेत ॥ बंध चतुरगतिके दुख देत ।

॥ १०० ॥ समिति गुप्ति अनुपेहा धर्म । सहन परीषह संजम पर्म ॥ ये संवरकारन निर्दोष । संवर करै जीवको मोष ॥ १०१ ॥ तपबल पूर्वकर्म खिर जाहिं । नये ज्ञानबल आवैं नाहिं ॥ यही निर्जरा सुखदातार । भवकारन तारन निरधार ॥१०२॥ स्वयंसिद्ध त्रिभुवनथित जान । कटि कर धरैं पुरुषसंठान ॥ भ्रमत अनादि आतमा जहां । समकित विन शिव होय न तहां ॥१०३॥ दुर्लभ धर्म दशांग पवित्त । सुखदायक सहगामी नित्त॥ दुर्गति परत यही कर गहै । देय सुरग शिवथानक यहै ॥ ॥१०४ ॥ सुलभ जीवको सब सुख सदा । नौग्रीवक ताईं संपदा ॥ बोधरतन दुर्लभ संसार । भवदारिद्रदुखमेटनहार ॥ ॥१०५ ॥ ये दशदोय भावना भाय । दिढ़ वैरागि भये जिनराय ॥ देहभोग संसार सरूप । सब असार जानो जगभूप ॥१०६॥ इतनैं लोकांतिक सुर आय । पुहपांजलि दे पूजे पाय ॥ ब्रह्मलोकवासी गुनधाम । देव रिषीश्वर जिनको नाम ॥१०७॥ सब पूरवपाठी बुधवंत । सहज सोममूरति उपशंत ॥ वनिताराग हिये नहिं बहैं । एकजन्म धरि शिवपद लहैं ॥ १०८ ॥ तीर्थंकर जब विरकत होय । हर्षवंत तब आवैं सोय ॥ और कल्यानक करें प्रनाम । सदा सुखी निवसैं निज धाम ॥१०९॥ हाथ जोर बोले गुनरूप । थुतिवायक अरु शिक्षारूप॥ धनि विवेक यह धन्य सयान । धनि यह औसर दयानिधान

॥११०॥ जान्यो प्रभु संसार असार। अथिर अपावन देह निहार॥ इन्द्रिय सुख सुपने सम दीस। सो याही विधि हैं जगईस॥१११॥ उदासीन असि तुम कर धरी। आज मोहसेना थरहरी॥ बढ़्यो आज शिवरमनि सुहाग। आज जगे भविजन सिरभाग॥ ११२॥ जग प्रमादनिद्रावश होय। सोवत है सुधि नाहीं कोय॥ प्रभु धुनिकिरन पयासै जबै। होय सचेत जगैं जन तबै॥११३॥ यह भव दुस्तर पारावार। दुख जलपूरित वार न पार॥ प्रभु उपदेश पोत चढ़ि धीर। अब सुखसों जैहैं जन तीर॥११४॥ शिवपुरि पौर भरमपट जहां। मोह सुहर दिढ़ कीनी तहां॥तुम वानी कूंची कर धार। अब भवि जीव लहैं पयसार॥११५॥ स्वयंबुद्ध बोधन समरत्थ। तुमपर प्रति बुध वचन अकत्थ॥ ज्यों सूरज आगे जिनराज। दीप दिखावन है वे काज॥११६॥हम नियोग औसर यह भाय। तातें करें वीनती आय॥ धरिये देव महाव्रत भार। करिये कर्मशत्रुसंघार॥ ११७॥ हरिये भरमतिमिर सर्वथा। सूझै सुरगमुक्तिपथ जथा॥ यों थुति करि बहुभाव दिढ़ाय। बारबार चरनन शिर नाय॥ ११८॥ साधि नियोग गये निजथान। लोकांतिक सुर बड़े सयान॥ अब चौविधि इन्द्रादिक देव। चढ़ि निज निज बाहन बहुभेव॥ ११९॥ हर्षित उर परिवार समेत। आये तृतिय कल्यानक हेत॥ सुर वनिता नाचैं रस भरीं। गावैं मधुरगीत किन्नरीं

॥१२०॥ बाजे विविधि बजैं तिस बार। करैं अमरगन जय जय कार॥ सोवन कलश भरे सुरराय। विमल छीरसागर जल लाय ॥१२१॥ हेमासन थापे जिनराय। उच्छवसहित न्हौन विधि ठाय॥ भूषन वसन सकल पहिराय। चंदनअर्चित कीनी काय॥ १२२॥ इस औसर प्रभु सोहैं एम। मोक्षवधूवर दूलह जेम॥ कहि वैराग वचन जिन तबै। प्रतिबोधे परिजन जन सबै॥ १२३॥ अति हठसों समझाई माय। लोचन भरे वदन विलखाय॥ विमला नाम पालकी साज। आनी इन्द्र चढ़े जिनराज॥ १२४॥ पहले भूमिगोचरी राय। सात पैंड़ लीनी सुखदाय॥ फिर विद्याधर राजा रले। पैंड़ सात ही ते ले चले॥ १२५॥ पीछैं इन्द्रादिक सुरसंघ। कांधै धरी चले पुर लंघ॥ ना अति निकट न दीसै दूर। नभ मारग देखें जन भूर॥ १२६॥ दोहा—जिस साहबकी पालकी, इन्द्र उठावनहार॥ तिस गुनमहिमा कथन अब, पूरन होउ अपार॥ १२७॥ चौपई—यों सुर नर सब हरषित भये। अश्व नाम वनमें चलि गये॥ बडतरु तलैं शिला शुभ जहां। कीनों शची सांथिया तहां॥ १२८॥ उतरे प्रभु अति उत्तम ठाम। शान्त भयो कोलाहल ताम॥ शत्रुमित्र ऊपर समभाव। तिनकंचन गिन एकसुभाव॥ १२९॥ सोमभाव स्वामी उर धार। पटभूषन सब दीनैं डार॥ उदासीन उत्तरमुख भये। हाथ जोर सिद्धन

प्रति नये ॥ १३०॥ दुविधि परिग्रह ताजि परमेश । पंच मुष्टि लोंचे सिरकेश ॥ शिवकामिनिकी दूती जोय । धरी दिगंबरमुद्रा सोय ॥ १३१ ॥ दोहा—सोहै भूषन वसन विन, जातरूप जिनदेह ॥ इंद्र नीलमनिको किधौं, तेजपुंज शुभ येह ॥ १३२ ॥ पोह प्रथम एकादशी, प्रथम पहर शुभवार ॥ पद्मासन श्रीपार्श्व जिन, लियो महाव्रतभार ॥ १३३ ॥ और तीनसै छत्रपति, प्रभुसाहस अविलोय । राज छारि संयम धर्‌यो. दुखदावानल-तोय ॥१३४॥ तब सुरेश जिनकेश शुचि, छीरसमुद पहुँचाय । कर थुति साध नियोग सब. गयो सुरग सुरराय ॥ १३५ ॥ चौपई--अब स्वामी वनथान मनोग । तेला थापि दियो जिन जोग ॥ अट्ठाईस मूलगुन भाख । उत्तरगुन चौरासी लाख ॥ १३६ ॥ सब प्रभु धरे परम समचेत । अचल अंग मुख मौनसमेत ॥ यों वन वसत उपन्यो जान । संजमबल मनपर्जयज्ञान ॥ १३७ ॥ सोरठा--लघु वयमें जगपाल, कियो निर्वीरज कामदल ॥ धीरज धनुष सँभाल, तिनके पदनीरज नमूं ॥ १३८ ॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवद्वैराग्यप्राप्तदीक्षाकल्याणकवर्णनं नाम सप्तमोऽधिकारः ।

अथ अष्टमोऽधिकारः।

सोरठा--जाप्रभुको जसहंस, तीनलोक पिंजरैं वसै। सो मम पाप विधंस,करौ पास परमेश नित ॥१॥ चौपई—अब जिन उठे जोग अवसान। देहहेत उद्यम उर आन ॥ परम-उदास अधोगत दीठ। सहजशांतमुद्रा मनईठ ॥२॥ दयानीर निर्मल परवाह। गुलर-खेटपुर पहुंचे नाह ॥ लाभ अलाभ बराबर धार। निर्धन धनको नाहिं विचार ॥ ३ ॥ ब्रह्मदत्त भूपति बड़भाग। प्रभुको देखि बढ़्यो उरराग ॥ उत्तमपात्र सकलगुनधाम। करि प्रनाम पड़िगाहे ताम ॥४ ॥ हेमासन थाप्यो नरराय। प्रासुक जल परछाले पाय ॥ आठभांति पूजा विस्तरी। हाथ जोर अंजुलि सिर धरी ॥ ५ ॥ मन तन वायक शुद्धसरूप। नौ दातागुनसंजुत भूप ॥ शुद्ध अन्न दीनों परवीन। प्रासुक मधुर दोषदुखहीन ॥६॥ उत्तमपात्र दानविधि करी। तीनभवन कीरति विस्तरी ॥ पंचाचरज भये नृपधाम। फिर स्वामी आये वन ठाम ॥ ७ ॥ करैं घोर तप साधैं जोग। दर्शन करत मिटैं सब शोग॥ अचल अंग मुख सोहै मौन। एकचित्त निजपद चिंतौन ॥८॥ ज्यों समुद्रजल विगतकलोल। अथवा सुरगिरिशिखर अडोल॥तथा नीलमनि प्रतिमा येह ॥ यों अकंप राजै

जिनदेहं॥९॥ चौपई—वैर भाव छांड़्यो वन जीव। प्रीत परस्पर करैं अतीव॥ केहरि आदि सतावैं नाहिं। निर्विष भये भुजग वनमांहिं॥ १०॥ शील सनाह सजौ शुचि-रूप। उत्तरगुनआभरन अनूप॥ तपमय धनुष धर्यो निजपान। तीन रतन ये तीखन वान॥ ११॥ समताभाव चढ़े जगशीश। ध्यान कृपान लियो कर ईश॥ चारितरंग महीमें धीर। कर्मशत्रुविजयी वरवीर॥ १२॥॥ दोहा—स्वामीकी सबपर दया, सबहीके रछपाल। जगविजयी मोहादि रिपु, तिनके प्रभु छयकाल॥ १४॥ सोरठा–देखो पौन प्रचंड, दूब न खंडै दूबरी। मोटे विरछ विहंड, बड़े बड़ोही बल करैं॥ १५॥ दोहा–यों दुद्धर तप करत अति, धर्मध्यानपदलीन। चार मास छद्मस्त जिन, रहे रागमलहीन॥ १६॥ चौपई--एक दिवस दीच्छावन जहां। जोगलीन प्रभु निवसैं तहां॥ काउसग्ग तन विगत-विरोध। ठाड़े जिनवर जोगनिरोध॥ १७॥ संवर नाम जोतिषी देव। पूरवकथित कमठचर एव॥ अटक्यो अंबर जात विमान। प्रभुपर रह्यो छत्रवत आन॥ १८॥ ततखिन अवधिज्ञानबल तबै। पूरव वैर सँभालो सबै॥ कोप्यो अधिक न थांभ्यो

१ उक्त च–नोकिञ्चित्करकार्य्यमस्ति गमनप्राप्यं न किञ्चिद्दृहशोर्दृश्य यस्य न कर्णयोःकिमपि हि श्रोतव्यमप्यस्ति न। तेनालम्बितपाणिरुज्झितगतिर्नासाग्रदृष्टी रहः। सम्प्राप्तोऽति निराकुलो विजयते ध्यानैकतानोजिनः।

जाय । राते लोयन प्रज्वली काय ॥ १९ ॥ आरंभ्यो उपसर्ग महान । कायर देखि भजैं भय मान ॥ अंधकार छायो चहुँओर । गरज गरज वरखैं घन घोर ॥ २० ॥ झरै नीर मुसलोपम धार । वक्र वीज झलकै भयकार ॥ बूड़े गिरि तरुवर वनजाल । झंझा वायु बही विकराल ॥ २१ ॥ जल थल भयो महोदधि एम । प्रभु निवसैं कनकाचल जेम ॥ दुष्ट विक्रियाबल अविवेक । और उपद्रव करै अनेक ॥ २२ ॥ छप्पय--किलकिलंत वेताल, काल कज्जल छवि सज्जहिं । भौं कराल विकराल,भाल मदगज जिमि गज्जहिं॥ मुंडमाल गल धरहिं, लाल लोयन निडरहिं जन । मुख फुलिंग फुंकरहिं करहिं निर्दय धुनि हन हन ॥ इहि विधि अनेक दुर्भेष धरि, कमठजीव उपसर्ग किय । तिहुं लोकवंद जिनचंद्रप्रति, धूलि डारु निज सीस लिय ॥ २३ ॥ दोहा--इत्यादिक उतपात सब, वृथा भये अति घोर । जैसे मानिक दीपको, लगै न पौन झकोर ॥ २४ ॥ प्रभु चित चल्यो न तन हल्यो,टल्यो न धीरज ध्यान । इन अपराधी क्रोधवश,करी वृथा निज हान ॥ २५ ॥ पावक पकरै हाथसों, अवशि हाथ जलि जाय । परके तन लागै नहीं, वाके पुन्यसहाय ॥ २६ ॥ प्रानी विषयकषायवश, कौन कौन विपरीत । करत हरत कल्यान निज, जलौ जलौ यह रीत ॥ २७ ॥ प्रभु अचिंत्य महिमाधनी, त्रिभुवन

पूजत पाय । तिनके यह क्यों संभवै, सुर उपसर्ग कराय ॥ २८ ॥ इहि विधि जो कोई पुरुष, पूछै संशय राखि। ताके समुझावन निमित,लिखूं जिनागम साखि ॥ २९ ॥ चौपई--अवसर्पनि उतसर्पनि काल । होंहिं अनंतानंत विशाल ॥ भरत तथा ऐरावत-माहिं । रॅहटघटीवत आवैं जाहिं ॥ ३०॥ जब ये असंख्यात परमान, बीते जुगम खेत भू थान॥तब हुंडावसर्पणी एक। परै करै विपरीत अनेक ॥३१॥ ताकी रीत सुनो मतिवंत। सुखमा दुखमा कालके अंत ॥ वरखादिकको कारन पाय । विकलत्रय उपजैं बहु भाय ॥ ३२ ॥ कलपवृक्ष विनशैं तिहि वार । वरतै कर्मभूमि व्यवहार ॥ प्रथम जिनेश प्रथम चक्रेश । ताही समय होंहिं इहि देश ॥ ३३ ॥ विजयभंग चक्रीकी होय। थोड़े जीव जाहिं शिवलोय ॥ चक्रवर्ति विकलप विस्तरै । ब्रह्मवंशकी उतपाति करै ॥३४॥ पुरुष शलाका चौथे काल । अट्ठावन उपजैं गुनमाल ॥ नवम आदि सोलह परजंत । सात तीर्थमें धर्म नशंत ॥ ३५ ॥ ग्यारह रुद्र जनम जहँ धरैं। नौ कलिप्रिय नारद अवतरैं॥ सत्तम तेईसम गुनवर्ग । चरमजिनेश्वरको उपसर्ग ॥ ३६ ॥ तीजे चौथेकालमँझार । पंचममें दीसै बढ़वार ॥ विविधि कुदेव कुलिंगी लोग । उत्तमधर्म नाशके जोग ॥ ३७ ॥ सवर विलालभील चंडाल । नाहलादि कुलमें विकराल ॥ कल्की उपकल्की

चौपई—पहले गोलपीठका ठई । इन्द्रनीलमनिमय निर्मई॥ पांच कोस चौंड़ी परवान । तीनलोक उपमा नाहिं आन॥६६॥ जाके चहुंदिशि गिरदाकार । बनी पैंड़िका बीसहजार॥ हाथ हाथपरि ऊंची लसैं । नभपरजंत देखि दुख नसैं॥६७॥ तापर धूलीशाल उतंग । पंचरतनरजमय सर्वंग ॥ विविध वर्ण सो बलयाकार । झलकै इन्द्रधनुष उनहार॥६८॥ कहीं श्याम कहिं कंचनरूप । कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप॥ समोसरन लछमीको एम । दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम ॥ ६९ ॥ चारों दिशि तोरन बन रहे । कनक थंभ ऊपर लहलहे ॥ आगे मानभूमि है जहां । मानथंभ चारोंदिशि तहां ॥ ७० ॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी । सोलह पैंड़ी संजुत ठनी ॥ चार चार दरवाजे ठान । तीन तीन तहां कोट महान ॥ ७१ ॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ । तिनपै मानथंभ थिर दीठ॥ अतिउतंग कंचनके ठये । छत्रधुजादिकसों छवि छये ॥७२॥ जिनैं देखि मानी मद बढ़े । उतरे मान महागिरि चढ़े ॥ मूलभाग प्रतिमा मनहरैं । इन्द्रादिक पूजा विसतरैं ॥७३॥ एक एक दिशि चहुँ दिशि ठई । सहज वापिका वारिजछई ॥ मन्दादिक शुभ जिनके नाम । चारों दिशि सोलह सुखधाम ॥७४॥ आगे खाई शोभित खरी । औंड़ी अधिक विमलजलभरी ॥ रतनतीर राजैं चहुँओर । हंसकलाप करैं जहँ शोर ॥ ७५ ॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय ॥

पूजत पाय । तिनके यह क्यों संभवै, सुर उपसर्ग कराय ॥ २८ ॥ इहि विधि जो कोई पुरुष, पूछै संशय राखि । ताके समुझावन निमित, लिखूं जिनागम साखि ॥ २९ ॥ चौपई--अवसर्पनि उतसर्पनि काल । होंहिं अनंतानंत विशाल ॥ भरत तथा ऐरावत-माहिं । रँहटघटीवत आवैं जाहिं ॥ ३०॥ जब ये असंख्यात परमान, बीते जुगम खेत भू थान॥तब हुंडावसर्पणी एक। परै करै विपरीत अनेक ॥३१॥ ताकी रीत सुनो मतिवंत। सुखमा दुखमा कालके अंत ॥ वरखादिकको कारन पाय । विकलत्रय उपजैं बहु भाय ॥ ३२ ॥ कल्पवृक्ष विनशैं तिहि वार । वरतै कर्मभूमि व्यवहार ॥ प्रथम जिनेश प्रथम चक्रेश । ताही समय होंहिं इहि देश ॥ ३३ ॥ विजयभंग चक्रीकी होय । थोड़े जीव जाहिं शिवलोय ॥ चक्रवर्ति विकलप विस्तरै । ब्रह्मवंशकी उतपाति करै ॥ ३४॥ पुरुष शलाका चौथे काल । अट्ठावन उपजैं गुनमाल ॥ नवम आदि सोलह परजंत । सात तीर्थमें धर्म नशंत ॥ ३५ ॥ ग्यारह रुद्र जनम जहँ धरैं । नौ कलिप्रिय नारद अवतरैं ॥ सत्तम तेईसम गुनवर्ग । चरमजिनेश्वरको उपसर्ग ॥ ३६ ॥ तीजे चौथेकालमँझार । पंचममें दीसै बढ़वार ॥ विविधि कुदेव कुलिंगी लोग । उत्तमधर्म नाशके जोग ॥ ३७ ॥ सवर विलालभील चंडाल । नाहलादि कुलमें विकराल ॥ कल्की उपकल्की

कालिमाहिं । बयालीस हैं मिथ्या नाहिं ॥ ३८॥ अनावृष्टि अतिवृष्टि विख्यात । भूमि-वृद्धि वज्रागिनिपात ॥ ईतभीत इत्यादिक दोष । कालप्रभाव होहिं दुखपोष ॥ ३९॥

दोहा—यों त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें, कथन कियो बुधराज । सो भविजन अवधारियो, संशय-मेटन काज ॥ ४० ॥ गीता—तीसरे कालहँ मुक्तिसाधै, प्रथमतीर्थंकर सही । पुनि तीन तीरथ होहिं चक्री, एक हरि जिनवर वही ॥ इस भांति चौथे जुग शलाका पुरुष ऊने अवतरैं । हुंडावसर्पिनिमें अठावन जीव बासठ पद धरैं॥४१॥चौपई—तब फनेशआसन कंपियौ । जिनउपकार सकल सुधि कियौ ॥ ततखिन पद्मावति ले साथ । आयो जहँ निवसैं जिननाथ ॥४२॥ करि प्रनाम परदछना दई । हाथ जोरि पदमावति नई ॥ फण-मंडप कीनो प्रभुशीश । जलबाधा व्यापै नाहिं ईश ॥४३॥ नागराज सुर देख्यो जाम । भाज्यो दुष्ट जोतिषी ताम॥हीनजोग सूधी यह बात । भागि जाय तबही कुश लात॥४४॥ अब सब कोलाहल मिट गये । प्रभु सत्तमथानक थिर भये ॥ विकलपरहित चिदातमध्यान । करै कर्मछयहेत महान ॥ ४५॥ सात प्रकृति चौथे गुणठान । पहले नाश करी भगवान ॥ अब ह्यां धर्मध्यानबल धीर । तीनप्रकृति जीती वरबीर ॥ ४६ ॥ प्रथम शुक्लपदसों परनये । खिपकसेनिमारगपर ठये॥ प्रकृतिछत्तीस नवें छयकरी । दशवें लोभप्रकृति

प्रभु हरी॥४७॥ दोहा—एकादशम उलंघिपद, चढ़े बारहें थान। कर्मप्रकृति सोलह तहां; नाश करी अवसान ॥ ४८ ॥ चौपई—इहिविधि त्रेसठ प्रकृति निवार। घाते कर्म घातिया चार ॥ चैतअँधेरी चौदश जान। उपज्यो प्रभुके पंचम ज्ञान॥४९॥लोकालोक चराचर भाव। बहुविधि परजयवंत सुभाव॥ ते सब आन एक ही बार। झलके केवलमुकुरमँझार ॥५०॥भये अनंत चतुष्टयवन्त। प्रगटी महिमा अतुल अनंत॥दिव्य परमऔदारिक देह। कोटि भानुद्युति जीती जेह॥५१॥अलौकीक अद्भुत संपदा। मंडित भये जिनेश्वर तदा॥ वचनअगोचर महिमा सार। वरनन करत न पइये पार॥५२॥दोहा पांच हजार प्रमान धनु, उपजत केवलज्ञान ॥ अंतरिच्छ प्रभु तन भयो, ज्यों शशि अंबरथान[1] ॥ ५३ ॥ चौपाई—प्रकटी केवल रविकिरण जाम। परिफूल्यौ त्रिभुवन कमलताम ॥ आकाश अमल दीसै अनूप। दिशिविदिशि भई सब विमलरूप॥५४॥सुरलोक बजैं घंटागरिष्ट। तरु करन लगे तहां पुहपविष्ट॥इन्द्रासन कांपे अतिगरीश। आनम्र भये मनिमुकुटशीश॥५५॥ इत्यादिक बहु विधि चिहन चार। प्रभु केवलसूचक भये सार ॥ तब अवधि जोड़ि जान्यो सुरेश।

१ उक्तं च गाथा—जादे केवल णाणे परमो रालं जिणाण सव्वाणं। गच्छदि उवरे चावा पंच सहस्साणि वसुहाउ।

छय करे कर्म पारसजिनेश ॥ ५६ ॥ सिंहासन तजि निज सीस नाय । प्रनमो परोख सुख उर न माय ॥ इन्द्रानी पूछै कहहु कंत । क्यों आसन तजि उतरे तुरंत ॥ ५७ ॥ किस कारन स्वामी नयो शीश । याको प्रतिउत्तर देहु ईश ॥ तब बोले विकसत देवराज। प्रभु उपज्यो केवलज्ञान आज ॥ ५८ ॥ ऐरावतगज सजि सपरिवार । प्रथमेंद्र चल्यो आनँद अपार ॥ बाजे बहु पटह पयानभेर । सब वरनन करत लगै अबेर ॥ ५९ ॥ ईशानप्रमुख सब स्वर्गनाथ । निजबाहन चढ़ि चढ़ि चले साथ॥हरिनाद सुन्यो जोतिषी-देव । चंद्रादि चले तब पँच भेव ॥६०॥भावनघर बाजे संख भूरि । दशविधि सुर निकसे हरष पूरि ॥ वसुविंतरघर गरजे निशान । यों परियन सब कीनो पयान ॥ ६१ ॥ यों चली चतुर विधि सुरसमाज । जिनकेवलपूजा करन काज ॥ अंबर तजि आये अवनि-माहिं । जहँ समोसरन धुज फरहराहिं ॥ ६२ ॥ जो सुरपतिको उपदेश पाय । धनपतिने कीनो प्रथम आय ॥ वर पंचवर्ण मणिमय अनूप । जगलक्ष्मीको कुलग्रह सरूप ॥ ६३ ॥ दोहा- समोसरनकी संपदा, लोकोत्तर तिहुं भौन । वचनद्वार वरनें तिसै, सो बुध समरथ कौन ॥ ६४ ॥ सोरठा—पै थल अवसर पाय, धर्मध्यानकारन निरखि । लिखों लेश मन लाय, पढ़त सुनत आनँद बढ़ै ॥ ६५ ॥

चौपई—पहले गोलपीठका ठई । इन्द्रनीलमनिमय निर्मई॥ पांच कोस चौड़ी परवान । तीनलोक उपमा नहिं आन॥६६॥जाके चहुंदिशि गिरदाकार । बनी पैंड़िका बीसहजार॥हाथ हाथपरि ऊंची लसैं । नभपरजंत देखि दुख नसैं॥६७॥तापर धूलीशाल उतंग । पंचरतनरजमय सर्वंग ॥ विविध वर्ण सो बलयाकार । झलकें इन्द्रधनुष उनहार॥६८॥कहीं श्याम कहिं कंचनरूप । कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप॥ समोसरन लछमीको एम । दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम ॥ ६९ ॥ चारों दिशि तोरन बन रहे । कनक थंभ ऊपर लहलहे ॥ आगे मानभूमि है जहां । मानथंभ चारोंदिशी तहां ॥ ७० ॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी । सोलह पैंड़ी संजुत ठनी ॥ चार चार दरवाजे ठान । तीन तीन तहां कोट महान ॥ ७१ ॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ । तिनपै मानथंभ थिर दीठ ॥ अतिउतंग कंचनके ठये । छत्रधुजादिकसों छवि छये ॥७२॥ जिनैं देखि मानी मद बढ़े । उतरे मान महागिरि चढ़े ॥ मूलभाग प्रतिमा मनहरें । इन्द्रादिक पूजा विसतरैं ॥७३॥ एक एक दिशि चहुँ दिशि ठई । सहज वापिका वारिजछई ॥ मन्दादिक शुभ जिनके नाम । चारों दिशि सोलह सुखधाम ॥७४॥ आगे खाई शोभित खरी । औंड़ी अधिक विमलजलभरी ॥ रतनतीर राजैं चहुँओर। हंसकलाप करैं जहँ शोर ॥ ७५ ॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय ॥

पद्मराग मनिमय नव तूप ॥ धुजा छत्र घंटा छबि देहिं । जिनमुद्रासों मन हर लेहिं ॥ १०५ ॥ आगे तृतिय कोट वन एम । फटिकमई निर्मल नभ जेम ॥ अति उतंग सो बलयाकार । लालवरन मनिनिर्मित द्वार ॥ १०६ ॥ और कथन पूरबवत जान । ठाड़े सुरग देव दरवान ॥ महामनोहर लोचनहारि । अनुपमशोभा अचरजकारि ॥ १०७॥ अब सुनि मध्य भूमिकी कथा । फटिककोट भीतर विधिजथा॥ गढ़सों प्रथम पीठलग लगी । फटिकभीत सोलह जगमगी॥१०८॥ तिनपै रतनथंभ छबि देहिं । प्रभाजालसों तम हर लेहिं ॥ तिनहीपै श्रीमंडप छयो । फटिक मई नभमें निरमयो॥१०९॥ सोरठा—या श्रीमंडपमाहिं, निराबाध तिहुँ जग वसैं । भीर होय तहां नाहिं, त्रिभुवनपति अतिशय अतुल॥११०॥चौपाई—भीतन वीच गली जे रही । बारहसभा तहां जिन कही ॥ बैठे मुनि अपछर आर्जिया । जोतिष वान असुर सुरतिया ॥१११॥ भावन विंतर जोतिषिदेव । कल्पनिवासी नर पशु एव ॥ तिनमें प्रथम पीठका ठई । अनुपम बैडूरज मणिमई॥११२॥मोरकंठवत आभा जास । सोलह पैंड साल चहुँ पास॥बारह सभा महा दिशि चार । तिनकों यह पथ सोलह सार ॥ ११३ ॥ मंगलदरव जहां सब धरे । जच्छदेव सेवक तहां खरे ॥ धर्मचक्र तिनके सिर दिपै । जिनको देखि दिवाकर छिपै ॥११४ ॥

चौपई—पहले गोलपीठका ठई ।इन्द्रनीलमनिमय निर्मई॥ पांच कोस चौड़ी परवान । तीनलोक उपमा नाहिं आन॥६६॥जाके चहुंदिशि गिरदाकार। बनी पैंड़िका बीसहजार॥हाथ हाथपरि ऊंची लसैं। नभपरजंत देखि दुख नसैं॥६७॥तापर धूलीशाल उतंग। पंचरतनरजमय सर्वंग॥ विविध वर्ण सो बलयाकार। झलकै इन्द्रधनुष उनहार॥६८॥कहीं श्याम कहिं कंचनरूप। कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप॥ समोसरन लछमीको एम। दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम॥ ६९॥ चारों दिशि तोरन बन रहे। कनक थंभ ऊपर लहलहे॥ आगे मानभूमि है जहां। मानथंभ चारोंदिशि तहां॥ ७०॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी। सोलह पैंडी संजुत ठनी॥ चार चार दरवाजे ठान। तीन तीन तहां कोट महान॥ ७१॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ। तिनपै मानथंभ थिर दीठ॥ अतिउतंग कंचनके ठये। छत्रधुजादिकसों छवि छये॥७२॥ जिनैं देखि मानी मद बढ़े। उतरे मान महागिरि चढ़े॥ मूलभाग प्रतिमा मनहरें। इन्द्रादिक पूजा विसतरैं॥७३॥ एक एक दिशि चहुँ दिशि ठई। सहज वापिका वारिजछई॥ मन्दादिक शुभ जिनके नाम। चारों दिशि सोलह सुखधाम॥७४॥ आगे खाई शोभित खरी। औंड़ी अधिक विमलजलभरी॥ रतनतीर राजैं चहुँओर। हंसकलाप करैं जहँ शोर॥ ७५॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय॥

किधौं विमल गंगानदी, प्रभु परदछना देय ॥ ७६ ॥ चौपई—आगे पुहपबेल वनसार । महासुगंध मधुप सुखकार ॥ सघनछांह सब रितुके फूल । फूले जहां सकल सुखमूल ॥७७॥ याकैं कछु अन्तर द्युति धरै । कंचन कोट प्रथम मनहरै ॥ बलयाकृति अति उन्नत जेह । मानो मानषोत्र गिरि येह ॥ ७८ ॥ चहुँदिशि सोहैं चार दुवार । रूपमई तिखने मनहार ॥ रतनकूट ऊपर जगमगै । लाल वरन अतिसुन्दर लगै ॥ ७९ ॥ किधौं अरुन छबि हाथ उठाय । जगलछमी नाचै विहसाय ॥ नौनिधि जहां रहैं अभिराम । पिंगलादि हैं जिनके नाम ॥ ८० ॥ प्रभुअजोग गिन दीनी छार । वे मचली सेवैं दरबार ॥ मंगल दरव एकसौ आठ । धरे प्रतेक मनोहर ठाठ ॥ ८१ ॥ गावैं जिनगुन देवकुमार । और विविधि शोभा तहँ सार ॥ विंतरदेव खड़े दरवान । विनयहीनको देहिं न जान ॥ ८२ ॥ यह पहले गढ़की विधि कही । आगे और सुनो अब सही ॥ गोपुर ताजि चारों दिशि गली । गमनहेत भीतरको चली ॥ ८३ ॥ तहां निरतशाला दुहुं पास । सब दिशिमें जानो सुखवास ॥ सुवरनथंभ फटिकमय भीत । तिखनी मनिमय शिखर पुनीत ॥ ८४ ॥ सुरवानिता नाचैं तह एम । लावन-तोय-तरंगनि जेम ॥ मंदहास मुख सोहै खरीं । जिनमंगल गावैं सुखभरीं ॥ ८५ ॥ बाजै बीन बांसली ताल ।

महा मुरजधुनि होय रसाल ॥ आगे बीथी अन्तर धरे । दोनों दिशा धूपघट भरे ॥ ८६ ॥ सोरठा—श्याम वरन यह जानि, धूप धुवां नभको चल्यो । किधौं पुन्यडर मानि, धूवां मिस पातग भज्यो ॥ ८७ ॥ चौपई—आगे चार बाग चहुँ ओर । प्रथम अशोक नाम चितचोर ॥ सप्तवर्ण चंपक सहकार । ये इनकी संज्ञा अविधार ॥ ८८ ॥ सब रितुके फल फूलन भरे । विरछ बेलसों सोहत खरे ॥ वापीमंडप महल मनोग । राजैं जहां जथाविधिजोग ॥ ८९ ॥ चैत विरछ चारों वनमाहिं । मध्यभागसुंदर छबि छाहिं ॥ जिनमुद्रामंडित मनहरैं । सुरनर नित पूजा विस्तरैं ॥ ९० ॥ बाग ओट बेदी चहुँओर । चारद्वारमंडित छबि जोर ॥ अब इस वन बेदीतैं सही । गढपरजंत गली जे रही ॥ ९१ ॥ तिनमें धुजापाँति फहराहिं । कंचनथम्भ लगी लहराहिं ॥ दशप्रकार आकार समेत । तिनके भेद सुनो सुखहेत ॥९२॥ माला वसन मोर अरविंद । हंस गरुड़ हरि वृषभ गयंद॥ चक्रसहित दश चिहन मनोग । धुजा दुकूलनि सोहैं जोग ॥९३॥ ये दश एक जातकी जान । एक एकसौ आठ प्रमान ॥ दशसै असी सबै मिल भई । एक दिशामें सब वरनई ॥ ९४ ॥ चारों दिशिकी जोड़ सरीस । चारहजारतीनसै बीस ॥

यह परमित जिनशासनमाहिं । अतिविचित्र शोभा अधिकाहिं ॥ ९५ ॥ हालैं धुजा पवन वश येह । जिनपूजन भवि आये जेह ॥ पंथखेद तिनको मन आन । करत किधौं सतकार विधान ॥ ९६ ॥ मानथंभ धुजथंभ अनूप । चैतविरछ बेदी गढ़रूप ॥ इत्यादिक ऊँचे इकसार । जिन तनतैं बारह गुन धार ॥ ९७ ॥ आगे रजत मयी निरमान । तुंगकोट अति धवल महान ॥ किधौं सेत प्रभुसुजस प्रकास । फेरी देय फिरो चहुँपास ॥ ९८ ॥ पूरबवत दरवाजे चार । रतनमई अनुपम छबि धार ॥ नौनिधि मंगलदरब समाज । तोरनप्रमुख और सब साज ॥ ९९ ॥ प्रथमकोटवरननसम जान । ठाड़े भवन देव दरवान ॥ यासों लगी और अब गली । चारों तरफ एक सी चली॥१००॥ कल्पवृच्छ वन राजै तहां । दशविधि कल्पतरोवर जहां ॥ भूषन वसन लगे जिन डार । शोभा कहत न लहिये पार ॥१०१ ॥ मध्यभाग जिनविंब समेत । सिद्धारथ तरुवर छबि देत ॥ चहुंदिशि बेदी चहुं दिशि द्वार । रचना और अनेक प्रकार॥१०२॥इस बेदीके बाहर भाग । आगे फटिक कोट लों लाग ॥ अतिविचित्र महलनकी पांति । जिन सिर रतकूट बहुभांति ॥ १०३ ॥ चंद्रकांतिमाणि भासुर भीत । सुवरनमय तहां थंभ पुनीत ॥ सुरनरनागरमें जिनमाहि । किन्नरगन बहु केलि कराहिं ॥ १०४ ॥ वीथी मध्यदेश शुभरूप ॥

अष्टप्रातिहार्यवर्णन ।

गीता—राजत उतंग अशोक तरुवर,पवनप्रेरित थरहरै । प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानो मनहरै ॥ तिस फूलगुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी । सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १२५ ॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, शरन ढूंढ़त जग फिरो । कोई न राखै चोर प्रभुको, आय पुनि पायन गिरो ॥ यों हार निज हथियार डारे, पुहुपवर्षा मिस भनी । सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १२६ ॥ प्रभु अंग नील उतंग नगतैं, वानि शुचि सीता ढली । सो भेद भ्रम गजदंत पर्वत, ज्ञानसागरमें रली ॥ नय सप्तभंग तरंगमंडित, पापताप विधंसनी ॥ सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥ १२७ ॥ चंद्रार्चि चयछवि चारु चंचल, चमरवृन्द सुहावने । ढोलैं निरंतर जच्छनायक, कहत क्यों उपमा बने ॥ यह नील गिरिके शिखर मानो, मेघझर लागी घनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥ १२८ ॥ हीरा जवाहर खचित बहुविधि, हेम आसन राजए । तहँ जगत जनमनहरन प्रभुतन, नीलवरन विराजए ॥ यह जटित वारिज मध्य मानो नील मनिकलिका बनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १२९ ॥

जगजीत मोहमहान जोधा, जगतमें पटहा दियो । सो शुक्लध्यान कृपानबल, जिन विकट वैरी वश कियो ॥ ये वजत विजय निशान दुंदुभि, जीत सूचैं प्रभुतनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १३० ॥ छदमस्त पदमें प्रथम दर्शन, ज्ञान चारित आदरे । अब तीन तेई छत्र छलसों, करत छाया छवि भरे ॥ अति धवलरूप अनूप उन्नत, सोमविंबप्रभा हनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १३१ ॥ दुति देखि जाकी चांद शरमें, तेजसों रवि लाजए । अब प्रभामंडल जोग जगमें, कौन उपमा छाजए ॥ इत्यादि अतुल विभूतमंडित, सोहिये त्रिभुवनधनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १३२ ॥ यों असम महिमासिंधु साहब, शक्र पार न पावही । तजि हासभय तुम दास भूधर, भगतिवश जस गावही ॥ अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं । कर जोर यह बरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं ॥१३३॥ चौपई—इह विधि समोसरनमंडान । कियो कुवेर जथाविधि थान ॥ आये सुर वरसावत फूल । जय जयकार करत सुखमूल ॥१३४॥ अति प्रसन्नता सब विधि भई । हरषत तीन प्रदछना दई ॥ धूलशालिमें कियो प्रवेश । चक्रित भयो छवि देखि सुरेश ॥ १३५ ॥ मुदित महर्धिक देवन साथ । जिनसन-

सुख आयो सुरनाथ ॥ हरतकमल जोरे अमरेश । देखे दृग भरि पासजिनेश ॥ १३६ ॥
मणिउतंग आसन पर ईस । मानो मेघ रत्नगिरि शीस ॥ फैल रही तनकिरनकलाप ।
कोटभानसों अधिक प्रताप ॥ १३७ ॥ विकसत चित रोमांचित काय । प्रनमो चरन
सीस भुवि लाय ॥ मनिझारी भरि तीरथतोय । पूजे मघवा जिनपद दोय ॥ १३८ ॥
सुर्ग सुगंधनि भक्ति बढ़ाय । अरचे इन्द्र जिनेश्वरपाय ॥ मुक्ताफलमय अच्छत लिये ।
पुंज परमगुरु आगे दिये ॥ १३९॥ पारिजात मंदार मनोग । पुहुप चढ़ाये जिनवर जो-
ग ॥ सुधापिंड चरु लेय पवित्त । पूजा करी शक्र धरि चित्त ॥ १४० ॥ रतनप्रदीप खाने
खरे । श्रीपति पॉय शचीपति धरे ॥ देवलोककी अगर अनूप । पासचरन खेई सुरभूप ॥
॥१४१॥ कल्पतरोवरके फल रजे । जगपतिपॉय पुरंदर जजे ॥ सर्व दरव धरि करि परना-
म । दीनों इन्द्र अरघ अभिराम॥१४२॥ दोहा—करि जिनपूजा आठ विधि, भावभक्ति
बहुभाय । अब सुरेश परमेशथुति, करत सीस निज नाय ॥ १४३ ॥ चौपई—प्रभु इस
जग समरथ नाहिं कोय । जापै जसवर्णन तुम होय ॥ चारज्ञानधारी मुनि थके । हमसे मंद
कहा कर सके॥१४४॥यह उर जानत निश्चय कीन । जिनमहिमावर्णन हम हीन ॥ पै
तुमभक्ति करै बाचाल । तिसवश होय गहूं गुणमाल ॥१४५॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी ।

जगचंद्रोपम चूड़ामनी ॥ जय जय परमधर्मदातार । कर्मकुलाचल चूरनहार ॥१४६॥
जय शिवकामिनकंत महंत । अतुल अनंत चतुष्टयवंत॥जय जगआशभरन बड़भाग । शि-
वलछमीके सुभग सुहाग ॥१४७॥जय जय धर्मधुजाधर धीर । सुरगमुक्तिदाता वरवीर॥
जय रतनत्रय रत्नकरंड । जय जिन तारनतरनतंरड॥१४८॥जय जय समोसरन सिंगार ।
जय संशयवनदहनतुसार॥जय जय निर्विकार निर्दोष॥जय अनंतगुनमानिककोष॥१४९॥
जय जय ब्रह्मचरजदल साज । कामसुभटविजयी भटराज॥जय जय मोह महानगकरी॥जय
जयमदकुंजरकेहरी॥१५०॥क्रोधमहानलमेघप्रचंड॥मानमहीधरदामिनिडंड॥मायाबेलधनं-
जयदाह । लोभसलिलशोषक दिननाह ॥१५१॥तुमगुनसागर अगम अपार । ज्ञानजहाज
न पहुंचै पार॥तट ही तटपर डोलत सोय । स्वारथसिद्ध तहांही होय॥१५२॥प्रभु तुम कीर्ति-
बेल बहु बढ़ी॥जतनविना जगमंडप चढ़ी॥और अदेव सुयश नित चहैं । ये अपने घरही यश
लहैं॥१५३॥जगतजीव घूमै विनज्ञान । कीनो मोहमहाविषपान॥ तुम सेवा विषनाशन
जरी । यह मुनिजन मिलि निहचै करी॥१५४॥जन्मलता मिथ्यामतमूल । जामनमरन लगैं
जिहि फूल॥सो कबही विनभक्तिकुठार । कटै नहीं दुखफलदातार॥१५५॥ कलपतरोवर चि-
त्रावेल । काम पोरसा नौनिधि मेल॥ चिंतामनिपारस पाषान । पुन्यपदारथ और महान

॥१५६॥ ये सब एकजन्मसंजोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुमारी सेव । जन्मजन्म सुखदायक देव॥१५७॥तुम जगबान्धव तुम जगतात । अशरनशरन विरदविख्यात ॥ तुम जगजीवनके रछपाल । तुम दाता तुम परमदयाल॥१५८॥ तुम पुनीत तुम पुरुषपुरान । तुम समदर्शी तुम सब जान ॥ तुम जिन यज्ञपुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥ १५९ ॥ तुमही जगभरता जगजान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम विन तीनकाल तिहुँलोय । नहिं नहिं शरन जीवको कोय॥१६०॥तिस कारन करुनानिधि नाथ । प्रभु सनमुख जोरे हम हाथ ॥ जब लों निकट होय निरवान । जगनिवास छूटै दुखदान ॥ १६१॥ तब लों तुम चरनांबुज वास । हम उर होहु यही अरदास ॥ और न कछु वांछा भगवान । यह दयाल दीजै वरदान ॥१६२॥ दोहा—इहिविधि इन्द्रादिक अमर, करि बहुभक्ति विधान ॥ निज कोठे बैठे सकल, प्रभुसम्मुख सुखमान ॥ १६३ ॥ जीति कर्मरिपु जे भये, केवललब्धिनिवास । ते श्रीपारसप्रभु सदा, करो विघनवन नास॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवतज्ञानकल्याणकवर्णनं नाम अष्टमोऽधिकारः ।

नवमोऽधिकारः ।

सोरठा—पारसप्रभुको नाउँ, सार सुधारस जगतमें । मैं याकी बलि जाउँ, अजर अ-

मरपदमूल यह ॥ १ ॥ दोहा—बारह सभा सुथानमधि, यों प्रभु आनँदहेत। यथा कमलनीखंडको, शशिमंडल सुखदेत ॥२॥ विकसितमुख सुरनर सकल, जिनसन्मुख करजोर ॥ निवसैं प्यासे अमृतधुनि, ज्यों चातक घनओर ॥ ३ ॥ चौपई—तब गनराज स्वयंभू नाम। चार ज्ञानधारी गुनधाम ॥ करि प्रनाम पारसप्रभुओर। विनती करी करांजुलि जोर ॥ ४ ॥ भो स्वामी त्रिभुवनघर येह। मिथ्यातिमिर छयो अति जेह ॥ भूले जीव भमैं तामाहिं। हितअनाहित कछु सूझै नाहिं ॥ ५ ॥ श्रीजिनवानी दीपक-लोय। ता विन तहां उदोत न होय ॥ तातैं करुनानिधि स्वयमेव। करि उपदेश अनुग्रह देव ॥ ६ ॥ जाननजोग कहा है ईश। गहनजोग सो कहि जगदीश ॥ त्यागनजोग कहो भगवान। तुम सबदर्शी पुरुष प्रमान ॥ ७ ॥ कैसे जीव नरकमें परै। क्यों पशु-योनि पाय दुख भरै ॥ काहेसों उपजै सुरलोय। कौन कर्मतैं मानुष होय ॥ ८ ॥ कौन पापफल जनमें अन्ध। बहरे कौन क्रियासम्बन्ध ॥ किस अघ उदय होय नर पंग। गूंगे किस पातक परसंग ॥ ९ ॥ कौन पुन्यतैं दरव अतीव। क्यों यह होंहिं दरिद्री जीव ॥ पुरुष वेद किस कर्म उदोत। नारि नपुंसक किस विधि होत ॥ १० ॥ किस आचरन बड़ी थिति धरैं। क्यों करि अलप आयु धरि मरैं ॥ भोगहीन अरु भोगसमेत। सुखी दुखी

दीखैं किस हेत ॥११॥ किस कारन मूरख मतिहीन । क्यों उपजैं पंडित परवीन ॥ कि-
स करनीतैं होय सरोग । किस अधर्म तैं पुत्रवियोग ॥१२॥ विकलशरीर पाय दुख सहै ।
नीच ऊंचकुल कैसे लहै ॥ किनभावन भवथिति विस्तरै । भवथिति भेद कहा करि
करै ॥१३॥ क्योंकर होय सुरगमें इन्द्र । कैसे पद पावै अहमिंद्र ॥ चक्रीपद किस
पुन्यउदोत । किमि बांधै तीर्थंकरगोत ॥ १४ ॥ इत्यादिक यह प्रश्न समाज । इनको
उत्तर कह जिनराज ॥ तुम सब संशयहरन जिनेश । जैसे भवतमदलन दिनेश ॥ १५ ॥
दोहा—तब श्रीमुखवानी विमल, विनअक्षर गंभीर । महामेघकी गरज सम, खिरी
हरन जगपीर ॥ १६ ॥ तालु होठ सपरस विना, मुखविकार विन सोय । सब भाषा-
मय मधुरतर, श्रीजिनकी धुनि होय ॥ १७ ॥ जथा मेघजल परनमें निंबादिक रस-
रूप ॥ तथा सर्वभाषामई, श्रीजिनवचन अनूप ॥ १८ ॥ चौपई—छहों दरव पंचासति-
काय । सात तत्व नौ पद समुदाय ॥ जाननजोग जगतमें येह । जिनसों जाहिं सकलस-
न्देह ॥ १९ ॥ सब विधि उत्तम मोखनिवास । आवागमन मिटै जिहिं वास ॥ तातैं जे
शिवकारन भाव । तेई गहनजोग मन लाव ॥ २० ॥ यह जगवास महादुखरूप । तातैं
भ्रमत दुखी चिद्रूप ॥ जिनभावन उपजै संसार । ते सब त्यागजोग निरधार ॥ २१ ॥-न-

खण्डखण्ड कीने जे बन्ध । फेर न मिलै आपसों सन्ध॥माटी ईंट काठ पाषान । इत्यादिक अतिथूल वखान ॥१०८॥ छिन्न भिन्न हों फिर मिल जाहिं। ऐसे पुद्गल जे जगमाहिं ॥ घृत अरु तेल जलादिक जान । ये सब थूल कहे भगवान ॥ १०९॥ देखत लगें दिष्टि सों थूल। करमें गहे जाहिं नहिं मूल॥धूप चांदनी आदि समस्त । जान थूल ते सूक्षम वस्त ॥११०॥आंखनसों दीखै नहिं जेह। चारों इन्द्रीगोचर तेह॥ विविधि सपर्श शब्द रस गंध । सूक्षमस्थूल जान ते बंध॥१११॥नाना भांति वर्गना भिंड। कारमाण परमाणू पिंड ॥ काही इन्द्रीगोचर नाहिं । ते सूक्षम जिनशासनमाहिं ॥११२ ॥ कर्मवर्गना सो ही कहा । जो अति ही सूक्षम सरदहा । दुणकआदि परमाणूबंध। सो सूक्ष्मसूक्षम सुन बंध॥११३॥षट प्रकार पुद्गल इहि भाय । मुख्य गौन सबमें गुण थाय ॥ इनहीसों निर्मापत लोक । और न दीखै दूजो थोक ॥ ११४ ॥ शब्द बंध छाया तम जान । सूक्षम थूल भेद संठान अरु उदोत आतप बहु भाय । यह दश विधि पुद्गलपर्याय ॥ ११५ ॥ धर्मद्रव्यकथन— जब जड़जीव चलै सतभाय । धर्मदरव तब करै सहाय ॥ तथा मीनको जलआधार । अपनी इच्छा करत विहार ॥ ११६ ॥ अधर्मद्रव्यकथन—यों ही सहज करै थित सोय । तब अधर्म सहकारी होय ॥ ज्यों मगमें पंथीको छाहिं । थितिकारन है बलसों नाहिं॥११७॥

दीखैं किस हेत ॥११॥ किस कारन मूरख मतिहीन। क्यों उपजैं पंडित परवीन ॥ किस करनीतैं होय सरोग। किस अधर्म तैं पुत्रवियोग ॥१२॥ विकलशरीर पाय दुख सहै। नीच ऊंचकुल कैसे लहै ॥ किनभावन भवथिति विस्तरै। भवथिति भेद कहा करि करै ॥१३॥ क्योंकर होय सुरगमें इन्द्र। कैसे पद पावै अहमिंद्र ॥ चक्रीपद किस पुन्यउदोत। किमि बांधै तीर्थंकरगोत ॥ १४ ॥ इत्यादिक यह प्रश्न समाज। इनको उत्तर कह जिनराज ॥ तुम सब संशयहरन जिनेश। जैसे भवतमदलन दिनेश ॥ १५ ॥ दोहा—तब श्रीसुखवानी विमल, विनअक्षर गंभीर। महामेघकी गरज सम, खिरी हरन जगपीर ॥ १६ ॥ तालु होठ सपरस विना, मुखविकार विन सोय। सब भाषामय मधुरतर, श्रीजिनकी धुनि होय ॥ १७ ॥ जथा मेघजल परनमें निंबादिक रसरूप ॥ तथा सर्वभाषामई, श्रीजिनवचन अनूप ॥ १८ ॥ चौपई—छहों दरव पंचासतिकाय। सात तत्व नौ पद समुदाय ॥ जाननजोग जगतमें येह। जिनसों जाहिं सकलसन्देह ॥ १९ ॥ सब विधि उत्तम मोखनिवास। आवागमन मिटै जिहिं वास ॥ तातैं जे शिवकारन भाव। तेई गहनजोग मन लाव ॥ २० ॥ यह जगवास महादुखरूप। तातैं भ्रमत दुखी चिद्रूप ॥ जिनभावन उपजै संसार। ते सब त्यागजोग निरधार ॥ २१ ॥-न-

आकाशद्रव्यकथन—जो सब द्रव्यनको अवकाश । देय सदा सो द्रव्य अकाश ॥ ताके भेद दोय जिन कहे । लोकअलोक नाम सरदहे ॥ ११८॥ जहँ जीवादि पदारथवास । असंख्यातपरदेश निवास ॥ लोकाकाश कहावै सोय । परैं अलोक अनंता होय ॥ ११९॥ कालद्रव्यकथन—लोकप्रदेश असंखे जहां। एक एक कालाणू तहां॥ रत्नराशि वत निवसैं सदा । द्रव्यसरूप सुथिर सर्वदा॥१२०॥बरतावन लक्षण गुण जास। तीनकाल जाको नहिं नास॥ समयघड़ी आदिक बहुभाय। ये व्यवहारकालपर्याय॥१२१॥पहले कहौ जीवअधिकार । और अजीव पंचपरकार ॥ ये ही छहों द्रव्यसमुदाय । कालविना पंचासतिकाय ॥ ॥१२२॥ दोहा—वहु परदेशी जो दरव, कायवन्त सो जान। तातैं पचअथिकाय हैं, काय काल विन मान॥१२३॥सवैया छंद—जीवरधर्म अधर्म दरव ये, तीनों कहे लोक परवान॥ असंख्यात परदेशी राजैं, नभ अनन्तपरदेशी जान ॥ संख असंख अनंतप्रदेशी, त्रिविधिरूप पुद्गल पहिचान ॥ एकप्रदेश धरै कालाणूं, तातैं काल कायविन मान ॥१२४॥ दोहा—कालकाय विन तुम कहो,एकप्रदेशी जोय॥पुद्गल परमाणू तथा,सो सकाय क्यों होय ॥१२५॥सवैया—अलख असंख्य दरव कालाणू,भिन्नभिन्न जगमाहिं वसाहिं। आपसमाहिं मिलै नाहिं कबहीं,तातैं कायवन्त सो नाहिं॥ रूप साचिकनतें परमाणू, ततखिन बन्धरूप हो

जाहिं । यों पुद्गलको कायकल्पना, कही जिनेश्वरके मतमाहिं ॥१२६॥ आकाशप्रदेशरूप तथा शक्तिकथन—जितने मान एक अविभागी, परमाणू रोकै आकास ॥ ताको नाव प्रदेश कहावै, देय सर्व दरवनको वास॥ तहां एक कालाणू निवसै, धर्मअधर्म प्रदेशनिवास॥ रहैंअनन्त प्रदेश जीवके, पुद्गलबंध लहैं अवकास।१२७।पोमावती-धर्म अधर्म कालअरु चेतन चारों दरव अरूपी गाये॥ तातें एक अकाश देशमें, प्रभु सबके परदेश समाये॥ मूरतवन्त अनंते पुद्गल, तेउस नभमें क्योंकर माये॥ यह संशय समझायकहो गुरु, दास होय हम पूछनआये।१२८। सोरठा—बहु प्रदीप परकाश, यथा एक मंदिरविषै॥ लहैं सहज अवकाश, वाधा कछु उपजै नहीं ॥१२९॥ दोहा—त्यों हीं नभ परदेशमें, पुद्गल बंध अनेक ॥ निरावाध निवसें सही, ज्यों अनन्त त्यों एक॥१३०॥ आस्रवतत्त्वकथन—जो कर्मनको आगमन, आस्रव कहिये सोय । ताके भेद सिद्धांतमें, भावित दरवित होय ॥ १३१॥ चौपई—मिथ्या अविरत योग कषाय । और प्रमाददशा दुखदाय । ये सब चेतनको परिनाम । भावास्रव इनहींको नाम ॥ १३२ ॥ तिनही भावनके अनुसार । ढिगवरती पुद्गल तिहि वार ॥ आवें कर्म भावके-जोग । सो दरवित आस्रव अमनोग॥१३३॥ बंधतत्त्वकथन—सोरठा—रागादिक परिनाम जिनसों चेतन बँधत है । तिन भावनको नाम, भावबंध जिनवर कह्यो ॥१३४॥ दोहा—

अवधार। जीवतत्त्ववर्णन लिख्यो,अब अजीव अधिकार॥९६॥ अजीवतत्त्वकथन—पुद्-गल धर्म अधर्म नभ,कालनाम अवधार। ये अजीव जड़तत्त्वके,भेद पंच परकार॥९७॥ तिनमें पुद्गल दोय विधि, बन्धरूप अणुरूप। यह सब हैं रूपी दरव,चारों और अरूप॥९८॥ अणुरूपी पुद्गल दरव, छेद भेद नाहिं जास। अगनि जलादिक जोगसों, होय न कबही नास॥ ९९॥ जा अविभागीमें नहीं, आदि मध्य अवसान। शब्द-रहित पर शब्दको कारणभूत वखान॥१००॥ सोरठा—भू जल पावक वाय, हेतुरूप सब-को यही। बहुविधि कारन पाय, वरणादिक पलटैं तुरत॥१०१॥ अविनाशी जिसमाहिं, सदा पंच गुण पाइये। इन्द्रीगोचर नाहिं, अवधि ज्ञानसों जानिये॥ १०२॥ दोहा—वरण पांच रस पांचमें, एक एक ही होय॥ एक गन्ध दो गन्धमें, आठ फरसमें दोय॥१०३॥ ये परमाणू पंचगुण, सात बंधमें जान। वर्णादिक जे बीस हैं, ते गुण जात वखान॥ १०४॥ आगे पुद्गल बंधके, सुनो भेद षट सोय॥ सरधा करतैं समझतैं, संशय रहै न कोय॥ १०५॥ चौपई—प्रथम भेद अतिथूल तखान। द्वितिय थूल संज्ञा उर आन॥ तृति-य थूलसूक्षम सरदहो। सूक्ष्मस्थूल चतुर्थम गहो॥ १०६॥ पंचम सूक्षम नाम गिनेह। षष्टम अतिसूक्षम षट येह॥ अब इनको वरणन विरतंत। सुनो एक मनसों मतिवंत॥१०७॥

खण्डखण्ड कीने जे बन्ध। फेर न मिलै आपसों सन्ध॥माटी ईंट काठ पाषान। इत्यादिक अतिथूल वखान ॥१०८॥ छिन्न भिन्न हों फिर मिल जाहिं। ऐसे पुद्गल जे जगमाहिं ॥ घृत अरु तेल जलादिक जान। ये सब थूल कहे भगवान ॥ १०९॥ देखत लगैं दिष्टि सों थूल। करमें गहे जाहिं नहिं मूल॥धूप चांदनी आदि समस्त। जान थूल ते सूक्षम वस्त ॥११०॥आंखनसों दीखै नहिं जेह। चारों इन्द्रीगोचर तेह॥ विविधि सपर्श शब्द रस गंध। सूक्ष्मस्थूल जान ते बंध॥१११॥नाना भांति वर्गना भिंड। कारमाण परमाणू पिंड ॥ काही इन्द्रीगोचर नाहिं। ते सूक्षम जिनशासनमाहिं ॥११२॥ कर्मवर्गना सो ही कहा। जो अति ही सूक्षम सरदहा। दुणकआदि परमाणूबंध। सो सूक्ष्मसूक्षम सुन बंध॥११३॥षट प्रकार पुद्गल इहि भाय। मुख्य गौन सबमें गुण थाय ॥ इनहीसों निर्मापत लोक। और न दीखै दूजो थोक ॥ ११४ ॥शब्द बंध छाया तम जान। सूक्षम थूल भेद संठान अरु उदोत आतप बहु भाय। यह दश विधि पुद्गलपर्याय ॥ ११५ ॥ धर्मद्रव्यकथन—
जब जड़जीव चलै सतभाय। धर्मदरव तब करै सहाय ॥ तथा मीनको जलआधार। अपनी इच्छा करत विहार ॥ ११६ ॥ अधर्मद्रव्यकथन—यों ही सहज करै थित सोय। तब अधर्म सहकारी होय ॥ ज्यों मगमें पंथीको छाहिं। थितिकारन है बलसों नाहिं॥११७॥

देह भवभोग विरच्चे। धन्य धन्य ते साधु, आप अपने रस रच्चे ॥ धन्य धन्य ते साधु, पीठ जगकी दिशि कीनी। धन्य धन्य ते साधु, दिष्टि शिवसम्मुख दीनी॥ तजि सकल आस बनवास वस, नगन देह मद परहरे। ऐसे महंतमुनिराज प्रति, हाथ जोर हम सिरधरे॥ १५६ ॥ चौपई—पंच महाव्रत दुद्धर धरैं। सम्यक पाच समिति आदरैं॥ तीन गुप्ति पालैं यह कर्म। तेरहविधि चारित मुनिधर्म ॥१५७॥ यातैं सधैं मुक्तिपदखेत। गिरही धर्म सुरगसुख देत ॥ सो एकादश प्रतिमारूप। ते वरनों संक्षेप सरूप॥ १५८॥ दर्शनप्रतिमा—पंच उदंवर तीनप्रकार। सात व्यसन इनको परिहार॥ दर्शन होय प्रतिज्ञायुक्त। सो दर्शनप्रतिमा जिनउक्त॥ १५९॥ सप्तव्यसनानिषेध, ढाल—श्रीगुरुशिक्षा सांभलौ, (ज्ञानी) सात व्यसन परित्यागोरे॥ येजगमें पातक बड़े, (ज्ञानी) इन मारग मत लागोरे॥ १६०॥ जुवा खेलन मांडिये, (ज्ञानी) जो धन धर्म गँवावैरे॥ सब विसननकोबीज है, (ज्ञानी) देखंता दुख पावैरे॥१६१॥ रजवीरजसों नीपजै, (ज्ञानी) सो तन मास कहावैरे॥ जीव हते विन होय ना, (ज्ञानी) नांव लियां विन आवैरे॥१६२॥ सड़ि उपजै कीड़ां भरी, (ज्ञानी) मद दुर्गंध निवासोरे॥ छीयांसों शुचिता मिटै, (ज्ञानी) पीयां बुद्ध विनासोरे ॥ १६३॥ धिक वेश्या बाजारनी, (ज्ञानी) रमती नीचन साथैरे॥

धनकारन तन पापिनी, (ज्ञानी) वेचै व्यसनी हाथैरे॥१६४॥ अति कायर सबसों डरै-(ज्ञानी) दीन मिरग वनचारीरे ॥ तिनपै आयुध साधते, (ज्ञानी) हा अतिक्रूर शिकारी रे ॥१६५॥ प्रघट जगतमें देखिये, (ज्ञानी) प्रानन धनतें प्यारोरे ॥ जे पापी परधन हरैं (ज्ञानी) तिनसम कौन हत्यारोरे॥१६६॥ परतिय व्यसन महा बुरो, (ज्ञानी)यामैं दोष बड़ेरोरे ॥ इहि भव तनधनयश हरै, (ज्ञानी) परभव नरकबसेरोरे ॥१६७॥ पांडवआदि दुखी भये, (ज्ञानी) एक व्यसन रति मानीरे ॥ सातनसों जे शठ रचे,(ज्ञानी)तिनकी कौन कहानीरे ॥ १६८ ॥ दोहा—पच उदंबर फल कहे, मधुमद मास मकार । इनके दूषण परिहरो, पहली प्रातिमा धार ॥ १६९ ॥ व्रतप्रातिमा–चौपई--पांच अणुव्रत गुणव्रत तीन । शिक्षाव्रत चारों मलहीन ॥ बारहव्रत धारैं निर्दोष । यह दूजी प्रतिमा व्रतपोष ॥१७०॥ दोहा–अब इन बारह व्रतनको,लिखों लेश विरतंत । जिनको फल जिनमत कह्यो, अच्युतस्वर्ग पर्यंत ॥ १७१ ॥ ढाल–जो नित मनवचकायसों, कृतआदिक सौंजैहोंजी॥ त्रसको त्रास न दीजिये, प्रथम अणुव्रत एहों जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ ॥१७२॥झूठवचन नहि बोलिये,सबही दोष निवासो जी॥ दूजोव्रत सो जान ये, हितामित वचनसंभाखो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १७३ ॥ भूलो विसरो भूपरो, जो परधन

जो चेतनपरदेशपै, बैठे कर्म पुरान ॥ नये कर्म तिनसों बधैं, दरवबंध सो जान ॥ १३५ ॥ संवरतत्त्वकथन—पद्धडी—आस्रव आविरोधन हेतै भाव। सो जान भावसंवर सुभाव॥ जो दर्वित आस्रव शुद्धरूप। सो होय दरव संवरसरूप॥१३६॥ वृत पंचसमिति पांचों सुकर्म। वर तीन गुप्ति दश भेद धर्म ॥ वारह विधि अनुप्रेक्षाविचार। वाईस परीषहविजय सार ॥ १३७ ॥ पुनि पांच जात चारित अशेष। ये सर्व भावसंवर विशेष ॥ इनसों कर्मास्रव रुकै एम। परनालीके मुहँ डाट जेम॥१३८॥दोहा—शुभ उपयोगी जीवके, व्रत आदिक आचार। पापास्रव आविरोधको, कारण है निर्धार ॥१३९॥ शुद्ध उपयोगी साध जे, तिनकै ये आचार। पुन्यपाप दोऊनको, संवरहेत विचार ॥ १४० ॥ निर्जरातत्त्वकथन चौपई—तपबल कर्म तथा थिति पात। जिन भावों रस दे खिर जात॥ तेई भाव भावनिर्जरा। संवरपूरव है शिवकरा॥१४१॥ बँधे कर्म छूटैं जिसबार। दरवनिर्जरा सो निर्धार॥ इहिविधि जिनशासनमें कहिया। समकितवंत सांच सरदहिया॥१४२॥मोक्षतत्त्वकथन—जो अभेद रत्नत्रिय भाव। सोई भावमोक्ष ठहराव ॥ जीव कर्मसों न्यारा होय। दरवमोक्ष अविनाशी सोय ॥ १४३ ॥ ये सब सात तत्त्व वरनये। पुन्यपाप मिलि नौपद भये ॥ आस्रवतत्त्वविषै वे दोय। गर्भित जान लीजिये सोय ॥ १४४ ॥

दोहा—जीव यथारथदिष्टिसों, सरधै तत्त्वसरूप ॥ सो सम्यकदर्शन सही, महिमा जास अनूप ॥ १४५ ॥ नयप्रमाण निक्षेप करि, भेदाभेद विधान । जो तत्त्वनको जाननो, सोई सम्यक्ज्ञान ॥ १४६ ॥ सो सामान्य विलोकिये, दर्शन कहिये जोय । जो विशेष कर जानिये, ज्ञान कहावै सोय॥१४७॥ चारित किरियारूप है, सो पुनि दुविधि पवित्त ॥ एक सकल चारित्र है, दुतिय देशचारित्त ॥१४८ ॥ अड़िल्ल—जहां सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै । सो पूरन चारित्र, महा मुनिवर धरै ॥ लेश्य त्याग जहँ होय, देशचारित वही । सो ग्रहस्थको धर्म ग्रही पालै सही ॥ १४९ ॥ दोहा—तीर्थंकर निर्ग्रंथपद, धर साधो शिवपंथ । सोई प्रभु उपदेशियो, मोक्षपंथ निर्ग्रंथ ॥ १५० ॥ दशविधि बाहिज ग्रंथमें, राखै तिल तुस मान । तौ मुनिपद कहिये नहीं, मुनि विन नहिं निर्वान॥१५१॥ जे जन परिग्रहवंतको, मानै मुक्तिनिवास । ते कबही न मुकत लहैं, भ्रमैं चतुरगति-वास ॥ १५२ ॥ क्रोधादिक जबही करैं, बंधै कर्म तब आन । परिग्रहके संयोगसों, बंध निरंतर जान ॥१५३॥ बंध अभावै मुक्ति है, यह जानै सब लोय । बंध हेत वरतैं जहां, मुक्ति कहाँतैं होय ॥ १५४ ॥ पश्चिम भान न ऊगवै, अगनि न शीतल होय । यथाजात जिनलिंगविन, मोक्ष न पावै कोय ॥ १५५ ॥ छप्पय—धन्य धन्य ते साधु,

मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८३॥ अन्त समय संलेखणा,कीजै शक्ति संभालो जी॥जासों व्रत संजम सबै,ये फल देहिं विशालो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८४ ॥ चौपई—तीनकाल सामायिक करै । पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥ १८५ ॥ परव चतुष्टय ताजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥ सोलह पहर धरै शुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान॥१८६॥ त्यागै हरी जात जावंत। दल फल कंद बीज बहु भंत ॥ प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग॥१८७॥ जो दिनमें मैथुन परिहरै। मनवच-काय शील दिढ़ धरै ॥ षष्टमप्रतिमाधारी धीर । यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ १८८ ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै। नौ विधि सदा शील व्रत भजै ॥ काम कथारत कबहिं न होय । सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ १८९ ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार। निरारंभ वरतैं मद छार । अहानिशि हिंसासों भयभीत। अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १९० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचितवसन राखै विनराग ॥ सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ । यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥१९१॥ जो ग्रहस्थकारज अघमूल । तिनको अनुमति

दोहा—जीव यथारथदिष्टिसों, सरधै तत्त्वसरूप ॥ सो सम्यकदर्शन सही, महिमा जास अनूप ॥ १४५ ॥ नयप्रमाण निक्षेप करि, भेदाभेद विधान । जो तत्त्वनको जाननो, सोई सम्यक्ज्ञान ॥ १४६ ॥ सो सामान्य विलोकिये, दर्शन कहिये जोय । जो विशेष कर जानिये, ज्ञान कहावै सोय॥१४७॥ चारित किरियारूप है, सो पुनि दुविधि पवित्त ॥ एक सकल चारित्र है, दुतिय देशचारित्त ॥१४८ ॥ अड़िल्ल—जहां सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै । सो पूरन चारित्र, महा मुनिवर धरै ॥ लेश्य त्याग जहँ होय, देशचारित वही । सो ग्रहस्थको धर्म ग्रही पालै सही ॥ १४९ ॥ दोहा—तीर्थंकर निर्ग्रंथपद, धर साधो शिवपंथ । सोई प्रभु उपदेशियो, मोक्षपंथ निर्ग्रंथ ॥ १५० ॥ दशविधि बाहिज ग्रंथमें, राखै तिल तुस मान । तौ मुनिपद कहिये नहीं, मुनि विन नहिं निर्वान॥१५१॥ जे जन परिग्रहवंतको, मानै मुक्तिनिवास । ते कबही न मुकत लहैं, भ्रमें चतुरगति-वास ॥ १५२ ॥ क्रोधादिक जबही करैं, बंधै कर्म तब आन । परिग्रहके संयोगसों, बंध निरंतर जान ॥१५३॥ बंध अभावै मुक्ति है, यह जानै सब लोय । बंध हेत वरतैं जहां, मुक्ति कहाँतैं होय ॥ १५४ ॥ पश्चिम भान न ऊगवै, अगनि न शीतल होय । यथाजात जिनलिंगविन, मोक्ष न पावै कोय ॥ १५५ ॥ छप्पय—धन्य धन्य ते साधु,

देय न भूल ॥ भोजनसमयबुलायो जाय । सो दशमीप्रतिमा सुखदाय ॥१९२॥ दोहा—अब एकादशमी सुनो, उत्तम प्रतिमा सोय । ताके भेद सिधान्तमें, छुल्लक ऐलक दोय ॥ १९३ ॥ चौपई—जो गुरुनिकट जाय व्रत गहै । घर ताजि मठ मंडपमें रहै ॥ एकवसन तन पीछी साथ । कटिकोपीन कमंडल हाथ ॥ १९४ ॥ भिक्षा भाजन राखै पास । चारों परव करै उपवास ॥ ले उदंडभोजन निर्दोष । लाभ अलाभ राग ना रोष॥१९५॥ उचित काल उतरावै केश । डाढ़ी मूँछ न राखै लेश ॥ तपविधान आगम अभ्यास । शक्तिसमान करै गुरुपास ॥१९६॥ यह छुल्लक श्रावककी रीत । दूजो ऐलक अधिक पुनीत ॥ जाके एक कमर कोपीन । हाथ कमंडल पीछी लीन॥१९७॥ विधिसों बैठि लेहि आहार । पानिपात्र आगम अनुसार ॥ करै केशलुंचन अति धीर । शीत घाम सब सहै शरीर ॥१९८॥ सोरठा--पानिपात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ि मुनि ॥ खड़ो रहै तिहिवार, भक्तिरहित भोजन तजै ॥१९९॥ दोहा--एक हाथपै ग्रास धरि,एक हाथसे लेय ॥ श्रावकके घर आयके, ऐलक अशन करेय ॥ २०० ॥ यह ग्यारहप्रतिमा कथन, लिख्यो सिधांत निहार । और प्रश्न बाकी रहे, अब तिनको अधिकार ॥ २०१ ॥ चौपई—जे जगमें पापी परधान । सात व्यसनसेवक अज्ञान ॥ रुद्रध्यान धारैं अघमई । अति ही

क्रूर कर्म निर्दई ॥ २०२ ॥ झूठवचन बोलैं सत छोर । परधन परवनिताके चोर ॥ बहु आरंभी बहुपरिग्रही । मिथ्यामतको पोषैं सही॥२०३॥ चंड कषायी अधिक सराग । जिनप्रतिमानिंदक निर्भाग ॥ मुनिवर निंदि पाप सिर लेहिं । जैनधर्मको दूषण देहिं॥२०४॥ नीचदेवसेवारस रचे । धरैं कृस्नलेश्या मद मचे ॥ इत्यादिक करनीरत रहैं । ऐसे नीच नरकगति लहैं ॥२०५॥ छप्पय—सप्तमसों पशु होय, देश संयम न संभालै ॥ छठे नरकसों मनुष, होय व्रत नाहीं पालै ॥ पंचमसों व्रत धरै, मोक्षगतिको नहिं साधै ॥ चौथेसों शिव जाय, नहीं तीरथपद लाधै ॥ सब शुभ्रवाससों आयकै, वासुदेव नहिं भव धरै ॥ प्रति वासुदेव बलदेव पुनि, चक्रवर्ति नहिं अवतरै ॥२०६ ॥ चौपई—मायाचारी जे दुठ जीव । परपंचनमें निपुन अतीव ॥ झूठ लिखैं अरु चुगली खाहिं । झूठी साखि भरत भय नाहिं ॥२०७॥शील न पालैं मोहउदोत । लेश्या जिनकै नील कपोत ॥ आरतध्यानी धर्मविहीन । पशुपर्याय लहैं अकुलीन ॥२०८॥ आरतरौद्ररहित नीराग । धर्म शुकल ध्यानी वड़भाग ॥ जिनसेवक पालैं व्रत शील । कसैं करण मदमाते कील॥ २०९ ॥ जिनप्रतिमा जिनमंदिर ठवैं । सातखेत उत्तम धन बवैं ॥ सदाचार सुन श्रावक होय । जथाजोग पावै सुर लोय ॥ २१० ॥ सहज सरल परनामी जीव । भद्रभाव उर धरैं सदीव ॥

बहु भायो जी ॥ विन दीये लीजै नहीं, जनम दुखदायो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ ॥१७४॥ ब्याही वानिता होय जो, तासों कर संतोषो जी । परिहारिये परकामिनी, यासम और न दोषो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१७५॥ धनकन कंचन आदि दे, परिग्रह संख्या ठानो जी । तिशना नागिन वश करो,यह व्रत मंत्र महानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं॥१७६॥ अवधि दशों दिशि खेतकी, कीजै संवर जानो जी । बाहर पांव न दीजिये, जब लग घटमें प्रानो जी ॥ बारहव्रत विध वरणऊं ॥१७७॥ कर मरयादा कालकी, करिये देश प्रमानो जी । वन पुर सरिता आदि दे, नित्त गमनको थानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १७८ ॥ जहां स्वारथ नाहिं संपजै, उपजै पाप अपारो जी । अनरथदंड वही कहो, त्यागै पंच प्रकारो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १७९ ॥ सामायिक विधि आदरो,थल एकांत विचारो जी। उर धरिये शुभ भावना,आरत रौद्र निवारो जी ॥ बारह व्रत विधि वरणऊं॥१८०॥ पोषह व्रत आराधिये,चारौं परवमँझारो जी । चहुँविधि भोजन परिहरो, घरआरंभ सब छारो जी । बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८१ ॥ भोजन पान तँबोल त्रिय, खटभूषण बहु एमो जी । भोगयथा उपभोग है, कब इनको जम नेमो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८२ ॥ उत्तम अतिथिनको सदा, दीजै चौविधि दानो जी।

मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८३॥ अन्त समय संलेखणा, कीजै शक्ति संभालो जी॥जासों व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विशालो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८४ ॥ चौपई—तीनकाल सामायिक करै । पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥ १८५ ॥ परव चतुष्टय तजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥ सोलह पहर धरै शुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान॥१८६॥ त्यागै हरी जात जावंत । दल फल कंद बीज बहु भंत ॥ प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग॥१८७॥ जो दिनमें मैथुन परिहरै। मनवच-काय शील दिढ़ धरै ॥ षष्टमप्रतिमाधारी धीर । यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ १८८ ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै। नौ विधि सदा शील व्रत भजै ॥ काम कथारत कबहिं न होय । सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ १८९ ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार। निरारंभ वरतैं मद छार । अहनिशि हिंसासों भयभीत । अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १९० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचितवसन राखै विनराग ॥ सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ । यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥१९१॥ जो ग्रहस्थकारज अघमूल । तिनको अनुमति

होय। पुरुषवेद पावैं सुरलोय॥ २२१॥ जे अतिकामी कुटिल अतीव। महा सरागी मोहित जीव॥ परवनितारत शोकसँजुक्त। ते कामिनितन लहैं निरुक्त॥२२२॥ रागअन्ध अति जे जगमाहिं। कामभोगसों तृपतै नाहिं॥ वेश्यादासी रक्तकु शील। ते नर लहैं नपुंसक—डील॥२२३॥मनवचकाय महानिर्दई। वध बंधन ठानैं अघमई॥ परको पीड़ा बहुविधि करैं। ते जिय अलप आयु धरि मरैं॥२२४॥कृपावन्त कोमल परिणाम। देखि विचारि करें सब काम॥ जीवदयामें तत्पर सदा। परको पीड़ा देहिं न कदा॥२२५॥ सबही जीवनसों हितभाव। धरैं पुरुष ते दीरघ आव। जे जिनयज्ञपरायण नित्त। पात्रदानरत शीलपवित्त॥२२६॥ इन्द्रीजीत हिये संतोष। ते नर भोग लहैं व्रत पोष॥ पूजादान विमुख मदलीन। इन्द्रीलुब्ध दयागुणहीन॥ २२७॥ दुराचार दुरध्यानी लोग। इनको प्रापत होहि न भोग॥ समय विचारि पढ़ैं जिनग्रंथ। पढ़ैं पढ़ावें जे शुभपंथ॥२२८॥ हितसों धर्मदेशना कहैं। ते परभव पण्डितपद लहैं॥ ज्ञानगरव हिरदै धर लेहिं। जिनसिधांतको दूषन देहिं॥ २२९॥ इच्छाचारी पढ़ैं अशुद्ध। ज्ञानविनयवरजित जड़ बुद्ध॥ पढ़नेजोग पढ़ावैं नाहिं। ऐसे मरि मूरख उपजाहिं॥२३०॥अनाचाररत आरँभवान। परको पीड़न करैं अयान॥ पापकर्मरत धर्म न गहें। ते परभवमें रोगी रहैं॥२३१॥ परदुख देखि हरख उर धरै। परव-

मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८३॥ अन्त समय संलेखणा, कीजै शक्ति संभालो जी॥जासों व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विशालो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८४ ॥ चौपई—तीनकाल सामायिक करै । पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥ १८५ ॥ परव चतुष्टय ताजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥ सोलह पहर धरै शुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान॥१८६॥ त्यागै हरी जात जावंत। दल फल कंद बीज बहु भंत ॥ प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग॥१८७॥ जो दिनमें मैथुन परिहरै। मनवच-काय शील दिढ़ धरै ॥ षष्टमप्रतिमाधारी धीर । यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ १८८ ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै। नौ विधि सदा शील व्रत भजै ॥ काम कथारत कबहिं न होय । सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ १८९ ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार। निरारंभ वरतैं मद छार । अहनिशि हिंसासों भयभीत। अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १९० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचितवसन राखै विनराग ॥ सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ । यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥१९१॥ जो ग्रहस्थकारज अघमूल । तिनको अनुमति

होय। पुरुषवेद पावैं सुरलोय ॥ २२१ ॥ जे अतिकामी कुटिल अतीव। महा सरागी मोहित जीव ॥ परवनितारत शोकसँजुक्त। ते कामिनितन लहैं निरुक्त॥२२२॥ रागअन्ध अति जे जगमाहिं। कामभोगसों तृपतै नाहिं॥ वेश्यादासी रक्तकु शील। ते नर लहैं नपुंसक—डील॥२२३॥मनवचकाय महानिर्दई। वध बंधन ठानैं अघमई ॥ परको पीड़ा बहुविधि करैं। ते जिय अल्प आयु धरि मरैं॥२२४॥कृपावन्त कोमल परिणाम। देखि विचारि करै सब काम॥ जीवदयामें तत्पर सदा। परको पीड़ा देहिं न कदा॥२२५॥ सबही जीवनसों हितभाव। धरैं पुरुष ते दीरघ आव। जे जिनयज्ञपरायण नित्त। पात्रदानरत शीलपवित्त ॥२२६॥ इन्द्रीजीत हिये संतोष। ते नर भोग लहैं व्रत पोष ॥ पूजादान विमुख मदलीन। इन्द्रीलुब्ध दयागुणहीन ॥ २२७ ॥ दुराचार दुर्ध्यानी लोग। इनको प्रापत होहि न भोग॥ समय विचारि पढ़ैं जिनग्रंथ। पढ़ैं पढ़ावैं जे शुभपंथ ॥२२८॥ हितसों धर्मदेशना कहैं। ते परभव पण्डितपद लहैं॥ ज्ञानगरव हिरदै धर लेहिं। जिनसिधांतको दूषन देहिं ॥ २२९ ॥ इच्छाचारी पढ़ैं अशुद्ध। ज्ञानविनयवरजित जड़बुद्ध ॥ पढ़नेजोग पढ़ावैं नाहिं। ऐसे मरि मूरख उपजाहिं॥२३०॥अनाचाररत आरँभवान। परको पीड़न करैं अयान॥ पापकर्मरत धर्म न गहैं। ते परभवमें रोगी रहैं॥२३१॥ परदुख देखि हरख उर धरै। परव-

मंद मोह जिनके देखिये । मंदकषायप्रकाति पेखिये ॥ २११ ॥ अलपारंभ अलप धन चहैं । उर कपोतलेश्या निर्वहैं ॥ पुण्यपाप नाहिं ब्ररतैं दोय । मिश्रभावसों मानुष होय ॥२१२॥ परके दोष सुनैं मन लाय । विकथा वानी बहुत सुहाय ॥ कुकविकाव्य सुन हरषैं जोय । ते बहरे उपजैं परलोय ॥२१३॥ पढ़ैं सुछंद विवेक न करैं । मृषापाठ विकथा विस्तरैं ॥ परनिंदा भावैं बहुभाय । निजपरशंसा करैं बढ़ाय ॥२१४॥ मलमूत्रादिक भोजन काल । मौन छांड़ि बोलैं बाचाल॥झूठ कहत कछु शंकैं नाहिं । ते गूंगेजनमे जगमाहिं ॥ २१५ ॥ परतियमुख देखैं करि नेह । निरखैं सब योनादिक देह ॥ वधबंधन याचैं धरि राग । ते मरि आँधे होंहिं अभाग॥२१६॥ जे नर करैं कुतीरथ गौन । बहुत बोझ लादैं विनमौन ॥ वृथाविहारी देख न चलैं । होय पंगु ते पातक फलैं ॥२१७॥ नीतवनज करि लछमी लेहिं । ओछा लेहिं न अधिका देहिं ॥ अलपवित्त दानादिक करैं ते नर दरवधनी अवतरैं ॥२१८॥ जे धन पाय धरैं अभिमान । समरथ होकर देहिं न दान ॥ धनकारन छलछिद्र कराहिं । बढ़त परिग्रह धापैं नाहिं ॥२१९॥ लक्ष्मीवन्त कृपन जन जेह । परभव होंहिं दरिद्री तेह ॥ मंदकषायी सरलसुभाव । अहनिशि वरतैं पूजाभाव ॥ २२० ॥ निज वनितासंतोषी सदा । मंदराग दीखैं सर्वदा ॥ दुराचार जिनके नहिं-

गणधरदेवप्रति, जगतजीवहितकाज ॥ २४२ ॥ वानी सुन बारह सभा, भयो सबन आनन्द ॥ जैसे सूरजके उदय, विकसै वारिजवृन्द ॥ २४३ ॥ वचनाकिरणसों मोहतम मिट्यो महा दुखदाय ॥ वैरागे जगजीव बहु, काललब्धिबल पाय ॥ २४४ ॥ चोपई— केई मुक्तिजोग बड़भाग । भये दिगंबर परिग्रह त्याग ॥ किनही श्रावक व्रत आदरे । पशुपर्याय अणुव्रत धरे ॥ २४५ ॥ केई नार अर्जिका भई । भर्ताके संग वनकों गई ॥ केई नर पशु देवी देव । सम्यकरत्न लह्यो तहां एव ॥ २४६ ॥ केई शक्तिहीन संसार । व्रत भावना करी सुखकार ॥ पूजादानभाव परिनये । जथाजोग सब सेवक भये ॥ २४७ ॥ दोहा—कमठ जीव सुरजोतिषी, करि वचनामृतपान ॥ वमों बैर मिथ्यात्व विष, नमो चरण जुग आन ॥ २४८ ॥ सम्यकदरशन आदर्‍यो, मुक्ति-तरोवरमूल ॥ शंकादिक मल परिहरे, गई जनमकी शूल ॥ २४९ ॥ तहां सातसै ता-पसी, करत कष्ट अज्ञान ॥ देखि जिनेश्वरसंपदा, जग्यो जथारथ ज्ञान ॥ २५० ॥ दई तीन परदक्षिणा, प्रणमें पारसदेव ॥ स्वामि चरण संयम धरो, निंदी पूरव टेव ॥ २५१ ॥ धन्य जिनेश्वरके वचन, महामंत्र दुखहंत ॥ मिथ्यामत विषधर डसे, निर्विष होहिं तुरंत ॥ २५२ ॥ कहां कमठसे पातकी, पायो दर्शन सार ॥ कहां पापतप तापसी, धर्‍यो महाव्रत

निता परधन जो हरै ॥ नरपशुजीव विछोहैं जोय। सो पुत्रादिवियोगी होय ॥ २३२॥ नीचकर्मरत करुणा नाहिं । हाथ पांव छेदैं छिनमाहिं ॥ जे परको उपजावैं पीर। ते नर पावै विकल शरीर ॥ २३३ ॥ जो मिथ्यामतमदिरा पियें । पापसूत्रकी शरधा हियें ॥ धर्मनिमित्त जीवबध करैं। महाकषाय कलुषता धरैं॥२३४॥ नास्तिकमती पाप मग गहैं। ते अनन्तसंसारी रहैं ॥ रतनत्रयधारी मुनिराज। आगमध्यानी धर्मजहाज ॥२३५॥इच्छारहित घोरतप करैं। कर्म नाशकर भवजल तिरैं। उत्तमदेव नमैं शिरनाय। पूजैं परम साधुके पाय ॥२३६॥ साधरमीबतसल मुनिप्रीत। उत्तम गोत बंधै इहिरीत॥ जे जिन यती जिनागम जान। नमै नहीं शठ करि अभिमान ॥२३७॥ मानै नीच देव गुरु धर्म। ये सब नीच गोतके कर्म ॥ जिनके हिये रमै वैराग। धारैं संजम तृश्ना त्याग ॥ २३८ ॥ अतिनिर्मल चारितभंडार। ज्ञानध्यानतत्पर अविकार ॥ ख्याति लाभ पूजा नहिं चहैं। ते अहमिंद संपदा गहैं ॥ २३९ ॥ पंच करण बैरी वश आन। चारित पालै अति अमलान ॥ दुद्धरतप कर सोखै काय। चक्री होय देवपद पाय॥२४०॥ जे सम्यकदृष्टी गुणग्रही। सोलहकारन भावैं सही ॥ ते तीर्थंकर त्रिभुवनधनी। होहिं तीन जगचूड़ामनी ॥ २४१ ॥ दोहा—इहिविधि पूछनहारको, समाधान जिनराज ॥ कीनो

भार ॥ २५३ ॥ जिनके वचनजहाज चढ़ि, उतरे भवजलपार ॥ जे मतच्छ आये शरन, क्यों न होय उद्धार ॥२५४॥ अब श्रीगणधरदेव तहँ, चार ज्ञान परवीन ॥ जिस समुद्रतें अर्थजल, मतिभाजन भर लीन ॥ २५५ ॥ नाम स्वयंभू दयानिधि, विधिधि रिद्धिगुण-खेत ॥ द्वादशांग रचना करी, जगतजीवहितहेत ॥ २५६ ॥ परमागम अमृतजलधि, अवगाहें मुनिराय ॥ जन्मजरामृतदाह हरि, होंय सुखी शिव पाय ॥ २५७ ॥ चौपई— प्रथम एकसौ बारह कोड़। लाख तिरानवै ऊपर जोड़॥बावन सहस पांच पद सही। द्वाद-शागकी परमित कही ॥ २५८ ॥ पद्धड़ी—इक्यावन कोड़ी लाख। चौरासी सहस-सिलोक भाख ॥ छस्सै साढ़े इक्कीस जान। यह एक महापदको प्रमान ॥२५९॥ दोहा—इहिं विधि सभासमूह सब, निवसै आनँदरूप ॥ मानो अमृत नीरसों, सिंचत देह अनूप ॥ २६० ॥ चौपई—तब सुरेश उठि विनती करी। हाथ जोर सिर अंजुलि धरी ॥ भो जगनायक जगआधार। तीन भवनजनतारनहार ॥२६१॥ यह विहारअवसर भग-वान। करिये देव दया उर आन ॥ भविकजीवखेती कुमलाय। मिथ्यातपसों सूखी जाय ॥ २६२ ॥ भोपरमेश अनुग्रह करो। वानीवरषासों तप हरो ॥ मोक्षमहापुरके पर-धान। तुम विनजारे दयानिधान ॥२६३॥ प्रभुसहाय भवि सुखपद लेहिं। आवागमन

जलांजुलि देहिं॥इहिविधि इन्द्र प्रार्थना करी। सहसनाम करि थुति विस्तरी॥२६४॥भयो अनिच्छ्या गमन जिनेश। भविजीवनके भागविशेश॥सकलसुरासुर जय जय कियो। जिनविहारअम्रतरस पियो॥२६५॥ गमनसमय औरे विधि भई। समोसरनरचना खिर-गई॥चले संग सुर चतुरनिकाय। चहुँविधि सकल चले सुरराय॥२६६॥ सुरदुंदाभि बाजैं सुखकार। जिनमंगल गावैं सुरनार॥ हाथ धुजाजुत देवकुमार। चले जाहिं नभमें छवि सार॥२६७॥चहुँदिशि चार चारसौ कोश। होय सुभिच्छ सदा निर्दोष॥ नभविहार जिन्न-वरकै होय। जीवघात तहां करै न कोय॥२६८॥ सब उपसर्गरहित भगवंत। निरआहार आयुपरयन्त॥ चतुरानन देखैं संसार। सब विद्यापति परमउदार॥२६९॥ प्रभुके तनकी परै न छाहिं। पलक पलकसों लागैं नाहिं॥ नख अरु केश बढ़ैं नाहिं जास। ये दशकेवल आतिशय भास॥२७०॥ भाषा सकल अर्ध मागधी। खिरै सकल संशयहर सधी॥नरप-शु जातिविरोधी जीव। सब उर मैत्री धरैं सदीव॥२७१॥ नानाजाति विरछ दुख दलैं। सबरितुके फल फूलनि फलैं॥ प्रभुसंचारभूमि मणिमई। दर्पणवत आगमवरनई॥२७२॥ सुरभिपवन पीछे अनुसरै। वायुकुमार जनित सुखकरै॥ सुरनरपशू सभागत जेह। पर-मानन्दसहित सब तेह॥२७३॥ मारुतसुर योजनमित मही। करैं धूलितृणवर्जित सही॥

मेघकुमार करैं मन लाय । गंधोदकवरषा सुखदाय ॥२७४॥ चरनकमल जिन धारैं जहां । कंचन कमल रचैं सुर तहां ॥ सातकमलतैं आगैं ठान । पीछे सात एकमधि जान ॥२७५॥ यों पंकजकी पँद्रह पांति । सवा दोइ सै सब इहिभांति ॥ शुकलध्यान उपजे बहुभाय । निर्मलदिशि निर्मल नभ थाय ॥२७६॥ मुदितबुलावे देवसमाज । भविजनको निज पूजनकाज ॥ धर्मचक्र आगे संचरै । सूरजमंडलकी छवि हरै ॥२७७॥ मंगलदर्व आठ झलकाहिं । जथाजोग सुर लीये जाहिं ॥ ये चौदह देवनकृत जान । वरअतिशयमंडितभगवान ॥ २७८ ॥ करैं विहार परमसुख होत । भविजीवनके भाग उदोत ॥ स्वर्गमोक्षमारग प्रभु सार । प्रगट कियो भ्रमतिमर निवार ॥२७९॥ कहीं कुलिंगी दीखैं नाहिं । भानु उदय ज्यों चोर पलाहिं ॥ सब निज निज वांछाअनुसार । पूरणआश भये तनधार ॥२८०॥ काशी कौशलपुर पंचाल । मरहट मारूदेश विशाल ॥ मगध अवंती मालवठाम । अंग वंग इत्यादिक नाम ॥ २८१ ॥ कीनौ आरजखंड विहार । मेटौ जगमिथ्याअँधियार ॥ अब सब गणकी गणना सुनों । यथापुराणकथित विधि मुनों ॥२८२॥ प्रथम स्वयम्भु प्रमुखपरधान । दश गणधर सर्वांगम जान ॥ पूरवधारी परमउदास । सर्व तीन सै अरु पंचास ॥ २८३ ॥ शिष्य मुनीश्वर कहे पुरान । दशहजार नौ सै परवान ॥ अवधिवन्त

चौदह सै सार । केवलज्ञानी एकहजार॥२८४॥ विविधि विक्रियारिद्धिवलिष्ट । एकसहस जानो उतकृष्ट ॥ मनपरजयज्ञानी गुनवन्त । सातशतक पंचास महन्त ॥ २८५ ॥ छसै वादविजयी मुनिराज । सब मुनि सोलहसहस समाज॥सहसछब्बीस अर्जिका गनी । एकलाख श्रावकव्रतधनी ॥२८६॥ तीनलाख श्रावकनी जान । वरनी संख्या मूल पुरान ॥ देवीदेव असंख्यअपार । पशुगण संख्याते निरधार॥२८७॥ इहविधि बारह सभासमेत । रतनत्रयमारगविधि देत॥ विहरमान दरसावत बाट । सत्तरवरष भये कछु घाट ॥२८८॥ सम्मेदाचल शिखर जिनेश । आये श्रीपारसपरमेश ॥ एकमास जिन योग निरोध । मनवचकाय क्रिया सब रोध॥२८९॥सूक्षमकाय योगथिति ठान । त्रितियशुकलसंजुत तिहिं ठान ॥ तजि सयोगथानक स्वयमेव । आये फिर अयोगपद देव॥२९०॥ पँचलघुक्षर है तिथि जहां । चतुरथ शुकलध्यानबल तहां॥ दोयचरम समये जिन भनी । प्रकृति बहत्तर तेरह हनी ॥ २९१ ॥ इहिविधि कर्म जीत भगवान । एक समय पहुँचे निर्वान ॥ औ छत्तीस मुनीश्वर साथ । लोकशिखर निवसे जिननाथ ॥ २९२ ॥ सावन सुदि सातैं शुभ वार । विमल विशाखा नखतमँझार ॥ तजि संसार मोक्षमें गए । परमसिद्ध परमातम भए ॥ २९३ ॥ पूरव चरम देहतैं लेश । भये हीन आतम परदेश ॥ अष्टगुनातमम-

य व्यवहार । निहचै गुण अनंतभंडार ॥ २९४॥ सादि अनंतदशा परिनये । सिद्धभाव वसुगुनजुत थये ॥ परमसुखालय वासो लियो । आवागमन जलांजलि दियो ॥२९५॥ दोहा–पंच कल्यानक पाय सुख, जगत जीव उद्धार । भये पूज्य परमातमा, जय जय पासकुमार ॥ २९६ ॥ जिनके सुखको ज्ञानकी, नहिं उपमा जगमाहिं । जोतिरूप सुख-पिंड थिर, इंद्रीगोचर नाहिं ॥ २९७॥ अब तिनको आकार कछु, एकदेश अवधार । लिखों एक दृष्टांत करि, जिनशासन अनुसार ॥ २९८ ॥ चौपाई—मोममई इक पुतला ठान । नखशिख सम्मचतुरसंठान ॥ सब तन सुंदर पुरुषाकार । नराकार इसही विधि सार ॥ २९९ ॥ माटीसों इमि लेपहु सोय । जैसे त्वचा देहपर होय ॥ कहीं अंग खाली नहिं रहै । सब उपचारकल्पना यहै ॥ ३०० ॥ पुनि सो लीजै अगनि तपाय । सांचा रहै मोम गल जाय ॥ अब ता भीतर करो विचार । कहा रह्यो बुध ताहि निहार ॥ ३०१ ॥ अन्तर मूस पोल है जहां । पुरुषाकार रह्यो नभ तहां ॥ याही अंबरके उनहार । ब्रह्मस्वरूप जान निरधार ॥ ३०२ ॥ यह आकाश शून्य जड़रूप । वह पूरन चेतन चिद्रूप ॥ यही फेर है या वामाहिं । आकृतिमें कछु अंतर नाहिं ॥ ३०३ ॥ या विधि परमब्रह्मको रूप । निराकार साकारसरूप ॥ यह दृष्टांत हिये निज धरो ।

भवि जिय अनुभवगोचर करो ॥ २०४ ॥ दोहा—वसैं सिद्ध शिवखेतमें, ज्यों दर्पनमें छाहिं ॥ ज्ञाननयनसों प्रगट हैं, चर्म नैंनसों नाहिं ॥ २०५ ॥ चौपई—तब इंद्रादिक सुरसमुदाय । मोक्ष गये जाने जिनराय ॥ श्रीनिर्वाणकल्याणक काज । आये निज निज बाहन साज ॥ २०६ ॥ परमपवित्त जानि जिनदेह । मणिशिवकापर थापी तेह ॥ करी महापूजा तिहिं बार । लिये अगर चंदन घनसार ॥ २०७॥ और सुगंधदरव शुचि लाय । नमें सुरासुर शीस नमाय ॥ अगनिकुमार इंद्रतैं ताम। मुकटानल प्रगटी अभिराम ॥ २०८ ॥ ततखिन भस्म भई जिनकाय । परम सुगंध दशौं दिशि थाय ॥ सो तन भस्म सुरासुर लई । कंठ हिये कर मस्तक ठई ॥ २०९॥भक्ति भरे सुर चतुरानिकाय । इहविधि महा पुन्य उपजाय ॥ कर आनंद निरत बहुभेव । निज निज थान गये सब देव ॥ २१० ॥ दोहा—पंचकल्यानक पूज प्रभु, शिवशिरिकंन जिनेश ॥ सब जग सुख संपति करो, श्रीपारसपरमेश ॥ २११ ॥ पद्धड़ी—पहले भव वामन कुलपवित्त । मरुभूत उपन्नो सरलचित्त ॥ दूजे वनहस्ती वज्रघोष । जिन पाले बारहव्रत अदोष ॥२१२॥ तीजे भव द्वादशस्वर्गवास । सहस्रार नाम सब सुखनिवास ॥ चौथे भव विद्याधरकुमार । लघु वैस लियो चारित्रभार ॥२१३॥ पंचम भव अच्युत सुर-

ग थान । बाईस जलधि जहँ थिति प्रमान ॥ छट्ठे भवमें चक्रीनरेश । जिन साधे सहस-बतीस देश ॥ ३१४ ॥ सातवें जनम अहमिंद्र होय । सुख कीने चिर उपमा न कोय ॥ आठम भव श्रीआनंदराय । तजि राजरिद्धि वन वसे जाय ॥ ३१५ ॥ सोलहकारन भाये मुनिंद्र । पुनि भये बारमें स्वर्ग इंद्र ॥ इहि विधि उत्तम नौ जनम पाय । वामाजननी उर वसे आय ॥ ३१६ ॥ जे गरभ जनम तप ज्ञान काल । निर्वाणपूज्य कीरतिविशाल॥ सुर नर मुनि जाकी करैं सेव । सो जयो पार्श्वदेवाधिदेव ॥ ३१७ ॥ दोहा—नाम लेन पातक भजैं, सुमरत संकट जाहिं । तेईसम अवतार मुझ, वसो सदा हियमाहिं ॥३१८॥ छप्पय—कमठ जीव तन छोरि, दुतिय कुरकट अहि जायो ॥ नरक पंचमें जाय, आय अजगर तन पायो॥धूम प्रभामें उपजि,भील अति भयो भयानक। चरम नरक पुनि सिंघ, फेर पंचमभू थानक ॥ पशुजौनि भुंजि महिपाल नृप, देव जोतिषी अवतरयो ॥ इहि विधि अनेक भवदुख भरे, बैरभाव विषतरु फल्यो ॥ ३१९ ॥ दोहा—छिमाभाव फल पासजिन, कमठवैर फल जान । दोनों दिशा विलोकके, जो हित सो उर आन ॥ ३२० ॥ सोरठा—जीव जाति जावंत, सबसों मैत्रीभाव करि ॥ याको यह सिद्धंत, बैर-

विरोध न कीजिये[1] ॥ ३२१ ॥ सवैया—जो भगवान वखान करी धुनि, सो गुरु गौतमनें उर आनी । तापर आइ ठई रचना कछु, द्वादश अंग सुधारस बानी ॥ ता अनुसार अचारजसंव, सुधीवलसों बहुकाव्य वखानी । यों-जिनग्रंथ यथारथ है, अयथारथ हैं सब और कहानी ॥ ३२२ ॥ दोहा—जितने जैनसिद्धांत जग, ते सब सत्यसरूप । धर्मभावना हेत सब, हितमित शिक्षारूप ॥ ३२३ ॥ कलपित कथा सुहावनी, सुनते कौन अरत्थ । लाख दाम किस कामके, लेखन लिखे अकत्थ ॥ ३२४ ॥ सोरठा—सुन श्रीपार्श्वपुरान, जान शुभाशुभ कर्मफल । सुहित हेत उर आन, जगत जीव उद्यम करो ॥ ३२५ ॥ दोहा—प्रभुचरित्र मिस किमपि यह, कीनो प्रभु गुनगान । श्रीपारस परमेशको, पूरन भयो पुरान ॥ ३२६ ॥ पूरव चरित विलोकिकै, भूधर बुद्धि समान । भाषाबंध प्रबंध यह, कियो आगरे थान ॥ ३२७ ॥ छप्पय—अमरकोष नहिं पढ्यो, मैं न कहि पिंगल पेख्यो । काव्य कंठ नहिं करी, सारसुत सो नहिं सीख्यो ॥ अच्छर-संधि-समास-ज्ञानवर्जित बुधि हीनी ।

[1] उक्त च—सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं । क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं ॥ माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ । सदा ममात्मा विदधातु देवः ॥ ३२३ ॥

धर्मभावना हेत, किमपि भाषा यह कीनी ॥ जो अर्थ छंद अनमिल कही. सो बुध फेर सवांरियो । सामान्यबुद्धि कविकी निरखि, छिमाभाव उर धारियो ॥ ३२८ ॥ दोहा—जिनशासन अनुसार सब, कथन कियो अवसान । निज कपोलकलिपत कहीं, मति समझो मतिवान॥३२९॥ छयउपशमकी ओछसों, कै प्रमादवश कोय । इहिविधि भूल्यो पाठ में, फेर सवांरो सोय ॥ ३३० ॥ पंच वरष कछु सरससे, लागे करतन बेर ॥ बुधि थोरी थिरता अलप, तातैं लगी अबेर ॥ ३३१ ॥ सुलभ काज गरुवो गनै. अलपबुद्धिकी रीत । ज्यों कीड़ी कण ले चलै, किधौं चली गढ़ जीत ॥ ३३२ ॥ विघनहरन निरभयकरन, अरुन वरन अभिराम । पासचरन संकटहरन, नमो नमो गुनधाम ॥ ३३३ ॥ छप्पय—नमो देव अरहन्त, सकल तत्वारथभासी । नमो सिद्ध भगवान, ज्ञानमूरति अविनाशी ॥ नमो साध निर्ग्रन्थ, दुविधि परिग्रह परित्यागी । जथाजात जिन लिंग धारि, वन वसे विरागी॥ वंदों जिनेशभाषित धरम, देय सर्व सुख सम्पदा ॥ ये सार चार तिहुँलोकमें, करो क्षेम मंगल सदा ॥ ३३४ ॥ दोहा—संवत सतरह सै समय, और नवासी लीय । सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रंथ समापत कीय ॥ ३३५ ॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवन्निर्वाणगमनवर्णनं नाम नवमोऽधिकारः ।

चंद्रोपम चामर छत्रशीश । दशजाति कल्पसुरसाहित ईश ॥ ईशानप्रमुख इमि देवराज । निज निज बाहनको चले साज ॥२५॥परिजनसमेत उर हरषभाव। जिन जन्मकल्यानक करन चाव ॥ बाजे सुरदुन्दाभि विविधि भेव ।जयकार करैं मिलि सकल देव ॥२६॥ उपज्यो कोलाहल गगन थान। सब दिशि दीखैं बाहन विमान॥ आकाशसरोवर अतिगँभीर । इन्द्रादि अमर तन तेज नीर॥२७॥तहां विकसत मुख अपछरा एम । यह खिल्यो कमलनीबाग जेम ॥ इहि विधि देवागम भयो जान। अवतरे बनारस नगर थान॥२८॥ चन्द्रादि जोतिषी पंच जात । दश भेद भवनवासी विख्यात ॥ पुनि आठ जातके वान देव । सब आये इन्द्र समेत ऐव ॥ २९॥ निज निज बाहन चढ़ि सपरिवार । जिन जन्म महोच्छव हिये धार॥ तब पुरप्रदच्छना सुरन दीन । अतिहरपत उर जयकार कीन॥३०॥ वन वीथी मारग गगन रोक ।सब ठाड़े देवी देव थोक ॥ सब शक्रशची मिलि भूप गेह। आये घर आंगन भरो तेह ॥ ३१ ॥ तब इन्द्रबधू अति रंजमान । सो गई गुप्त जिनजन्मथान ॥ देखी जिनमात सपुत्त ताम । परदच्छन दै कीनो प्रनाम ॥ ३२ ॥ सुतराग रँगी सुखसेजमांझ । ज्यों बालक भानुसमेत सांझ॥कर जोरि जुगल सिर नाय नाय॥ थुति कीनी बहु जानै न माय॥३३॥सुखनींद रची तब शची तास । मायामय राख्यो पुत्र पास॥

करकमलन बालकरतन लीन । जिन कोटभानुछबि छीन कीन ॥ ३४ ॥ सुख उपजै जो प्रभु परस देह । कविवानीगोचर नाहिं तेह ॥ प्रभुको मुखवारिज देख देख । हरषै सुररानी उर विशेख ॥ ३५ ॥ वसु मंगल दरव विभूति सार ॥ दिशदिव्यकुमारी अग्रचार ॥ इहिविधि सौधर्मसुरेशनार ॥ आन्यों शिवकन्या वर कुमार ॥ ३६ ॥ देख्यो हरिबालकचंद जाम ॥ आनंदजलधि उर बढ्यो ताम ॥ ३७ ॥ शिरनाय इन्द्र निज बार बार ॥ थुति कीनी कर जुग शीस धार॥छबि देखि नृपति नाहिं होय लेश । तब सहसआंख कीनी सुरेश ॥ करि नमस्कार निजगोद लीन्ह । ईशान इन्द्र शिर छत्र दीन्ह ॥ ३८ ॥ तहाँ सनत्कमार महेन्द्र सोय ॥ ए चामर ढालैं इन्द्र दोय ॥ ब्रह्मादि सुरगवासी सुरेश । जय नंद वर्ध बोलैं विशेष॥३९॥नाचैं सुररमनी रूपखान । गंधर्व करैं जिनसुजसगान ॥ सुरबाजे बाजैं बहुप्रकार । कर धरहिं किन्नरी बीन सार ॥ ४० ॥ केई सुर श्रीजिनसुभग भेष ॥ देखैं भरि लोचन निर्निमेष॥ केई यों भाषैं सुरसमाज॥हम देवजन्मफल लह्यो आज ॥ ४१ ॥ केई शरधायुत भये देव । मिथ्यात महाविष वम्यो एव ॥ इस भांति चतुरविधि देवसंघ । सब चले जोतिषीपटल लंघ ॥ ४२ ॥ दोहा—जोजन सहस निन्यानवै, सुरगिरि शिखर उतंग । गये सकल सुरगन तहां, भूषणभूषित अंग ॥ ४३ ॥ चौपाई—

महामेरुके मस्तक भाग । पांडुकवन बहु धरै सुहाग । जोजनसहस जासु विस्तार । सुर चारन खग करैं विहार ॥ ४४ ॥ चहुँदिशि चार जिनालय तहां । सघन सासते तरुवर जहां ॥ मध्यचूलिका मुकट सरीस । सो उतंग जोजन चालीस ॥ ४५ ॥ बारह जोजन जड़ विस्तार । आठमध्य अर ऊपर चार ॥ जाके ऊपर रजकविमान । रोमांतर नरछेत्र प्रमान ॥ ४६ ॥ तिस ईशानादिशा शुभ थान । मनिमय शिला सासती जान ॥ पांडुक-नाम फटिक उनहार । आकृति अर्ध चन्द्रमाकार ॥ ४७ ॥ सौ जोजन आयाम अभंग । विस्तर आधी आठ उतंग ॥ सुरविद्याधर पूजत नित्त । भरतखण्ड जिन न्हौन पवित्त ॥ ४८ ॥ तहां हेमसिंहासन सार । रत्नजडत सो वलयाकार ॥ धनुष पांचसौ उन्नत जोय भूमिभाग विस्तीरन सोय ॥ ४९ ॥ ऊपर जास अर्ध विस्तार ॥ जाके तेज मिटै अँधियार तिसहीपर पदमासन साज । पूरवमुख थापे जिनराज ॥ ५० ॥ इस औसर सोहैं इमि ईश । मानो मेघ रतनागिरि शीश ॥ धुजा कलश दर्पन भृंगार । चमरछत्र सुप्रतिष्टक तार ॥५१॥ मंगल दर्व मनोहर जहां । धरे अनादि निधन ये तहां ॥ आसनदोय उभय दिश और । जुगलइन्द्र ठाड़े तिहिं ठौर ॥ ५२ ॥ चारों दिश चारों दिगपाल । जथाजोग जिन-मज्जन काल ॥ शची सुरेन्द्र अपछरा थोक । सब ठाड़े पांडुक वन रोक ॥ ५३ ॥ चौविधि

देव खड़े चहुँपास । जनम न्हौन देखन हुल्लास॥ कियो महामंडप हरि तहां । तीनलोक जन निवसैं जहां ॥ ५४ ॥ कल्पकुसुममाला मनहार । लटकैं मधुप करैं झंकार ॥ सुर वा-जित्र बजैं बहुभाय । सुरभि सुगंध रही महकाय ॥ ५५ ॥ मंगल मिल गावैं सब शची। नाचैं सुर वनिता रस रची॥ तब मज्जन आरंभ विशेष । उद्यम कियो प्रथम अमरेश॥५६॥ दोहा—तहां कुबेर रतन खची, रची पैंडका पंत । मेरु शिखरसों सोहिये, छीरोदधि पर जंत ॥५७॥ सुर श्रेणी सोपान पथ, पंचम सागर जाय । भर लाई कंचन कलश, चंदन चरचित काय ॥ ५८ ॥ जोजन एक प्रमानमुख, वसु जोजन गंभीर । यह मरजादा कलशकी, जिनशासनमें बीर ॥ ५९ ॥ मुकतमाल मंडित लसैं, कंचन कलश महंत ॥ नभवनिताके उरज ये, यों अति शोभावंत ॥ ६० ॥ चौपई—सहस भुजा सुरपति तब करी । भूषनभूषित शोभा भरी ॥ इस औसर हरि सोहैं एम । भूषनांग सुरतरुवर जेम ॥ ६१॥ कलश हाथ हरि लीने जाम । भाजनांग सम शोभा ताम । तीन बार की-नो जयकार । कलशोद्धरन मंत्रउच्चार ॥ ६२ ॥ इहिंविधि श्रीसौधर्माधीश । ढाले कलश स्वामिके शीश ॥ तब सब इन्द्र कियो जिनन्हौन । अतुल उछाव बढ्यौ जगभौन॥६३॥ महा धार जिनमस्तक ढरी । मानो नभगंगा अवतरी ॥ मुदित असंख अमरगन

तबै । जैजैकार कियो मिलि सबै ॥ ६४ ॥ उपज्यो अति कोलाहल सार । दशादिश वधिर भई तिहिं बार ॥ भयो असम औसर इहिं भाय । वचनद्धार वरनो नहिं जाय ॥ ६५ ॥ जाधारासों गिरिशिखर, खंड खंड हो जाय ॥ सो धारा जिनदेहपै, फूलकली सम थाय ॥ ६६ ॥ अप्रमान वीरजधनी, तीर्थंकर प्रभु होय । तातें तिनकी शक्तिको, उपमा लगै न कोय ॥ ६७ ॥ नीलवरन प्रभु देहपर, कलश नीरछवि एम । नीलाचलसिर हेमके, बादल वरषैं जेम॥६८॥ चली न्हौनके नीरकी, उछल छटा नभमाहिं ॥ स्वामिसंग अघविन भई, क्यों नहिं ऊरधजाहिं ॥ ६९ ॥ न्हौनछटा तिरछी भई, तिन यह उपमा धार । दिगवनिता मुख सोहियै, करनफूल उनहार ॥ ७० ॥ सोरठा—जिनतनपरस पवित्त, भई सकल जगशुचिकरन ॥ सो धारा मम नित्त, पाप हरो पावन करो ॥७१॥ चौपाई—यों सुरेन्द्र मज्जनविधि ठान । फिर कीनों गंधोदकन्हान ॥ सो जल लेय विनयविस्तरी । शांतपाठ पढ़ि पूजा करी ॥ ७२ ॥ शक्र शची सुर आनँद भरे । यथाजोग सब कारज करे॥परदच्छन दीनी बहुभाय । बारंबार नये सिरनाय॥७३॥ हरिगीति—सौधर्मपति अभिषेक कारन,न्हौनपीठ सुदंसनो । गंधर्व गायनि निरतकारक, अपछरा जनशंसनो ॥ पंचम पयोनिध न्हौन कुंड,असंख सुर सेवक जहां॥ तिस जन्मम-

गलकी बड़ाई, कहन समरथ बुध कहां ॥ ७४ ॥ चौपाई--जन्महौनविधि पूरन भई । सकल सुरासुर देवनि ठई ॥ अब इन्द्रानी जिनवर अंग । निर्जल कियो वसन शुचिसंग ॥७५॥ कुंकुमादिलेपन बहु लिये । प्रभुके देह विलेपन किये ॥ इहि शोभा इस औसरमांझ । किधौं नीलगिरि फूली सांझ ॥७६ ॥ और सिंगार सकल सह कियो । तिलक त्रिलोकनाथके दियो ॥ मनिमय मुकुट शची सिर धरो । चूड़ामनि माथे विस्तरो ॥७७॥ लोचनअंजन दियो अनूप । सहजस्वामिदृगअंजितरूप ॥ मनिकुंडल कानन विस्तरे । किधौं चंद सूरज अवतरे ॥ ७८ ॥ कंठ कंठिका मोतीहार । मुक्तिरमणि झूलाउनहार ॥ भुजभूषणभूषित भुज करी । कटक मुद्रिका शोभित खरी ॥ ७९ ॥ कटिभूषन कीनो कटि थान । मनिमय छुद्रघंटिका वान ॥ पग नेवर पहराये सार ॥ जिनमें रतन झलक झंकार ॥ ८० ॥ दोहा--अंगअंग आभरनजुत, यह उपमा तिहिं काल ॥ सुरतरुसम प्रभु सोहिये, भूषनभूपित डाल ॥ ८१ ॥ चौपाई--तब इन्द्रादि लगे थुतिकरन । जय जिनवर सब आरत हरन॥ त्रिभुवनभवन दीप उनहार । धन्य देव तेरो अवतार ॥ ८२ ॥ जय श्रीअश्वसेनकुलचंद । वामानंदन जोति अमंद ॥ सुखसागरके वर्धनहार । सब जग श्रेयशांतिदातार ॥ ८३ ॥ तुम जग भ्रमना-

शन अवतरे। हमसे दास महासुख भरे॥ विन रविउदय तिमिर क्यों जाय। कैसे कमलवाग विकसाय॥ ८४॥ मिथ्यामत रजनी अतिघोर। मूसैं धर्म कुलिंगी चोर॥ जो प्रभुजन्मप्रभात न थाय। तो किमि प्रजा वसै सुखपाय॥ ८५॥ ये अनादि संसारी जीव। विलखैं भवगद ग्रसे अतीव॥ सो दुखमेंटन दयानिधान। राजवैद जनमें भगवान॥ ८६॥ भरमकूपवरती बहु लोय। काढ़नहार तिन्हैं नहिं कोय॥ श्रीमुखवचनलेज-बल धार। अब उद्धार लहैं निरधार॥८७॥आप परमपावन परमेश। औरनको शुचि करहु विशेष॥ ज्यों शशि सेत प्रभा तन धरै। सेत सरूप सबनको करै॥ ८८॥ विन स्नान तुम निर्मल नित्त। अंतर बाहज सहज पवित्त॥ हम मज्जनविधि कीनी आज निजपवित्रकारन जिनराज॥ ८९॥ तुम जगपति देवनके देव। तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव॥ तुम जगरक्षक तुम जगतात। तुम विनकारन बंधु विख्यात॥९०॥ तुम गुनसागर अगमअपार। थुतिकर कौन जाय जन पार॥ सूच्छम ज्ञानी मुनि नाहिं तरैं। हमसे मंद कहा बल धरैं॥ ९१॥ नमो देव अशरन आधार। नमो सर्व अतिशयभंडार॥ नमो सकल शिवसंपतिकरन। नमो नमो जिनतारनतरन॥ ९२॥

दोहा— इहि विधि इन्द्रादिक अमर, सुरपदवी फल लेय। जन्म न्हौन विधि कर

चले, मानो निज शुभ श्रेय॥९३॥ जन्ममहोच्छव देख कर, सुरपतिकी परतीत । बहु सुर सरधानी भये, ताजि सरधा विपरीत॥९४॥चौपई—तब सब देव जनमपुरथान । पूरवली विधि कियो पयान॥ चढ़्यो इन्द्र ऐरावत शीश । गोद लिये त्रिभुवनपतिईश ॥९५॥ पूरववत दुंदभि धुनिगाजा॥वे ही गीत निरत सब साज॥आये जय जय करत अशेष । पिताभवन कीनों परवेश ॥ ९६ ॥ मानिमय आंगनमें हरि आप । हेम सिंहासनपर प्रभु थाप॥ अश्वसेनभूपति तिहिं वार । देख्यो नंदन नयन पसार ॥ ९७ ॥ तेजपुंज निरुपम छबि देह । रोमांचित तन बढ़्यो सनेह ॥ माया नींद शची तब हरी । जिनजननी जागी सुखभरी ॥ ९८ ॥ भूषनभूषित कांति विशाल । भर लोयन निरख्यो जिनबाल ॥ अति प्रमोद उर उमग्यो तबै । पूरन भये मनोरथ सबै ॥ ९९ ॥ तब सुरेश रोमांचित काय । मात पिता पूजे मन लाय ॥ भूषन वसन भेंट बहु धरी । हाथ जोर जुग थुति विस्तरी ॥ १०० ॥ तुम जगमें उदयाचल भूप । पूरव दिशि देवी शुचिरूप ॥ उदय भये त्रिभुवनरवि जहां । तुम महिमा वरनन बुधि कहां ॥ १०१ ॥ धानि धानि अश्वसेन भूपाल । जिनके जगगुरु जनम्यो बाल ॥ कीरतबेल अधिक तुम बढी । तीनलोकमंडप शिर चढी ॥ १०२ ॥ धानि वामादेवी जगमाय । जिन जायो नंदन जगराय ॥ तीनलोक-

शन अवतरे। हमसे दास महासुख भरे॥ विन रविउदय तिमिर क्यों जाय। कैसे कमलराग विकसाय॥ ८४॥ मिथ्यामत रजनी अतिघोर। मूसैं धर्म कुलिंगी चोर॥ जो प्रभुजन्मप्रभात न थाय। तो किमि प्रजा वसै सुखपाय॥ ८५॥ ये अनादि संसारी जीव। विलखैं भवगद ग्रसे अतीव॥ सो दुखमेंटन दयानिधान। राजवैद जनमें भगवान॥ ८६॥ भरमकूपवरती बहु लोय। काढ़नहार तिन्हैं नाहिं कोय॥ श्रीमुखवचनलेज-बल धार। अब उद्धार लहैं निरधार॥८७॥आप परमपावन परमेश। औरनको शुचि करहु विशेष॥ ज्यों शशि सेत प्रभा तन धरै। सेत सरूप सबनको करै॥ ८८॥ विन स्नान तुम निर्मल नित्त। अंतर बाहज सहज पवित्त॥ हम मज्जनविधि कीनी आज निजपवित्रकारन जिनराज॥ ८९॥ तुम जगपति देवनके देव। तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव॥ तुम जगरक्षक तुम जगतात। तुम विनकारन बंधु विख्यात॥९०॥ तुम गुनसागर अगमअपार। थुतिकर कौन जाय जन पार॥ सूच्छम ज्ञानी मुनि नाहिं तरैं। हमसे मंद कहा बल धरैं॥ ९१॥ नमो देव अशरन आधार। नमो सर्व अतिशयभंडार॥ नमो सकल शिवसंपतिकरन। नमो नमो जिनतारनतरन॥ ९२॥

दोहा— इहि विधि इन्द्रादिक अमर, सुरपदवी फल लेय। जन्म न्हौन विधि कर

चले, मानो निज शुभ श्रेय॥९३॥ जन्ममहोच्छव देख कर, सुरपतिकी परतीत । बहु सुर सरधानी भये, ताजि सरधा विपरीत॥९४॥चौपई—तब सब देव जनमपुरथान । पूरबली विधि कियो पयान॥ चढ़्यो इन्द्र ऐरावत शीश । गोद लिये त्रिभुवनपतिईश॥९५॥ पूरववत दुंदाभि धुनिगाजावे ही गीत निरत सब साज॥आये जय जय करत अशेष । पिताभवन कीनों परवेश॥ ९६ ॥ मनिमय आंगनमें हरि आप । हेम सिंहासनपर प्रभु थाप॥ अश्वसेनभूपति तिहिं वार । देख्यो नंदन नयन पसार ॥ ९७ ॥ तेजपुंज निरुपम छबि देह । रोमांचित तन बढ़्यो सनेह ॥ माया नींद शची तब हरी । जिनजननी जागी सुखभरी ॥ ९८ ॥ भूषनभूषित कांति विशाल । भर लोयन निरख्यो जिनबाल ॥ अति प्रमोद उर उमग्यो तबै । पूरन भये मनोरथ सबै ॥ ९९ ॥ तब सुरेश रोमांचित काय । मात पिता पूजे मन लाय ॥ भूषन वसन भेंट बहु धरी । हाथ जोर जुग थुति विस्तरी ॥ १०० ॥ तुम जगमें उदयाचल भूप । पूरव दिशि देवी शुचिरूप ॥ उदय भये त्रिभुवनरवि जहां । तुम महिमा वरनन बुधि कहां ॥ १०१ ॥ धानि धानि अश्वसेन भूपाल । जिनके जगगुरु जनम्यो बाल ॥ कीरतबेल अधिक तुम बढी । तीनलोकमंडप शिर चढी ॥ १०२ ॥ धानि वामादेवी जगमाय । जिन जायो नंदन जगराय ॥ तीनलोक-

तियसृष्टिसिंगार। धनि जननी तेरो अवतार ॥ १०३ ॥ तुम सम जगमें और न आन। जिनदेवल सम पूज्यप्रधान ॥ यों थुतिकरि हरि हिये प्रमोद। बाल दिवाकर दीनों गोद ॥ १०४ ॥ कही सकल पूरवली कथा। मेरु महोच्छव कीनो जथा ॥ तब निज नगरविषैं भूपाल। जन्म उछाह कियो तिहिंकाल ॥ १०५ ॥ हरषत सब पुरजन परिवार। घर घर भये मंगलाचार ॥ घर घर कामिनि गावैं गीत। घर घर होंय निरत संगीत ॥१०६॥ मंगलीक बाजे बहु भेव। बाजन लगे सकल सुखदेव ॥ श्रीजिनभवन न्हौन विस्तार ॥ किये सकल मंगल आचार ॥ १०७॥ छिरक्यो चंदन नगरमँझार ॥ रतन साथिया धरे संवार ॥ जाचक दान सुजन सनमान। जथा जोग सब रीति विधान ॥ १०८ ॥ इहि विधि अश्वसेन नरनाह। कीनो पुत्र जन्मउच्छाह ॥ पूरनआश भये सब लोय। दुखी दीन दीखै नाहिं कोय ॥१०९॥ दोहा—उदय भयो जिनचंद्रमा, कुलनभ-तिलक महंत ॥ सुखसमुद्रबेला तजी, बढ्यो लोक परजंत ॥११०॥—तब बहु देवनसंग विशेष। आनँद नाटक ठयो सुरेश ॥ करैं गान गंधर्व समाज। समयजोग सब बाजैसाज ॥ १११ ॥ देखैं अश्वसेन नरनाथ। पुत्रसहित सब परिजन साथ ॥ प्रथमरूप नव भव दरशाय। पहुपांजुलि खेपी सुरराय ॥ ११२ ॥ तांडव नाम निरत आरंभ। कियो

जगतजन करन अचंभ ॥ नट सरूप धारयो अमरेश । रंगभूमि कीनो परवेश ॥ ११३ ॥ मंगलीक सिंगार सँवार । सब संगीत वेद अनुसार ॥ ताल मान विधिसहित सुभाय । रंग धरापर फेरै पाय ॥ ११४ ॥ करें कुसुमवरषा नभ देव । देखि इन्द्रकी भक्ति सुभेव ॥ वीना मुरज बांसली ताल । बाजे गेह गीतकी चाल ॥ ११५ ॥ करैं किन्नरी मंगलपाठ । वरियां जोग बन्यो सब ठाठ ॥ नाचै इन्द्र भमैं बहु भाय । मोरैं हाथ कंठ कटि पाय॥११६॥ अद्भुत तांडवरस तिहिं बार । दरसावै जन अचरजकार ॥ सहस भुजा हरि कीनी तबै । भूषनभूषित सोहैं सबै ॥ ११७ ॥ धारत चरन चपल अति चलैं । पहुमी कांपै गिरिवर हलैं ॥ भमैं मुकुट चकफेरी लेत । ताकी रतनप्रभा छबि देत ॥ ११८ ॥ बलयाकृति है झलकै सोय । चक्राकार अगनि जिमि होय॥ छिनमें एक छिनक बहुरूप । छिन सूच्छम छिन थूलसरूप॥ ११९॥ छिनमें निकट दिखाई देय । छिनमें दूर देह धर लेय ॥ छिनआकाशमाहिं संचरै । छिनमें निरत भूमिपर करै ॥ १२० ॥ छिन छूवै तारावलि जाय । छिनक चन्दसों परसै काय ॥ इन्द्रजालवत यों अमरेश । दरसाई निज रिद्धिविशेष ॥ १२१ ॥ हाथ अंगुलिनपै अपछरा । नाचैं रूप रतनकी धरा॥ अंग अंग भूषन झलकाहिं । विकसत लोचन मुखमुसकाहिं ॥ १२२ ॥ निरत भेदविधि धारै पांव । करै

कटाच्छ दिखावै भाव ॥ बहुविधिकला प्रकाशै सार । सुरकामिनि दामिनिउनहार ॥ १२३ ॥ तिनसंजुत हरि सुरतरु एम । कलपलता गन बेढ़्यो जेम ॥ यों नाटकविधि ठानअनूप । तिहुंजग शक्र किये सुखरूप ॥ १२४ ॥ स्वामिजनम अतिशय परताप । जिनवरपिता सभापति आप ॥ इन्द्र महानट नाचै जहां। तिस अवसर वरनन बुधि कहां ॥ १२५ ॥ तब तहां मातापिताकी साख । पारस नाम सकल सुरभाख ॥ राखि सुरासुर सेवा जोग । चले देव सब साधि नियोग ॥१२६॥ दोहा—इहिविधि इन्द्रादिक अमर, जन्मकल्यानकठान । बहुविधि पुन्य उपायकै, पहुँचे निज निज थान ॥ १२७ ॥ हरगीति—इन्द्रादि जन्मस्नान जिनको, करन कनकाचल चढ़े । गंधर्व देवन सुयश गायो, अपछरा मंगल पढ़े ॥ इहिविधि सुरासुर निज नियोगै, सकल सेवाविधि ठई । ते पासप्रभु मुझ आस पुरवो, शरन सेवकने लई ॥ १२८ ॥

इति श्रीमत्पार्श्वपुराणभाषायां जिनेन्द्रजन्मोत्सववर्णनं नाम षष्ठोऽधिकारः ।

अथ सप्तमोऽधिकारः ।

दोहा—पारस प्रभु तजि औरको, जे नर पूजनजाहिं ॥ कलपवृच्छको छांड़िकै, बैठैं थूहर छाहिं ॥१॥ चौपई—अब जिन बालचन्द्रमा बढ़ै । कोमल हांस किरनमुख कढ़ै ॥

छिन छिन तात मात मन हरै। सुखसमुद्र दिन दिन विस्तरै ॥ २ ॥ अम्रत इन्द्र अंगूठे देय। वही पोष पयपान न लेय ॥ देवी धाय हरष मन धरै । मज्जनमंडन विधि सब करै ॥ ३ ॥ केई मनिभूषन पहराय । करैं अलंकृत प्रभुकी काय ॥ केई कामिनि करैं सिंगार। श्रीमुखचंद्र निहार निहार ॥ ४ ॥ केई रहसवती तिय आय। हस्त कमलसौं लेंय उठाय ॥ मनिमय आंगनमांझ अनूप। विचरैं जिनपति बालसरूप ॥ ५ ॥ बहुविधि देवकुमार मनोग। बालकरूप भये वययोग ॥ घुटियां गमन करैं तिनसाथ। ज्यों नछत्र-गनमें निशि नाथ ॥ ६ ॥ कबहीं सैनासन सोवन्त । ऊपर दिढ़ जिन यों जोवन्त ॥ अजौं मुक्ति मो केतक परैं। मानो यह शंका मन धरैं ॥ ७ ॥ कबहीं पुहुमीपै जिनराय। कंपित चरन ठवैं इहि भाय ॥ सहै कि ना धरती मुझभार। शंकै उर उपमा यह धार॥८॥ कबहीं स्वामि उझकि उठि चलैं । विकसत मुख सब दुखको दलैं ॥ बांधें मुठी अटपटे पाँय। कैसे वह छबि वरनी जाय ॥ ९ ॥ कबहीं रतन भीतमें रूप। झलकै ताहि गहैं जगभूप ॥ जिनसों जिन न मिलैं सर्वथा। करत किधौं कहवत यह वृथा ॥१०॥ कबहीं रतनरेत कर लेत। करैं केलि सुरकुमरसमेत ॥ कबहिं माय विन रुदन करेय। देखैं फेर विहँसि हँस देय ॥ ११ ॥ कबहीं छोड़ि शचीकी गोद । जननी अंक जायँ मनमोद ॥

मातासों माने अति प्रीति । बाल अवस्थाकी यह रीति ॥ १२ ॥ यों जिन बालक्रीडा करें । त्रिभुवनजनमनमानिक हरें ॥ क्रमसों बालभारती नाम । श्रीमुखकमल लसी अभिराम ॥ १३ ॥ अनुक्रम भई अंगवढ़वार । तब त्रिभुवनपति भये कुमार ॥ निरुपम-कांतिकला विज्ञान । जोवनरूपअतुलगुणथान ॥१४॥ मति श्रुति अवधि ज्ञानवर देव । जानें सकल चराचर भेव ॥ सोमसुभाव सहज उपशंत । निर्मल क्षायकदर्शनवंत ॥१५॥ इहिविधि आठवर्षके भये । तब प्रभु आप अनुव्रत लिये ॥ देवकुमार रहें सँग नित्त । ते छिन छिन रंजें जिन चित्त ॥१६॥कबहीं गज तुरंग तन धरें । तिनपै चढ़ि प्रभु जनमन हरें ॥ कबहीं हंस मोर बन जाहिं । तिनसों जगपति केलि कराहिं ॥ १७ ॥ कबहीं जल-क्रीड़ाथल गयें । कबहीं वनविहारभू रमें ॥ कबहीं करें किन्नरीगान । सो प्रभु सुयश सुनें निज कान ॥ १८ ॥ कबहीं निरत ठवें सुन नार । देखें जिनलोचन सुखकार ॥ कबहीं काव्यकथारस ठान । करें गोठ जिन बुधि बलवान ॥ १९ ॥ बिना सिखाये बिन अभ्यास । सब विद्या मन कलानिवास ॥ यों सुखअनुभव करत महान । भये पास जिन जोवनवान ॥ २० ॥ दोहा—संपूरन जोवन समय, प्रभुतन सोहै एम ॥ सहज मनोहर चांदकी, शरद समय छवि जेम ॥२१॥ चौपई—प्रभुके अंग पसेव न होय । सहज सदा

मलवराजित सोय ॥ उज्जलवरन रुधिर जिमि खीर । सुसमचतुर संठान शरीर ॥ २२ ॥
प्रथम सारसंहनन सरूप । इन्द्र चन्द्र मनहरन अनूप ॥ विनाहेत तन सहज सुवास ।
प्रियहितवचन मधुर सुख जास ॥ २३ ॥ अतुलदेह बल धरत महान । सहस अठोतर
लच्छनवान ॥ तिनके नाम लिखों कछु जोय । पढत सुनत सुखसंपति होय ॥ २४ ॥
हरिगीत—श्रीवृक्ष शख सरोज स्वास्तिक, शुक्र चक्र सरोवरो । चामर सिंहासन छत्र तोरन,
तुरगपति नारी नरो ॥ सायर दिवायर कलपबेली, कामधेनु धुजा करी ॥ वरवज्रवान
कमान कमला, कलश कच्छप केहरी ॥ २५ ॥ गंगा गऊपति गरुड़ गोपुर, बेणु बीणा
बीजना । जुगमीन महल मृदंगमाला, रतन दीप दिपै घना ॥ नागेन्द्र भुवन विमान
अँकुश, विरछ सिद्धारथ सही । भूषण पटम्बर हट्ट हाटक, चन्द्रचूड़ामणि कही ॥ २६ ॥
जम्बू तरोवर नगर सूवस, बाग जनमनभावना । नौनिधि नछत्र सुमेरु सारद, साल खेत
सुहावना ॥ ग्रह मंगलाष्टक प्रातिहारज, प्रमुख और विराजहीं ॥ परमितअठोतर सहस
प्रभुके, अंग लच्छन छाजहीं ॥२७॥ अंतर अनंती अतुल महिमा, कथन दूर रहो कहीं ।
बहिरंग गुनथुति करन जगमें, शक्रसे समरथ नहीं ॥ अब और जनकी कौन गिनती,
दीन पार न पावना । परपासप्रभुकी सुयशमाला, पहिरि दास कहावना ॥ २८ ॥

दोहा—सहस अठोतर लछन ये, शोभित जिनवर देह । किधौं कलपतरुराजके, कुसुम विराजत येह ॥ २९ ॥ चौपई—शुभ परमानूमय जिन अंग । नीलवरन नौ हाथ उतंग ॥ छवि वरनत नाहिं पावैं ओर । त्रिभुवनजनमनमानिकचोर ॥ ३० ॥ शतसंवत्सर आव प्रमान । अतुल असाधारन गुनथान ॥ शत्रुमित्रऊपर समभाव । दयासरोवर सोम सुभाव ॥ ३१ ॥ सागरसों प्रभु अति गंभीर । मेरुशिखरसों अधिकै धीर ॥ कांति देखि लाजै मिरगांक । तेज विलोकि छिपै रवि शंक ॥ ३२ ॥ कलपविरछसों अधिक उदार । तिहुँजग आशा पूरनहार ॥ यों जिनगुनको उपमा कहीं । तीनकाल त्रिभुवनमें नहीं ॥ ३३ ॥ दोहा—यों सुख निवसत पास जिन, सेवत कमला पाय । सोलह वरष प्रमान प्रभु, भये जगत सुखदाय ॥ ३४ ॥ सभासिंहासन एक दिन, बैठे सहज जिनेन्द्र ॥ सुरनरमें प्रभु यों दिपैं, ज्यों उड़गनमें चन्द्र ॥ ३५ ॥ अश्वसेन भूपाल तब, बोले अवसर पाय । नेहसलिल भीजे वचन, सुनो कुमर जगराय ॥ ३६ ॥ एक राजकन्या वरो, करो उचित व्यवहार ॥ वंशवेल आगे चलै, सुख पावै परिवार ॥ ३७ ॥ नाभिराजकी आश ज्यों, भरी प्रथम अवतार ॥ तथा हमारी कामना, पूरन करो कुमार ॥ ३८ ॥ पितावचन सुनि प्रभु दियो, प्रतिउत्तर तिहिं

वार ॥ रिषभदेव सम मैं नहीं, देखो हिये विचार ॥ ३९ ॥ मेरी सब सौ वर्ष थिति, सोलह भये वितीत । तीस वर्ष संजम समय, फिर मत कहो पुनीत ॥ ४० ॥ अलपकालथिति अलपसुख, अलप प्रयोजनकाज । कौन उपद्रव सग्रहै, समुझि देख नरराज ॥ ४१ ॥ सुन नरेन्द्र लोचन भरे, रहे वदन विलखाय । पुत्रव्याहवर्जनवचन, किसे नहीं दुखदाय ॥ ४२ ॥ चौपई—इहिंविधि मंदराग जिनराय । निवसैं सबजीवनसुखदाय ॥ पूरवकथित कमठचर सीह । पाप करत मानी नहिं चोह ॥४३ ॥ मुनिहत्यावश दुर्गति गयो । पंचमनरकवास सो लयो ॥ सत्रहजलधि तहां दुख सहे । वचन द्वार जो जाहिं न कहे ॥ ४४ ॥ थिति पूरन कर छोड़ी ठौर । सागर तीन भर्मो फिर और ॥ पशुगतिमाहिं विपत बहु भरी । त्रसथावरकी काया धरी ॥ ४५ ॥ इहिविधि भयो पाप अवसान । काहू जन्मक्रिया शुभठान ॥ महीपालपुर सोहै जहाँ । महीपालनृप उपज्यो तहां ॥ ४६ ॥ पारसप्रभुकी वामा माय । इनको पिता भयो यह राय ॥ पटरानीके प्रानवियोग । उपज्यो विरह बढ़्यो चित सोग॥४७॥ तपसी भेष धरो दुखमान । पंचागनि साधै वनथान ॥ सीसजटा मृगछाला संग । भसम पीस लाई सब अंग ॥४८॥ भ्रमत बनारसिके उद्यान । आयो कष्ट करत विनज्ञान ॥ इहि अवसर श्रीपार्श्वकुमार ।

गये सहज वन करन विहार ॥४९॥ राजपुत्र बहु सुरगन साथ। गज आरूढ़ दिपैं जिन-
नाथ ॥ कर सुछंद वनकेलि अनूप। चले नगरको आनँदरूप॥५०॥ देख्यो मगमें जननी
तात। तपै पंचपावक तप गात ॥ सो समीप प्रभुको अविलोय। चिंतै चित रोषातुर होय
॥५१॥ मैं तपसी कुलवंत महंत। जननी पिता पूज सब भंत ॥ अहो कुमरके यह अभि-
मान। विनय प्रनाम करैं नहिं आन ॥५२॥ इतने ईंधन कारन जान। लकड़ी चीरन
लग्यो अयान ॥ हाथ कुल्हाड़ी लीनी जबै। हितमितवचन चये प्रभु तबै ॥५३॥
भो तपसी यह काठ न चीर। यामें जुगल नाग हैं बीर॥ सुनि कठोर बोल्यो रिस आन।
भो बालक तुम ऐसो ज्ञान॥५४॥हरिहर ब्रह्मा तुम ही भये। सकलचराचरज्ञाता ठये ॥ मनै
करत उद्धत अविचार। चीरो काठ न लाई बार ॥५५॥ ततखिन खंड भये जुगजीव।
जैनी विन सब अदय अतीव ॥ दयासरोवर जिन तब कहै। तपसी वृथा गरब तू बहै
॥ ५६ ॥ ज्ञान विना नित काया कसै। करुणा तेरे उर नहिं बसै ॥ तब शठ रोषवचन
फिर चयो। जननी जनकर तपसी भयो ॥ ५७ ॥ करै न मदवश विनय विधान।
और उलट खंडै मुझ आन ॥ पंच अगनि साधू तन दाह। रहूं एकपद ऊरध बाँह ॥५८॥
भूख प्यास बाधा सब सहूं। सूखे पत्र पारनै गहूं॥ ज्ञानहीन तप क्यों उच्चरै। क्यों कुमार

मुझ निंदा करै ॥ ५९ ॥ तब प्रभुवचन कहै हितकार । तुझ तपमें हिंसाअघभार ॥ छहों कायके जीव अनेक । नाश होंहिं नित नाहिं विवेक ॥ ६० ॥ जहां जीववध होय लगार । तहां पाप उपजै निरधार ॥ पाप सही दुर्गति दुख देह । यातें दयाहीन तप येह ॥ ६१ ॥ ज्ञान विना सब कायक्लेश । उत्तम फलदायक नहिं लेश ॥ जैसे तुस कंडन कनछार । यों अजान तप अफल असार ॥ ६२ ॥ अंधपुरुष वनदौमें दहै । दौर मरै मारग नहिं लहैं ॥ त्यों अजान उद्यम करि पचै । भवदावानलसों नहिं बचै ॥ ६३ ॥ ऐसे ही किरिया विन ज्ञान । सो भी फलदायक नहिं जान ॥ तथा पंगु लोचनबल धरै । उद्यम विन दावानल जरै ॥ ६४ ॥ तातैं ज्ञानसहित आचार । निहचै वांछितफलदातार ॥ इहिविधि जिनमतके अनुसार । करि उत्तम तप यह हठ छार ॥ ६५ ॥ मैं तुझ वचन कहे हितकार । तू अपने उर देखि विचार ॥ भली लगै सोई करि मित्त । वृथा मलीन करै मति चित्त ॥ ६६ ॥ दोहा—नाग जुगल सुनि जिनवचन, क्रूरजीवअति निंद ॥ देह त्यागि ततखिन भये, पदमावती धानिंद ॥ ६७ ॥ नाग जुगलके भागकी, महिमा कही न जाय । जिनदर्शन प्रापति भई, मरन समय सुखदाय ॥ ६८ ॥ चौपई—घर आये श्री पार्श्वजिनंद । सुरनरनेत्रकमलनीचन्द ॥ समयपाय तपसी तजि देह । भयो जो-

तिषी संवर तेह ॥ ६९ ॥ देखो जगमें तपपरभाव । ज्ञान विना बांधी सुरआव ॥ जे नर करैं जैनतप सार । तिन्हैं कहा दुर्लभ संसार ॥७०॥ स्वामी मगन सुखोदधिमाहिं । हर्ष विनोद करत दिन जाहिं । प्रभुके इष्ट वियोग न होय। सोगसँजोग न कबहीं कोय॥७१॥ वायपित्तकफजनित विकार । सुपनै होय न सोच विचार ॥ जरा न व्यापै तेज न जाय । ना मुखकमल कभी कुम्हलाय ॥ ७२ ॥ होहि नहीं दुखकारन आन । पुन्यउदधिवेला भगवान ॥ यों सुखभोग करत दिन गये । तब जिन तीसवर्षके भये॥७३॥ नृप जयसेन अयोध्या धनी । भक्ति प्रीत प्रभुसों आति घनी॥तुरगादिक बहु वस्तु अनूप । पठई विनय वचन कहि भूप॥७४॥राजदूत चलि आयो तहां। सभा थान जिन बैठे जहां ॥ हेमासनपर सोहैं एम । हिमगिरिशिखर श्यामवन जेम ॥७५॥ देखि दूत रोमांचित भयो । बहुविधि चरन कमलको नयो॥मान्यो सफलजन्म निज सार। त्रिभुवनपति परतच्छ निहार॥७६॥ धरी भेंट जो राजा दई । विनय प्रनाम वीनती चई ॥ तब पूँछै तहां त्रिभुवनधनी। संपति नगर अजोध्यातनी ॥७७॥ कहै दूत कर जुग सिर धार । वरनै तीर्थंकर अवतार ॥ मोख गये वरने तिहिंठाम । सुनि स्वामी चिंतै उर ताम ॥ ७८ ॥ बेलीचाल— सुनि दूत वचन वैरागे । निज मन प्रभु सोचन लागे ॥ मैं इन्द्रासन सुख कीने । लोकोत्तम भोग न-

वीने ॥ ७९ ॥ ॥ तब तृपति भई तहां नाहीं । क्या होय मनुष पदमाहीं ॥ जो सागरके जलसेती । न बुझी तिषना तिस एती ॥ ८० ॥ सो डाभअनीके पानी । पीवत अ र कैसे जानी ॥ ईंधनसों आगि न धापै । नदियों नहिं समुद समापैं ॥ ८१ ॥ यों भोगविषै अतिभारी । तृपतै न कभी तनधारी॥जो अधिक उदय यह आवै । तौ अधिकी चाह बढ़ावै ॥ ८२ ॥ जो इनसों तृपति विचारै । सो वैसानर घृत डारै ॥ इन सेवत जो सुख पावै । सो आकौं आंब उम्हावै ॥ ८३ ॥ ये भीम भुजंग सरीखे । भ्रम भाव उदय शुभदीखे ॥ चाखतहीके सुख मीठे । परिपाक समय कटु दीठे॥ ८४ ॥ ज्यों खाय धतूरा कोई । देखै सब कंचन सोई ॥ धिक ये इन्द्री सुख ऐसे । विषबेल लगे फल जैसे ॥ ८५ ॥ इनही वश जीव अनादी । भव भाँवर भ्रमत सवादी ॥ इन ही वश सीख न मानै । नाना विधि पातक ठानै ॥ ८६ ॥ थिर जंगम जीव सँघारै । इनके वश झूठ उचारै ॥ पर चोरीसें चित लावै । परतिय सँग शील गमावै ॥ ८७ ॥ परिग्रह तिस्ना विस्तारै । आरंभ उपाधि विचारै ॥ इत्यादि अनर्थ अलेखै । करि घोरनरक दुख देखै ॥८८॥ ये ही सुखपर्वतकेरे । जग फोरन वज्र बड़ेरे ॥ ये ही सबदोषभँडारे । धन धर्म चुरावनहारे ॥ ८९ ॥ मोही जन मोहैं योंहीं । ये आदर जोग न क्यों हीं॥ इनसों ममता तज दीजे । पर त्यागत ढील

न कीजे ॥ ९० ॥ सामान पुरुष जग जैसे । हम खोये ये दिन ऐसे ॥ संयम विन काल गमायो । कछु लेखेमें नहिं लायो ॥ ९१ ॥ ममतावश तप नाहिं लीनो । यह कारजजोग न कीनो ॥ अब खाली ढील न कीजै । चारित चिंतामणि लीजै ॥ ९२ ॥ दोहा— भोगविमुख जिनराज इमि, सुधि कीनी शिव थान । भावैं बारहभावना, उदासीन हितदान ॥ ९३ ॥ चौपई—द्रव्य सुभाव विना जगमाहिं । पर ये रूप कछु थिरनाहिं ॥ तनधन आदिक दीखजेह । कालअगनि सब ईंधन तेह ॥ ९४ ॥ भववनभ्रमत निरंतरजीव । याहि न कोई शरन सदीव । व्योहारै परमेठी जाप । निहचै शरन आपको आप ॥ ९५ ॥ सूर कहावे जो सिर देय । खेत तजे सो अपयश लेय ॥ इस अनुसार जगतकी रीत । सब असार सबही विपरीत ॥ ९६ ॥ तीनकाल इस त्रिभुवनमाहिं । जीव संघाती कोई नाहिं ॥ एकाकी सुख दुख सब सहैं । पाप पुन्य करनीफल लहैं ॥ ९७ ॥ जितने जग संजोगी भाव । ते सब जियसों भिन्न सुभाव ॥ नितसंगी तन ही पर सोय । पुत्र सुजन पर क्यों नहि होय ॥ ९८ ॥ अशुचिअस्थि पिंजर तन येह । चाम वसन वेढ़ो विनगेह ॥ चेतनचिरा तहां नित रहै । सो विन ज्ञान गिलानि न गहै ॥ ९९ ॥ मिथ्या अविरत जोग कषाय । ये आस्रवकारन समुदाय ॥ आस्रव कर्मबंधको हेत ॥ बंध चतुरगतिके दुख देत ।

॥ १०० ॥ सामेति गुप्ति अनुपेहा धर्म । सहन परीषह संजम पर्म ॥ ये संवरकारन निर्दोष । संवर करै जीवको मोष ॥ १०१ ॥ तपबल पूर्वकर्म खिर जाहिं । नये ज्ञानबल आवैं नाहिं ॥ यही निर्जरा सुखदातार । भवकारन तारन निरधार ॥१०२॥ स्वयंसिद्ध त्रिभुवनथित जान । कटि कर धरें पुरुषसंठान ॥ भ्रमत अनादि आतमा जहां । समकित विन शिव होय न तहां ॥१०३॥ दुर्लभ धर्म दशांग पवित्त । सुखदायक सहगामी नित्त॥ दुर्गति परत यही कर गहै । देय सुरग शिवथानक यहै ॥ ॥१०४ ॥ सुलभ जीवको सब सुख सदा । नौग्रीवक ताईं संपदा ॥ बोधरतन दुर्लभ संसार । भवदारिद्रदुखमेटनहार ॥ ॥१०५ ॥ ये दशदोय भावना भाय । दिढ़ वैरागि भये जिनराय ॥ देहभोग संसार सरूप । सब असार जानो जगभूप ॥१०६॥ इतनैं लोकांतिक सुर आय । पुहपांजलि दे पूजे पाय ॥ ब्रह्मलोकवासी गुनधाम । देव रिपीश्वर जिनको नाम ॥१०७॥ सब पूरवपाठी बुधवंत । सहज सोममूरति उपशंत ॥ वनिताराग हिये नहिं बहैं । एकजन्म धरि शिवपद लहैं ॥ १०८ ॥ तीर्थंकर जब विरकत होय । हर्षवंत तब आवैं सोय ॥ और कल्यानक करें प्रनाम । सदा सुखी निवसैं निज धाम ॥१०९॥ हाथ जोर बोले गुनरूप । थुतिवायक अरु शिक्षारूप॥ धनि विवेक यह धन्य सयान । धनि यह औसर दयानिधान

॥११०॥ जान्यो प्रभु संसार असार। आथिर अपावन देह निहार॥ इन्द्रिय सुख सुपने सम दीस। सो याही विधि हैं जगईस॥१११॥ उदासीन असि तुम कर धरी। आज मोहसेना थरहरी॥ बढ़्यो आज शिवरमनि सुहाग। आज जगे भविजन सिरभाग॥ ११२॥ जग प्रमादनिद्रावश होय। सोवत है सुधि नाहीं कोय॥ प्रभु धुनिकिरन पयासै जबै। होय सचेत जगैं जन तबै॥११३॥ यह भव दुस्तर पारावार। दुख जलपूरित वार न पार॥ प्रभु उपदेश पोत चढ़ि धीर। अब सुखसों जैहैं जन तीर॥११४॥ शिवपुरि पौर भरमपट जहां। मोह सुहर दिढ़ कीनी तहां॥तुम वानी कूंची कर धार। अब भवि जीव लहैं पयसार॥११५॥ स्वयंबुद्ध बोधन समरत्थ। तुमपर प्रति बुध वचन अकत्थ॥ ज्यों सूरज आगे जिनराज। दीप दिखावन है वे काज॥११६॥हम नियोग औसर यह भाय। तातें करें वीनती आय॥ धरिये देव महाव्रत भार। करिये कर्मशत्रुसंघार॥ ११७॥ हरिये भरमतिमिर सर्वथा। सूझै सुरगमुक्तिपथ जथा॥ यों थुति करि बहुभाव दिढ़ाय। बारबार चरनन शिर नाय ॥ ११८॥ साधि नियोग गये निजथान। लोकांतिक सुर बड़े सयान॥ अब चौविधि इन्द्रादिक देव। चढ़ि निज निज बाहन बहुभेव॥ ११९॥ हर्षित उर परिवार समेत। आये तृतिय कल्यानक हेत॥ सुर वनिता नाचैं रस भरीं। गावैं मधुरगीत किन्नरीं

॥१२०॥ बाजे विविधि बजैं तिस बार। करैं अमरगन जय जय कार॥ सोवन कलश भरे सुरराय। विमल छीरसागर जल लाय॥१२१॥ हेमासन थापे जिनराय। उच्छवसहित न्हौन विधि ठाय॥ भूषन वसन सकल पहिराय। चंदनअर्चित कीनी काय॥ १२२॥ इस औसर प्रभु सोहैं एम। मोक्षवधूवर दूलह जेम॥ कहि वैराग वचन जिन तबै। प्रतिबोधे परिजन जन सबै॥ १२३॥ अति हठसों समझाई माय। लोचन भरे वदन विलखाय॥ विमला नाम पालकी साज। आनी इन्द्र चढ़े जिनराज॥ १२४॥ पहले भूमिगोचरी राय। सात पैंड़ लीनी सुखदाय॥ फिर विद्याधर राजा रले। पैंड़ सात ही ते ले चले॥ १२५॥ पीछैं इन्द्रादिक सुरसंघ। कांधै धरी चले पुर लंघ॥ ना अति निकट न दीसै दूर। नभ मारग देखें जन भूर॥ १२६॥ दोहा—जिस साहबकी पालकी, इन्द्र उठावनहार॥ तिस गुनमहिमा कथन अब, पूरन होउ अपार॥ १२७॥ चौपई—यों सुर नर सब हरषित भये। अश्व नाम वनमें चलि गये॥ बडतरु तलैं शिला शुभ जहां। कीनों शची सांथिया तहां॥ १२८॥ उतरे प्रभु अति उत्तम ठाम। शान्त भयो कोलाहल ताम॥ शत्रुमित्र ऊपर समभाव। तिनकंचन गिन एकसुभाव॥ १२९॥ सोमभाव स्वामी उर धार। पटभूषन सब दीनैं डार॥ उदासीन उत्तरमुख भये। हाथ जोर सिद्धन

प्रति नये ॥ १३०॥ दुविधि परिग्रह ताजि परमेश । पंच मुष्टि लोंचे सिरकेश ॥ शिवकामिनिकी दूती जोय । धरी दिगंबरमुद्रा सोय ॥ १३१ ॥ दोहा—सोहै भूषन वसन विन, जातरूप जिनदेह ॥ इंद्र नीलमनिको किधौं, तेजपुंज शुभ येह ॥ १३२ ॥ पोह प्रथम एकादशी, प्रथम पहर शुभवार ॥ पद्मासन श्रीपार्श्व जिन, लियो महाव्रतभार ॥ १३३ ॥ और तीनसै छत्रपति, प्रभुसाहस अविलोय । राज छारि संयम धर्‌यो. दुख-दावानल-तोय ॥१३४॥ तब सुरेश जिनकेश शुचि, छीरसमुद पहुँचाय । कर थुति साध नियोग सब. गयो सुरग सुरराय ॥ १३५ ॥ चौपई--अब स्वामी वनथान मनोग । तेला थापि दियो जिन जोग ॥ अट्ठाईस मूलगुन भाख । उत्तरगुन चौरासी लाख ॥ १३६ ॥ सब प्रभु धरे परम समचेत । अचल अंग मुख मौनसमेत ॥ यों वन वसत उपन्यो जान । संजमबल मनपर्जयज्ञान ॥ १३७ ॥ सोरठा--लघु वयमें जगपाल, कियो निर्वीरज कामदल ॥ धीरज धनुष सँभाल, तिनके पदनीरज नमूं ॥ १३८ ॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवद्वैराग्यप्राप्तदीक्षाकल्याणकवर्णनं नाम सप्तमोऽधिकारः ।

अथ अष्टमोऽधिकारः।

सोरठा--जाप्रभुको जसहंस, तीनलोक पिंजरैं वसै । सो मम पाप विधंस,करौ पास परमेश नित ॥१॥ चौपई—अब जिन उठे जोग अवसान । देहहेत उद्यम उर आन ॥ परमउदास अधोगत दीठ । सहजशांतमुद्रा मनईठ ॥२॥ दयानीर निर्मल परवाह । गुलर-खेटपुर पहुंचे नाह ॥ लाभ अलाभ बराबर धार । निर्धन धनको नाहिं विचार ॥ ३ ॥ ब्रह्मदत्त भूपति बड़भाग । प्रभुको देखि बढ़्यो उरराग ॥ उत्तमपात्र सकलगुनधाम । करि प्रनाम पड़िगाहे ताम ॥४ ॥ हेमासन थाप्यो नरराय । प्रासुक जल परछाले पाय ॥ आठभांति पूजा विस्तरी । हाथ जोर अंजुलि सिर धरी ॥ ५ ॥ मन तन वायक शुद्धसरूप । नौ दातागुनसंजुत भूप ॥ शुद्ध अन्न दीनों परवीन । प्रासुक मधुर दोषदुखहीन ॥६॥ उत्तमपात्र दानविधि करी । तीनभवन कीरति विस्तरी ॥ पंचाचरज भये नृपधाम । फिर स्वामी आये वन ठाम ॥ ७ ॥ करैं घोर तप साधैं जोग । दर्शन करत मिटैं सब शोग॥ अचल अंग मुख सोहै मौन। एकचित्त निजपद चिंतौन ॥८॥ ज्यों समुद्रजल विगतकलोल । अथवा सुरगिरिशिखर अडोल॥तथा नीलमनि प्रतिमा येह ॥ यों अकंप राजै

जिनदेहं[1] ॥ ९ ॥ चौपई—वैर भाव छांड़्यो वन जीव । प्रीत परस्पर करैं अतीव ॥ केहरि आदि सतावें नाहिं । निर्विष भये भुजग वनमांहिं ॥ १० ॥ शील सनाह सजौ शुचि-रूप । उत्तरगुनआभरन अनूप ॥ तपमय धनुष धर्‌यो निजपान । तीन रतन ये तीखन वान ॥ ११ ॥ समताभाव चढ़े जगशीश । ध्यान कृपान लियो कर ईश ॥ चारितरंग महीमें धीर । कर्मशत्रुविजयी वरवीर ॥ १२ ॥ ॥ दोहा—स्वामीकी सवपर दया, सबहीके रछपाल । जगविजयी मोहादि रिपु, तिनके प्रभु छयकाल ॥ १४ ॥ सोरठा–देखो पौन प्रचंड, दूब न खंडै दूबरी । मोटे विरछ विहंड, बड़े बड़ोही बल करैं ॥ १५ ॥ दोहा–यों दुद्धर तप करत अति, धर्मध्यानपदलीन । चार मास छद्मस्त जिन, रहे रागमलहीन ॥ १६ ॥ चौपई–एक दिवस दीच्छावन जहां । जोगलीन प्रभु निवसें तहां ॥ काउसग्ग तन विगत-विरोध । ठाड़े जिनवर जोगनिरोध ॥ १७ ॥ संवर नाम जोतिषी देव । पूरवकथित कमठचर एव ॥ अटक्यो अंवर जात विमान । प्रभुपर रह्यो छत्रवत आन ॥ १८ ॥ ततखिन अवधिज्ञानबल तबै । पूरव वैर सँभालो सबै ॥ कोप्यो अधिक न थांभ्यो

१ उक्त च—नोकिञ्चित्करकार्य्यमस्ति गमनप्राप्यं न किञ्चिद्दृष्टशोर्दृश्य यस्य न कर्णयोःकिमपि हि श्रोतव्यमप्यस्ति न । नेनालम्बितपाणिरुज्झितगतिर्नासाग्रदृष्टी रहः । सम्प्राप्तोऽति निराकुलो विजयते ध्यानैकतानोजिनः ।

जाय । राते लोयन भ्रजुली काय ॥ १९ ॥ आरंभ्यो उपसर्ग महान । कायर देखि भजैं भय मान ॥ अंधकार छायो चहुँओर । गरज गरज वरखैं घन घोर ॥ २० ॥ झरै नीर मुसलोपम धार । वक्र बीज झलकै भयकार ॥ बूड़े गिरि तरुवर वनजाल । झंझा वायु बही विकराल ॥ २१ ॥ जल थल भयो महोदधि एम । प्रभु निवसैं कनकाचल जेम ॥ दुष्ट विक्रियाबल अविवेक । और उपद्रव करै अनेक ॥ २२ ॥ छप्पय—किलकिलंत वेताल, काल कज्जल छबि सज्जहिं । भौं कराल विकराल, भाल मदगज जिमि गज्जहिं ॥ मुंडमाल गल धरहिं, लाल लोयन निडरहिं जन । मुख फुलिंग फुंकरहिं करहिं निर्दय धुनि हन हन ॥ इहि विधि अनेक दुर्भेष धरि, कमठजीव उपसर्ग किय । तिहुं लोकवंद जिनचंद्रप्रति, धूलि डारु निज सीस लिय ॥ २३ ॥ दोहा--इत्यादिक उतपात सब, वृथा भये अति घोर । जैसे मानिक दीपको, लगै न पौन झकोर ॥ २४ ॥ प्रभु चित चल्यो न तन हल्यो, टल्यो न धीरज ध्यान । इन अपराधी क्रोधवश, करी वृथा निज हान ॥ २५ ॥ पावक पकरै हाथसों, अवशि हाथ जलि जाय । परके तन लागै नहीं, वाके पुन्यसहाय ॥ २६ ॥ प्रानी विषयकषायवश, कौन कौन विपरीत । करत हरत कल्यान निज, जलौ जलौ यह रीत ॥ २७ ॥ प्रभु अचिंत्य महिमाधनी, त्रिभुवन

पूजत पाय । तिनके यह क्यों संभवै, सुर उपसर्ग कराय ॥ २८ ॥ इहि विधि जो कोई पुरुष, पूछै संशय राखि। ताके समुझावन निमित, लिखूं जिनागम साखि॥ २९ ॥ चौपई--अवसर्पनि उतसर्पनि काल । होंहिं अनंतानंत विशाल ॥ भरत तथा ऐरावत-माहिं । रॅहटघटीवत आवैं जाहिं ॥ ३०॥ जब ये असंख्यात परमान, बीते जुगम खेत भू थान॥तब हुंडावसर्पणी एक। परै करै विपरीत अनेक ॥३१॥ ताकी रीत सुनो मतिवंत। सुखमा दुखमा कालके अंत ॥ वरखादिकको कारन पाय । विकलत्रय उपजैं बहु भाय ॥ ३२ ॥ कलपवृक्ष विनशैं तिहि वार । वरतै कर्मभूमि व्यवहार ॥ प्रथम जिनेश प्रथम चक्रेश । ताही समय होंहिं इहि देश ॥ ३३ ॥ विजयभंग चक्रीकी होय। थोड़े जीव जाहिं शिवलोय ॥ चक्रवर्ति विकलप विस्तरै। ब्रह्मवंशकी उतपाति करै ॥३४॥ पुरुष शलाका चौथे काल । अट्ठावन उपजैं गुनमाल ॥ नवम आदि सोलह परजंत । सात तीर्थमें धर्म नशंत ॥ ३५ ॥ ग्यारह रुद्र जनम जहँ धरैं। नौ कलिप्रिय नारद अवतरैं॥ सत्तम तेईसम गुनवर्ग । चरमजिनेश्वरको उपसर्ग ॥ ३६ ॥ तीजे चौथेकालमँझार। पंचममें दीसै बढ़वार ॥ विविधि कुदेव कुलिंगी लोग । उत्तमधर्म नाशके जोग ॥ ३७ ॥ सवर विलालभील चंडाल। नाहलादि कुलमें विकराल ॥ कल्की उपकल्की

चौपई—पहले गोलपीठका ठई । इन्द्रनीलमनिमय निर्मई॥ पांच कोस चौड़ी परवान । तीनलोक उपमा नाहिं आन॥६६॥ जाके चहुंदिशि गिरदाकार । बनी पैंड़िका बीसहजार॥ हाथ हाथपरि ऊंची लसैं । नभपरजंत देखि दुख नसैं॥६७॥ तापर धूलीशाल उतंग । पंचरतनरजमय सर्वंग ॥ विविध वर्ण सो बलयाकार । झलकै इन्द्रधनुष उनहार॥६८॥ कहीं श्याम कहिं कंचनरूप । कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप॥ समोसरन लछमीको एम । दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम ॥ ६९ ॥ चारों दिशि तोरन बन रहे । कनक थंभ ऊपर लहलहे ॥ आगे मानभूमि है जहां । मानथंभ चारोंदिशि तहां ॥ ७० ॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी । सोलह पैंड़ी संजुत ठनी ॥ चार चार दरवाजे ठान । तीन तीन तहां कोट महान ॥ ७१ ॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ । तिनपै मानथंभ थिर दीठ॥ अतिउतंग कंचनके ठये । छत्रधुजादिकसों छवि छये ॥७२॥ जिन्हैं देखि मानी मद बढ़े । उतरे मान महागिरि चढ़े ॥ मूलभाग प्रतिमा मनहरैं । इन्द्रादिक पूजा विसतरैं ॥७३॥ एक एक दिशि चहुँ दिशि ठई । सहज वापिका वारिजछई ॥ मन्दादिक शुभ जिनके नाम । चारों दिशि सोलह सुखधाम ॥७४॥ आगे खाई शोभित खरी । औंड़ी अधिक विमलजलभरी ॥ रतनतीर राजैं चहुँओर । हंसकलाप करैं जहँ शोर ॥ ७५ ॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय ॥

पूजत पाय । तिनके यह क्यों संभवै, सुर उपसर्ग कराय ॥ २८ ॥ इहि विधि जो कोई पुरुष, पूछै संशय राखि। ताके समुझावन निमित,लिखूं जिनागम साखि॥ २९ ॥ चौपई--अवसर्पनि उतसर्पनि काल । होंहिं अनंतानंत विशाल ॥ भरत तथा ऐरावत-माहिं । रहॅटघटीवत आवैं जाहिं ॥ ३०॥ जब ये असंख्यात परमान, बीते जुगम खेत भू थान॥तब हुंडावसर्पणी एक। परै करै विपरीत अनेक ॥३१॥ ताकी रीत सुनो मतिवंत। सुखमा दुखमा कालके अंत ॥ वरखादिकको कारन पाय । विकलत्रय उपजैं बहु भाय ॥ ३२ ॥ कल्पवृक्ष विनशैं तिहि वार । वरतै कर्मभूमि व्यवहार ॥ प्रथम जिनेश प्रथम चक्रेश । ताही समय होंहिं इहि देश ॥ ३३ ॥ विजयभंग चक्रीकी होय । थोड़े जीव जाहिं शिवलोय ॥ चक्रवर्ति विकलप विस्तरै । ब्रह्मवंशकी उतपाति करै ॥ ३४॥ पुरुष शलाका चौथे काल । अट्ठावन उपजैं गुनमाल ॥ नवम आदि सोलह परजंत । सात तीर्थमें धर्म नशंत ॥ ३५ ॥ ग्यारह रुद्र जनम जहँ धरैं । नौ कलिप्रिय नारद अवतरैं ॥ सत्तम तेईसम गुनवर्ग । चरमजिनेश्वरको उपसर्ग ॥ ३६ ॥ तीजे चौथेकालमँझार । पंचममें दीसै बढ़वार ॥ विविधि कुदेव कुलिंगी लोग । उत्तमधर्म नाशके जोग ॥ ३७ ॥ सवर विलालभील चंडाल । नाहलादि कुलमें विकराल ॥ कल्की उपकल्की

कलिमाहिं । बयालीस हैं मिथ्या नाहिं ॥ ३८॥ अनावृष्टि अतिवृष्टि विख्यात । भूमि-
वृद्धि वज्रागिनिपात ॥ ईतभीत इत्यादिक दोष । कालप्रभाव होहिं दुखपोष ॥ ३९॥
दोहा—यों त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें, कथन कियो बुधराज । सो भविजन अवधारियो, संशय-
मेटन काज ॥ ४० ॥ गीता—तीसरे कालहँ मुक्तिसाधै, प्रथमतीर्थंकर सही । पुनि
तीन तीरथ होहिं चक्री, एक हरि जिनवर वही ॥ इस भांति चौथे जुग शलाका पुरुष
ऊने अवतरैं । हुंडावसर्पिनिमें अठावन जीव बासठ पद धरैं॥४१॥चौपई—तब फनेशआ-
सन कंपियौ । जिनउपकार सकल सुधि कियौ ॥ ततखिन पद्मावति ले साथ । आयो जहँ
निवसैं जिननाथ ॥४२॥ करि प्रनाम परदछना दई । हाथ जोरि पदमावति नई ॥ फण-
मंडप कीनो प्रभुशीश । जलबाधा व्यापै नाहिं ईश ॥४३॥ नागराज सुर देख्यो जाम ।
भाज्यो दुष्ट जोतिषी ताम॥हीनजोग सूधी यह बात । भागि जाय तबही कुश लात॥४४॥
अब सब कोलाहल मिट गये । प्रभु सत्तमथानक थिर भये ॥ विकलपरहित चिदातमध्या-
न । करै कर्मछयहेत महान ॥ ४५॥ सात प्रकृति चौथे गुणठान । पहले नाश करी भग-
वान ॥ अब ह्यां धर्मध्यानबल धीर । तीनप्रकृति जीती वरबीर ॥ ४६ ॥ प्रथम शुक्ल
पदसों परनये । खिपकसेनिमारगपर ठये॥ प्रकृतिछ्तीस नवैं छयकरी । दशवैं लोभप्रकृति

प्रभु हरी॥४७॥ दोहा–एकादशम उलंघिपद, चढ़े बारहें थान। कर्मप्रकृति सोलह तहां, नाश करी अवसान ॥ ४८ ॥ चौपई–इहिविधि त्रेसठ प्रकृति निवार। घाते कर्म घातिया चार ॥ चैतअँधेरी चौदश जान। उपज्यो प्रभुके पंचम ज्ञान॥४९॥लोकालोक चराचर भाव। बहुविधि परजयवंत सुभाव॥ ते सब आन एक ही वार। झलके केवलमुकुरमँझार ॥५०॥भये अनंत चतुष्टयवन्त। प्रगटी महिमा अतुल अनंत॥दिव्य परमऔदारिक देह। कोटि भानुद्युति जीती जेह॥५१॥अलौकीक अद्भुत संपदा। मंडित भये जिनेश्वर तदा॥ वचनअगोचर महिमा सार। वरनन करत न पइये पार॥५२॥दोहा पांच हजार प्रमान धनु, उपजत केवलज्ञान ॥ अंतरिच्छ प्रभु तन भयो, ज्यों शशि अंबरथान[1] ॥ ५३ ॥ चौपाई–प्रकटी केवल रविकिरण जाम। परिफूल्यौ त्रिभुवन कमलताम ॥ आकाश अमल दीसै अनूप। दिशिविदिशि भई सब विमलरूप॥५४॥सुरलोक बजैं घंटागरिष्ट। तरु करन लगे तहां पुहपविष्ट॥इन्द्रासन कांपे अतिगरीश। आनम्र भये मनिमुकुटशीश॥५५॥ इत्यादिक बहु विधि चिहन चार। प्रभु केवलसूचक भये सार ॥ तब अवधि जोड़ि जान्यो सुरेश।

१ उक्तं च गाथा–जादे केवल णाणे परमो रालं जिणाण सव्वाणं। गच्छदि उवरे चावा पंच सहस्साणि वसुहाउ।

छय करे कर्म पारसजिनेश ॥ ५६ ॥ सिंहासन तजि निज सीस नाय । प्रनमो परोख सुख उर न माय ॥ इन्द्रानी पूछै कहहु कंत । क्यों आसन तजि उतरे तुरंत ॥ ५७ ॥ किस कारन स्वामी नयो शीश । याको प्रतिउत्तर देहु ईश ॥ तब बोले विकसत देवराज । प्रभु उपज्यो केवलज्ञान आज ॥ ५८ ॥ ऐरावतगज सजि सपरिवार । प्रथमेंद्र चल्यो आनँद अपार ॥ बाजे बहु पटह पयानभेर । सब वरनन करत लगै अबेर ॥ ५९ ॥ ईशानप्रमुख सब स्वर्गनाथ । निजबाहन चढ़ि चढ़ि चले साथ॥हरिनाद सुन्यो जोतिषी-देव । चंद्रादि चले तब पँच भेव ॥६०॥भावनघर बाजे संख भूरि । दशविधि सुर निकसे हरष पूरि ॥ वसुविंतरघर गरजे निशान । यों परियन सब कीनो पयान ॥ ६१ ॥ यों चली चतुर विधि सुरसमाज । जिनकेवलपूजा करन काज ॥ अंबर तजि आये अवनि-माहिं । जहँ समोसरन धुज फरहराहिं ॥ ६२ ॥ जो सुरपतिको उपदेश पाय । धनपतिने कीनो प्रथम आय ॥ वर पंचवर्ण मणिमय अनूप । जगलक्ष्मीको कुलग्रह सरूप ॥ ६३ ॥ दोहा- समोसरनकी संपदा, लोकोत्तर तिहुं भौन । वचनद्वार वरनें तिसै, सो बुध समरथ कौन ॥ ६४ ॥ सोरठा—पै थल अवसर पाय, धर्मध्यानकारन निरखि । लिखो लेश मन लाय, पढ़त सुनत आनँद बढ़ै ॥ ६५ ॥

चौपई—पहले गोलपीठका ठई । इन्द्रनीलमनिमय निर्मई॥ पांच कोस चौड़ी परवान । तीनलोक उपमा नहिं आन॥६६॥जाके चहुंदिशि गिरदाकार । बनी पैंड़िका बीसहजार॥हाथ हाथपरि ऊंची लसैं । नभपरजंत देखि दुख नसैं॥६७॥तापर धूलीशाल उतंग । पंचरतनरजमय सर्वंग ॥ विविध वर्ण सो बलयाकार । झलकैं इन्द्रधनुष उनहार॥६८॥कहीं श्याम कहिं कंचनरूप । कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप॥ समोसरन लछमीको एम । दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम ॥ ६९ ॥ चारों दिशि तोरन बन रहे । कनक थंभ ऊपर लहलहे ॥ आगे मानभूमि है जहां । मानथंभ चारोंदिशि तहां ॥ ७० ॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी । सोलह पैंड़ी संजुत ठनी ॥ चार चार दरवाजे ठान । तीन तीन तहां कोट महान ॥ ७१ ॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ । तिनपै मानथंभ थिर दीठ ॥ अतिउतंग कंचनके ठये । छत्रधुजादिकसों छवि छये ॥७२॥ जिनैं देखि मानी मद बढ़े । उतरे मान महागिरि चढ़े ॥ मूलभाग प्रतिमा मनहरें । इन्द्रादिक पूजा विसतरैं ॥७३॥ एक एक दिशि चहुँ दिशि ठई । सहज वापिका वारिजछई ॥ मन्दादिक शुभ जिनके नाम । चारों दिशि सोलह सुखधाम ॥७४॥ आगे खाई शोभित खरी । औंड़ी अधिक विमलजलभरी ॥ रतनतीर राजैं चहुँओर। हंसकलाप करैं जहँ शोर ॥ ७५ ॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय ॥

पद्मराग मनिमय नव तूप ॥ धुजा छत्र घंटा छबि देहिं । जिनमुद्रासों मन हर लेहिं ॥ १०५ ॥ आगे तृतिय कोट वन एम । फटिकमई निर्मल नभ जेम ॥ अति उतंग सो बलयाकार । लालवरन मनिनिर्मित द्वार ॥ १०६ ॥ और कथन पूरब-वत जान । ठाड़े सुरग देव दरवान ॥ महामनोहर लोचनहारि । अनुपमशोभा अचरज-कारि ॥ १०७॥ अब सुनि मध्य भूमिकी कथा । फटिककोट भीतर विधिजथा॥ गढ़सों प्रथम पीठलग लगी । फटिकभीत सोलह जगमगी॥१०८॥ तिनपै रतनथंभ छबि देहिं । प्रभाजालसों तम हर लेहिं ॥ तिनहीपै श्रीमंडप छयो । फटिक मई नभमें निरमयो॥१०९॥ सोरठा—या श्रीमंडपमाहिं, निराबाध तिहुँ जग वसैं । भीर होय तहां नाहिं, त्रिभुवनपति अतिशय अतुल॥११०॥चौपाई—भीतन वीच गली जे रही । बारहसभा तहां जिन कही ॥ बैठे मुनि अपछर आर्जिया । जोतिष वान असुर सुरतिया ॥१११॥ भावन विंतर जोतिषिदेव । कल्पनिवासी नर पशु एव ॥ तिनमें प्रथम पीठका ठई । अनुपम बैडूरज मणिमई॥११२॥मोरकंठवत आभा जास । सोलह पैंड साल चहुँ पास॥बारह सभा महा दिशि चार । तिनकों यह पथ सोलह सार ॥ ११३ ॥ मंगलदरब जहां सब धरे । जच्छदेव सेवक तहां खरे ॥ धर्मचक्र तिनके सिर दिपै । जिनको देखि दिवाकर छिपै ॥११४ ॥

चौपई—पहले गोलपीठका ठई । इन्द्रनीलमनिमय निर्मई॥ पांच कोस चौड़ी परवान । तीनलोक उपमा नाहिं आन॥६६॥ जाके चहुंदिशि गिरदाकार । बनी पैंड़िका बीसहजार॥ हाथ हाथपरि ऊंची लसैं । नभपरजंत देखि दुख नसैं॥६७॥ तापर धूलीशाल उतंग । पंचरतनरजमय सर्वंग ॥ विविध वर्ण सो बलयाकार । झलकें इन्द्रधनुष उनहार॥६८॥ कहीं श्याम कहिं कंचनरूप । कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप ॥ समोसरन लछमीको एम । दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम ॥ ६९ ॥ चारों दिशि तोरन बन रहे । कनक थंभ ऊपर लहलहे ॥ आगे मानभूमि है जहां । मानथंभ चारोंदिशी तहां ॥ ७० ॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी । सोलह पैंडी संजुत ठनी ॥ चार चार दरवाजे ठान । तीन तीन तहां कोट महान ॥ ७१ ॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ । तिनपै मानथंभ थिर दीठ ॥ अतिउतंग कंचनके ठये । छत्रधुजादिकसों छवि छये ॥७२॥ जिनैं देखि मानी मद बढ़े । उतरे मान महागिरि चढ़े ॥ मूलभाग प्रतिमा मनहरें । इन्द्रादिक पूजा विसतरें ॥७३॥ एक एक दिशि चहुँ दिशि ठई । सहज वापिका वारिजछई ॥ मन्दादिक शुभ जिनके नाम । चारों दिशि सोलह सुखधाम ॥७४॥ आगे खाई शोभित खरी । औंड़ी अधिक विमलजलभरी ॥ रतनतीर राजैं चहुँओर । हंसकलाप करैं जहँ शोर ॥ ७५ ॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय ॥

किधौं विमल गंगानदी, प्रभु परदछना देय ॥ ७६ ॥ चौपई—आगे पुहपबेल वनसार । महासुगंध मधुप सुखकार ॥ सघनछांह सब रितुके फूल । फूले जहां सकल सुखमूल ॥७७॥ याकै कछु अन्तर द्युति धरै । कंचन कोट प्रथम मनहरै ॥ बलयाकृति अति उन्नत जेह । मानो मानषोत्र गिरि येह ॥ ७८ ॥ चहुँदिशि सोहैं चार दुवार । रूपमई तिखने मनहार ॥ रतनकूट ऊपर जगमगै । लाल वरन अतिसुन्दर लगै ॥ ७९ ॥ किधौं अरुन छबि हाथ उठाय । जगलछमी नाचै विहसाय ॥ नौनिधि जहां रहैं अभिराम । पिंगलादि हैं जिनके नाम ॥ ८० ॥ प्रभुअजोग गिन दीनी छार । वे मचली सेवैं दरबार ॥ मंगल द्रव एकसौ आठ । धरे प्रतेक मनोहर ठाठ ॥ ८१ ॥ गावैं जिनगुन देवकुमार । और विविधि शोभा तहँ सार ॥ विंतरदेव खड़े दरवान । विनयहीनको देहिं न जान ॥ ८२ ॥ यह पहले गढ़की विधि कही । आगे और सुनो अब सही ॥ गोपुर ताजि चारों दिशि गली । गमनहेत भीतरको चली ॥ ८३ ॥ तहां निरतशाला दुहुं पास । सब दिशिमें जानो सुखवास ॥ सुवरनथंभ फटिकमय भीत । तिखनी मनिमय शिखर पुनीत ॥ ८४ ॥ सुरवनिता नाचैं तह एम । लावन-तोय-तरंगनि जेम ॥ मंदहास मुख सोहै खरीं । जिनमंगल गावैं सुखभरीं ॥ ८५ ॥ बाजै बीन बांसली ताल ।

महा मुरजधुनि होय रसाल ॥ आगे बीथी अन्तर धरे । दोनों दिशा धूपघट भरे ॥ ८६ ॥ सोरठा—श्याम वरन यह जानि, धूप धुवां नभको चल्यो । किधौं पुन्यडर मानि, धूवां मिस पातग भज्यो ॥ ८७ ॥ चौपई—आगे चार बाग चहुँ ओर । प्रथम अशोक नाम चितचोर ॥ सप्तवर्ण चंपक सहकार । ये इनकी संज्ञा अविधार ॥ ८८ ॥ सब रितुके फल फूलन भरे । विरछ बेलसों सोहत खरे ॥ वापीमंडप महल मनोग । राजैं जहां जथाविधिजोग ॥ ८९ ॥ चैत विरछ चारों वनमाहिं । मध्यभागसुंदर छबि छाहिं ॥ जिनमुद्रामंडित मनहरैं । सुरनर नित पूजा विस्तरैं ॥ ९० ॥ बाग ओट बेदी चहुँओर । चारद्वारमंडित छबि जोर ॥ अब इस वन बेदीतैं सही । गढपरजंत गली जे रही ॥ ९१ ॥ तिनमें धुजापाँति फहराहिं । कंचनथम्भ लगी लहराहिं ॥ दशप्रकार आकार समेत । तिनके भेद सुनो सुखहेत ॥९२॥ माला वसन मोर अरविंद । हंस गरुड़ हरि वृषभ गयंद॥ चक्रसहित दश चिहन मनोग । धुजा दुकूलनि सोहैं जोग ॥९३॥ ये दश एक जातकी जान । एक एकसौ आठ प्रमान ॥ दशसै असी सबै मिल भई । एक दिशामें सब वरनई ॥ ९४ ॥ चारों दिशिकी जोड़ सरीस । चारहजारतीनसै बीस ॥

यह परमित जिनशासनमाहिं । अतिविचित्र शोभा अधिकाहिं ॥ ९५ ॥ हालैं धुजा पवन वश येह । जिनपूजन भवि आये जेह ॥ पंथखेद तिनको मन आन । करत किधौं सत-कार विधान ॥ ९६ ॥ मानथंभ धुजथंभ अनूप । चैतविरछ बेदी गढ़रूप ॥ इत्यादिक ऊँचे इकसार । जिन तनतैं बारह गुन धार ॥ ९७ ॥ आगे रजत मयी निरमान । तुंग-कोट अति धवल महान ॥ किधौं सेत प्रभुसुजस प्रकास । फेरी देय फिरो चहुँ-पास ॥ ९८ ॥ पूरबवत दरवाजे चार । रतनमई अनुपम छबि धार ॥ नौनिधि मंगलदरब समाज । तोरनप्रमुख और सब साज ॥ ९९ ॥ प्रथमकोटवरननसम जान । ठाड़े भवन देव दरवान ॥ यासों लगी और अब गली । चारों तरफ एक सी चली॥१००॥ कल्पवृच्छ वन राजै तहां । दशविधि कल्पतरोवर जहां ॥ भूषन वसन लगे जिन डार । शोभा कहत न लहिये पार ॥१०१ ॥ मध्यभाग जिनविंब समेत । सिद्धारथ तरुवर छबि देत ॥ चहुं-दिशि बेदी चहुं दिशि द्वार । रचना और अनेक प्रकार॥१०२॥इस बेदीके बाहर भाग । आगे फटिक कोट लों लाग ॥ अतिविचित्र महलनकी पांति । जिन सिर रत्नकूट बहुभांति ॥ १०३ ॥ चंद्रकांतिमाणि भासुर भीत । सुवरनमय तहां थंभ पुनीत ॥ सुरनरनाग रमें जिनमाहि । किन्नरगन बहु केलि कराहिं ॥ १०४ ॥ वीथी मध्यदेश शुभरूप ॥

अष्टप्रातिहार्यवर्णन ।

गीता—राजत उतंग अशोक तरुवर,पवनप्रेरित थरहरै । प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानो मनहरै ॥ तिस फूलगुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी । सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १२५ ॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, शरन ढूंढ़त जग फिरो । कोई न राखै चोर प्रभुको, आय पुनि पायन गिरो ॥ यों हार निज हथियार डारे, पुहुपवर्षा मिस भनी । सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १२६ ॥ प्रभु अंग नील उतंग नगतैं, वानि शुचि सीता ढली । सो भेद भ्रम गजदंत पर्वत, ज्ञानसागरमें रली ॥ नय सप्तभंग तरंगमंडित, पापताप विधंसनी ॥ सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥ १२७ ॥ चंद्रार्चि चयछवि चारु चंचल, चमरवृन्द सुहावने । ढोलैं निरंतर जच्छनायक, कहत क्यों उपमा बने ॥ यह नील गिरिके शिखर मानो, मेघझर लागी घनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥ १२८ ॥ हीरा जवाहर खचित बहुविधि, हेम आसन राजए । तहँ जगत जनमनहरन प्रभुतन, नीलवरन विराजए ॥ यह जटित वारिज मध्य मानो नील मनिकलिका बनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १२९ ॥

जगजीत मोहमहान जोधा, जगतमें पटहा दियो । सो शुक्लध्यान कृपानबल, जिन विकट वैरी वश कियो ॥ ये वजत विजय निशान दुंदुभि, जीत सूचैं प्रभुतनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १३० ॥ छदमस्त पदमें प्रथम दर्शन, ज्ञान चारित आदरे । अब तीन तेई छत्र छलसों, करत छाया छबि भरे ॥ अति धवलरूप अनूप उन्नत, सोमविंबप्रभा हनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १३१ ॥ दुति देखि जाकी चांद शरमें, तेजसों रवि लाजए । अब प्रभामंडल जोग जगमें, कौन उपमा छाजए ॥ इत्यादि अतुल विभूतमंडित, सोहिये त्रिभुवनधनी । सो जयो पासजिनेंद्र पातकहरन जगचूड़ामनी ॥ १३२ ॥ यों असम महिमासिंधु साहब, शक्र पार न पावही । तजि हासभय तुम दास भूधर, भगतिवश जस गावही ॥ अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं । कर जोर यह बरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं ॥१३३॥ चौपई—इह विधि समोसरनमंडान । कियो कुवेर जथाविधि थान ॥ आये सुर वरसावत फूल । जय जयकार करत सुखमूल ॥१३४॥ अति प्रसन्नता सब विधि भई । हरषत तीन प्रदछना दई ॥ धूलशालिमें कियो प्रवेश । चकित भयो छबि देखि सुरेश ॥ १३५ ॥ मुदित महर्धिक देवन साथ । जिनसन-

सुख आयो सुरनाथ ॥ हरतकमल जोरे अमरेश । देखे दृग भरि पासजिनेश ॥ १३६ ॥ मणिउतंग आसन पर ईस । मानो मेघ रत्नगिरि शीस ॥ फैल रही तनकिरनकलाप । कोटभानसों अधिक प्रताप ॥ १३७ ॥ विकसत चित रोमांचित काय । प्रनमो चरन सीस भुवि लाय ॥ मनिझारी भरि तीरथतोय । पूजे मघवा जिनपद दोय ॥ १३८ ॥ सुर्ग सुगंधनि भक्ति बढ़ाय । अरचे इन्द्र जिनेश्वरपाय ॥ मुक्ताफलमय अच्छत लिये । पुंज परमगुरु आगे दिये ॥ १३९॥ पारिजात मंदार मनोग । पुहुप चढ़ाये जिनवर जोग ॥ सुधापिंड चरु लेय पवित्त । पूजा करी शक्र धरि चित्त ॥ १४० ॥ रतनप्रदीप खवाने खरे । श्रीपति पाँय शचीपति धरे ॥ देवलोककी अगर अनूप । पासचरन खेई सुरभूप ॥ ॥१४१॥ कल्पतरोवरके फल रजे । जगपतिपाँय पुरंदर जजे ॥ सर्व दरव धरि करि परनाम । दीनों इन्द्र अरघ अभिराम॥१४२॥ दोहा—करि जिनपूजा आठ विधि, भावभक्ति बहुभाय । अब सुरेश परमेशथुति, करत सीस निज नाय ॥ १४३ ॥ चौपई—प्रभु इस जग समरथ नाहिं कोय । जापै जसवर्णन तुम होय ॥ चारज्ञानधारी मुनि थके । हमसे मंद कहा कर सके॥१४४॥यह उर जानत निश्चय कीन । जिनमहिमावर्णन हम हीन ॥ पै तुमभक्ति करै बाचाल । तिसवश होय गहूं गुणमाल ॥१४५॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी ।

जगचंद्रोपम चूड़ामनी ॥ जय जय परमधर्मदातार । कर्मकुलाचल चूरनहार ॥१४६॥
जय शिवकामिनकंत महंत । अतुल अनंत चतुष्टयवंत॥जय जगआशभरन बड़भाग । शि-
वलछमीके सुभग सुहाग ॥१४७॥जय जय धर्मधुजाधर धीर । सुरगमुक्तिदाता वरवीर॥
जय रतनत्रय रत्नकरंड । जय जिन तारनतरनतरंड॥१४८॥जय जय समोसरन सिंगार ।
जय संशयवनदहनतुसार॥जय जय निर्विकार निर्दोष॥जय अनंतगुनमानिककोष॥१४९॥
जय जय ब्रह्मचरजदल साज । कामसुभटविजयी भटराज॥जय जय मोह महानगकरी॥जय
जयमदकुंजरकेहरी॥१५०॥क्रोधमहानलमेघप्रचंड॥मानमहीधरदामिनिडंड॥मायाबेलधनं-
जयदाह । लोभसलिलशोषक दिननाह ॥१५१॥तुमगुनसागर अगम अपार । ज्ञानजहाज
न पहुंचै पार॥तट ही तटपर डोलत सोय । स्वारथसिद्ध तहांही होय॥१५२॥प्रभु तुम कीर्ति-
बेल बहु बढ़ी॥जतनविना जगमंडप चढ़ी॥और अदेव सुयश नित चहैं । ये अपने घरही यश
लहैं॥१५३॥जगतजीव घूमै विनज्ञान । कीनो मोहमहाविषपान॥ तुम सेवा विषनाशन
जरी । यह मुनिजन मिलि निहचै करी॥१५४॥जन्मलता मिथ्यामतमूल । जामनमरन लगैं
जिहि फूल॥सो कबही विनभक्तिकुठार । कटै नहीं दुखफलदातार॥१५५॥ कलपतरोवर चि-
त्रावेल । काम पोरसा नौनिधि मेल॥ चिंतामनिपारस पाषान । पुन्यपदारथ और महान

॥१५६॥ ये सब एकजन्मसंजोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुमारी सेव । जन्मजन्म सुखदायक देव॥१५७॥तुम जगबान्धव तुम जगतात । अशरनशरन विरदाविख्यात॥ तुम जगजीवनके रछपाल। तुम दाता तुम परमदयाल॥१५८॥ तुम पुनीत तुम पुरुषपुरान । तुम समदर्शी तुम सब जान ॥ तुम जिन यज्ञपुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥ १५९ ॥ तुमही जगभरता जगजान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम विन तीनकाल तिहुँलोय । नहिं नहिं शरन जीवको कोय॥१६०॥तिस कारन करुनानिधि नाथ। प्रभु सनमुख जोरे हम हाथ ॥ जब लों निकट होय निरवान। जगनिवास छूटै दुखदान ॥ १६१॥ तब लों तुम चरनांबुज वास। हम उर होहु यही अरदास ॥ और न कछु वांछा भगवान । यह दयाल दीजै वरदान ॥१६२॥ दोहा--इहिविधि इन्द्रादिक अमर, करि बहुभक्ति विधान॥ निज कोठे बैठे सकल, प्रभुसम्मुख सुखमान ॥ १६३ ॥ जीति कर्मरिपु जे भये, केवललब्धिनिवास। ते श्रीपारसप्रभु सदा, करो विघनवन नास॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवतज्ञानकल्याणकवर्णनं नाम अष्टमोऽधिकारः ।

नवमोऽधिकारः ।

सोरठा--पारसप्रभुको नाउँ, सार सुधारस जगतमें । मैं याकी बलि जाउँ, अजर अ-

मरपदमूल यह ॥ १ ॥ दोहा—बारह सभा सुथानमधि, यों प्रभु आनँदहेत । यथा कमलनीखंडको, शशिमंडल सुखदेत ॥२॥ विकसितमुख सुरनर सकल, जिनसन्मुख करजोर ॥ निवसैं प्यासे अमृतधुनि, ज्यों चातक घनओर ॥ ३ ॥ चौपई—तब गनराज स्वयंभू नाम । चार ज्ञानधारी गुनधाम ॥ करि प्रनाम पारसप्रभुओर । विनती करी करांजुलि जोर ॥ ४ ॥ भो स्वामी त्रिभुवनघर येह । मिथ्यातिमिर छयो अति जेह ॥ भूले जीव भमैं तामाहिं । हित अनाहित कछु सूझै नाहिं ॥ ५ ॥ श्रीजिनवानी दीपकलोय । ता विन तहां उदोत न होय ॥ तातैं करुनानिधि स्वयमेव । करि उपदेश अनुग्रह देव ॥ ६ ॥ जाननजोग कहा है ईश । गहनजोग सो कहि जगदीश ॥ त्यागनजोग कहो भगवान । तुम सबदर्शी पुरुष प्रमान ॥ ७ ॥ कैसे जीव नरकमें परै । क्यों पशुयोनि पाय दुख भरै ॥ काहेसों उपजै सुरलोय । कौन कर्मतैं मानुष होय ॥ ८ ॥ कौन पापफल जनमैं अन्ध । बहरे कौन क्रियासम्बन्ध ॥ किस अघ उदय होय नर पंग । गूंगे किस पातक परसंग ॥ ९ ॥ कौन पुन्यतैं दरब अतीव । क्यों यह होंहिं दरिद्री जीव ॥ पुरुष वेद किस कर्म उदोत । नारि नपुंसक किस विधि होत ॥ १० ॥ किस आचरन बड़ी थिति धरैं । क्यों करि अल्प आयु धरि मरैं ॥ भोगहीन अरु भोगसमेत । सुखी दुखी

दीखैं किस हेत ॥११॥ किस कारन मूरख मतिहीन । क्यों उपजैं पंडित परवीन ॥ कि-
स करनीतैं होय सरोग । किस अधर्म तें पुत्रवियोग ॥१२॥ विकलशरीर पाय दुख सहै ।
नीच ऊंचकुल कैसे लहै ॥ किनभावन भवथिति विस्तरै। भवथिति भेद कहा करि
करै ॥१३॥ क्योंकर होय सुरगमें इन्द्र । कैसे पद पावै अहमिंद्र ॥ चक्रीपद किस
पुन्यउदोत । किमि बांधै तीर्थंकरगोत ॥ १४ ॥ इत्यादिक यह प्रश्न समाज । इनको
उत्तर कह जिनराज ॥ तुम सब संशयहरन जिनेश । जैसे भवतमदलन दिनेश ॥ १५ ॥
दोहा—तब श्रीमुखवानी विमल, विनअक्षर गंभीर । महामेघकी गरज सम, खिरी
हरन जगपीर ॥ १६ ॥ तालु होठ सपरस विना, मुखविकार विन सोय । सब भाषा-
मय मधुरतर, श्रीजिनकी धुनि होय ॥ १७ ॥ जथा मेघजल परनमें निंबादिक रस-
रूप ॥ तथा सर्वभाषामई, श्रीजिनवचन अनूप ॥ १८ ॥ चौपई—छहों दरव पंचासति-
काय । सात तत्व नौ पद समुदाय ॥ जाननजोग जगतमें येह । जिनसों जाहिं सकलस-
न्देह ॥ १९ ॥ सब विधि उत्तम मोखनिवास । आवागमन मिटै जिहिं वास ॥ तातैं जे
शिवकारन भाव । तेई गहनजोग मन लाव ॥ २० ॥ यह जगवास महादुखरूप । तातैं
भ्रमत दुखी चिद्रूप ॥ जिनभावन उपजै संसार । ते सब त्यागजोग निरधार ॥ २१ ॥-न-

खण्डखण्ड कीने जे बन्ध। फेर न मिलै आपसों सन्ध॥माटी ईंट काठ पाषान। इत्यादिक अतिथूल वखान ॥१०८॥ छिन्न भिन्न हों फिर मिल जाहिं। ऐसे पुद्गल जे जगमाहिं ॥ घृत अरु तेल जलादिक जान। ये सब थूल कहे भगवान ॥ १०९॥ देखत लगें दिष्टि सों थूल। करमें गहे जाहिं नहिं मूल॥धूप चांदनी आदि समस्त। जान थूल ते सूक्षम वस्त ॥११०॥आंखनसों दीखै नहिं जेह। चारों इन्द्रीगोचर तेह॥ विविधि सपर्श शब्द रस गंध। सूक्षमस्थूल जान ते बंध॥१११॥नाना भांति वर्गना भिंड। कारमाण परमाणू पिंड ॥ काही इन्द्रीगोचर नाहिं। ते सूक्षम जिनशासनमाहिं ॥११२ ॥ कर्मवर्गना सो ही कहा। जो अति ही सूक्षम सरदहा। दुणकआदि परमाणूबंध। सो सूक्षमसूक्षम सुन बंध॥११३॥षट प्रकार पुद्गल इहि भाय। सुख्य गौन सबमें गुण थाय ॥ इनहीसों निर्मापत लोक। और न दीखै दूजो थोक ॥ ११४ ॥ शब्द बंध छाया तम जान। सूक्षम थूल भेद संठान अरु उदोत आतप बहु भाय। यह दश विधि पुद्गलपर्याय ॥ ११५ ॥ धर्मद्रव्यकथन— जब जड़जीव चलै सतभाय। धर्मदरव तब करै सहाय ॥ तथा मीनको जलआधार। अपनी इच्छा करत विहार ॥ ११६ ॥ अधर्मद्रव्यकथन—यों ही सहज करै थित सोय। तब अधर्म सहकारी होय ॥ ज्यों मगमें पंथीको छाहिं। थितिकारन है बलसों नाहिं॥११७॥

दीखैं किस हेत ॥११॥ किस कारन मूरख मतिहीन। क्यों उपजैं पंडित परवीन ॥ किस करनीतैं होय सरोग। किस अधर्मतें पुत्रवियोग ॥१२॥ विकलशरीर पाय दुख सहै। नीच ऊंचकुल कैसे लहै ॥ किनभावन भवथिति विस्तरै। भवथिति भेद कहा करि करै ॥१३॥ क्योंकर होय सुरगमें इन्द्र। कैसे पद पावै अहमिंद्र ॥ चक्रीपद किस पुन्यउदोत। किमि बांधै तीर्थंकरगोत ॥ १४ ॥ इत्यादिक यह प्रश्न समाज। इनको उत्तर कह जिनराज ॥ तुम सब संशयहरन जिनेश। जैसे भवतमदलन दिनेश ॥ १५ ॥ दोहा—तब श्रीसुखवानी विमल, विनअक्षर गंभीर। महामेघकी गरज सम, खिरी हरन जगपीर ॥ १६ ॥ तालु होठ सपरस विना, मुखविकार विन सोय। सब भाषामय मधुरतर, श्रीजिनकी धुनि होय ॥ १७ ॥ जथा मेघजल परनमें निंबादिक रसरूप ॥ तथा सर्वभाषामई, श्रीजिनवचन अनूप ॥ १८ ॥ चौपई—छहों दरव पंचासतिकाय। सात तत्व नौ पद समुदाय ॥ जाननजोग जगतमें येह। जिनसों जाहिं सकलसन्देह ॥ १९ ॥ सब विधि उत्तम मोखनिवास। आवागमन मिटै जिहिं वास ॥ तातैं जे शिवकारन भाव। तेई गहनजोग मन लाव ॥ २० ॥ यह जगवास महादुखरूप। तातैं भ्रमत दुखी चिद्रूप ॥ जिनभावन उपजै संसार। ते सब त्यागजोग निरधार ॥ २१ ॥-न-

आकाशद्रव्यकथन—जो सब द्रव्यनको अवकाश । देय सदा सो द्रव्य अकाश ॥ ताके भेद दोय जिन कहे । लोकअलोक नाम सरदहे ॥ ११८॥ जहँ जीवादि पदारथवास । असंख्यातपरदेश निवास ॥ लोकाकाश कहावै सोय । परैं अलोक अनंता होय ॥ ११९॥ कालद्रव्यकथन—लोकप्रदेश असंखे जहां। एक एक कालाणू तहां॥ रत्नराशि वत निवसैं सदा । द्रव्यसरूप सुथिर सर्वदा॥१२०॥बरतावन लक्षण गुण जास। तीनकाल जाको नहिं नास॥ समयघड़ी आदिक बहुभाय। ये व्यवहारकालपर्याय॥१२१॥पहले कहौ जीवअधिकार । और अजीव पंचपरकार ॥ ये ही छहों द्रव्यसमुदाय । कालविना पंचासतिकाय ॥ ॥१२२॥ दोहा—वहु परदेशी जो दरव, कायवन्त सो जान । तातैं पचअथिकाय हैं, काय काल विन मान॥१२३॥सवैया छंद—जीवरधर्म अधर्म दरव ये, तीनों कहे लोक परवान॥ असंख्यात परदेशी राजैं, नभ अनन्तपरदेशी जान ॥ संख असंख अनंतप्रदेशी, त्रिविधिरूप पुद्गल पहिचान ॥ एकप्रदेश धरै कालाणूं, तातैं काल कायविन मान ॥१२४॥ दोहा—कालकाय विन तुम कहो,एकप्रदेशी जोय॥पुद्गल परमाणू तथा,सो सकाय क्यों होय ॥१२५॥सवैया—अलख असंख्य दरव कालाणू,भिन्नभिन्न जगमाहिं वसाहिं। आपसमाहिं मिलै नाहिं कबहीं,तातैं कायवन्त सो नाहिं॥ रूप सचिक्कनतें परमाणू, तताखिन बन्धरूप हो

जाहिं । यों पुद्गलको कायकल्पना, कही जिनेश्वरके मतमाहिं ॥१२६॥ आकाशप्रदेशरूप तथा शक्तिकथन—जितने मान एक अविभागी, परमाणू रोकै आकास ॥ ताको नाव प्रदेश कहावै, देय सर्व दरवनको वास॥ तहां एक कालाणू निवसै, धर्मअधर्म प्रदेशनिवास॥ रहैंअनन्त प्रदेश जीवके, पुद्गलबंध लहैं अवकास।१२७। पोमावती-धर्म अधर्म कालअरु चेतन चारों दरव अरूपी गाये॥ तातैं एक अकाश देशमें, प्रभु सबके परदेश समाये॥ मूरतवन्त अनंते पुद्गल, तेउस नभमें क्योंकर माये॥ यह संशय समझायकहो गुरु, दास होय हम पूछनआये।१२८। सोरठा—बहु प्रदीप परकाश, यथा एक मंदिरविषै॥ लहैं सहज अवकाश, बाधा कछु उपजै नहीं ॥१२९॥ दोहा—त्यों हीं नभ परदेशमें, पुद्गल बंध अनेक ॥ निराबाध निवसें सही, ज्यों अनन्त त्यों एक॥१३०॥ आस्रवतत्त्वकथन—जो कर्मनको आगमन, आस्रव कहिये सोय । ताके भेद सिद्धांतमें, भावित दरवित होय ॥ १३१॥ चौपई—मिथ्या अविरत योग कषाय । और प्रमाददशा दुखदाय । ये सब चेतनको परिनाम । भावास्रव इनहींको नाम ॥ १३२ ॥ तिनही भावनके अनुसार । ढिगवरती पुद्गल तिहि वार ॥ आवैं कर्म भावके-जोग । सो दरवित आस्रव अमनोग॥१३३॥ बंधतत्त्वकथन—सोरठा—रागादिक परिनाम जिनसों चेतन बँधत है । तिन भावनको नाम, भावबंध जिनवर कह्यो ॥१३४॥ दोहा—

अवधार । जीवतत्त्ववर्णन लिख्यो,अब अजीव अधिकार ॥९६॥ अजीवतत्त्वकथन—पुद्गल धर्म अधर्म नभ,कालनाम अवधार । ये अजीव जड़तत्त्वके,भेद पंच परकार ॥९७॥ तिनमें पुद्गल दोय विधि, बन्धरूप अणुरूप । यह सब हैं रूपी दरव,चारों और अरूप ॥९८॥ अणुरूपी पुद्गल दरव, छेद भेद नाहिं जास । अगनि जलादिक जोगसों, होय न कबही नास ॥ ९९ ॥ जा अविभागीमें नहीं, आदि मध्य अवसान । शब्दरहित पर शब्दको कारणभूत वखान ॥१००॥ सोरठा—भू जल पावक वाय, हेतुरूप सबको यही । बहुविधि कारन पाय, वरणादिक पलटैं तुरत ॥१०१॥ अविनाशी जिसमाहिं, सदा पंच गुण पाइये । इन्द्रीगोचर नाहिं, अवधि ज्ञानसों जानिये ॥ १०२ ॥ दोहा—वरण पांच रस पांचमें, एक एक ही होय ॥ एक गन्ध दो गन्धमें, आठ फरसमें दोय ॥१०३ ॥ ये परमाणू पंचगुण, सात बंधमें जान । वर्णादिक जे बीस हैं, ते गुण जात वखान ॥ १०४ ॥ आगे पुद्गल बंधके, सुनो भेद षट सोय ॥ सरधा करतैं समझतैं, संशय रहै न कोय ॥ १०५॥ चौपई—प्रथम भेद अतिथूल तखान । द्वितिय थूल संज्ञा उर आन ॥ तृतिय थूलसूक्षम सरदहो । सूक्ष्मस्थूल चतुर्थम गहो ॥ १०६ ॥ पंचम सूक्षम नाम गिनेह । षष्ठम अतिसूक्षम षट येह॥ अब इनको वरणन विरतंत । सुनो एक मनसों मतिवंत॥१०७॥

खण्डखण्ड कीने जे बन्ध। फेर न मिलै आपसों सन्ध॥माटी ईंट काठ पाषान। इत्यादिक अतिथूल वखान ॥१०८॥ छिन्न भिन्न हों फिर मिल जाहिं। ऐसे पुद्गल जे जगमाहिं ॥ घृत अरु तेल जलादिक जान। ये सब थूल कहे भगवान ॥ १०९॥ देखत लगैं दिष्टि सों थूल। करमें गहे जाहिं नहिं मूल॥धूप चांदनी आदि समस्त। जान थूल ते सूक्षम वस्त ॥११०॥आंखनसों दीखै नहिं जेह। चारों इन्द्रीगोचर तेह॥ विविधि सपर्श शब्द रस गंध। सूक्ष्मस्थूल जान ते बंध॥१११॥नाना भांति वर्गना भिंड। कारमाण परमाणू पिंड ॥ काही इन्द्रीगोचर नाहिं। ते सूक्षम जिनशासनमाहिं ॥११२ ॥ कर्मवर्गना सो ही कहा। जो अति ही सूक्षम सरदहा। दुणकआदि परमाणूबंध। सो सूक्ष्मसूक्षम सुन बंध॥११३॥षट प्रकार पुद्गल इहि भाय। मुख्य गौन सबमें गुण थाय ॥ इनहीसों निर्मापत लोक। और न दीखै दूजो थोक ॥ ११४ ॥ शब्द बंध छाया तम जान। सूक्षम थूल भेद संठान अरु उदोत आतप बहु भाय। यह दश विधि पुद्गलपर्याय ॥ ११५ ॥ धर्मद्रव्यकथन—
जब जड़जीव चलै सतभाय। धर्मदरव तब करै सहाय ॥ तथा मीनको जलआधार। अपनी इच्छा करत विहार ॥ ११६ ॥ अधर्मद्रव्यकथन—यों ही सहज करै थित सोय। तब अधर्म सहकारी होय ॥ ज्यों मगमें पंथीको छाहिं। थितिकारन है बलसों नाहिं॥११७॥

देह भवभोग विरच्चे। धन्य धन्य ते साधु, आप अपने रस रच्चे ॥ धन्य धन्य ते साधु, पीठ जगकी दिशि कीनी। धन्य धन्य ते साधु, दिष्टि शिवसम्मुख दीनी॥ तजि सकल आस बनवास वस, नगन देह मद परहरे। ऐसे महंतमुनिराज प्रति, हाथ जोर हम सिरधरे॥ १५६ ॥ चौपई—पंच महाव्रत दुद्धर धरैं। सम्यक पाच समिति आदरैं ॥ तीन गुप्ति पालैं यह कर्म। तेरहविधि चारित मुनिधर्म ॥१५७॥ यातैं सधै मुक्तिपदखेत। गिरही धर्म सुरगसुख देत ॥ सो एकादश प्रतिमारूप। ते वरनों संक्षेप सरूप ॥ १५८ ॥ दर्शनप्रतिमा—पंच उदंवर तीनप्रकार। सात व्यसन इनको परिहार॥ दर्शन होय प्रतिज्ञायुक्त। सो दर्शनप्रतिमा जिनउक्त ॥ १५९ ॥ सप्तव्यसननिषेध, ढाल—श्रीगुरुशिक्षा सांभलौ, (ज्ञानी) सात व्यसन परित्यागोरे ॥ येजगमें पातक बड़े, (ज्ञानी) इन मारग मत लागोरे ॥ १६० ॥ जुवा खेलन मांडिये, (ज्ञानी) जो धन धर्म गँवावैरे ॥ सब विसननकोवीज है, (ज्ञानी) देखंता दुख पावैरे ॥१६१॥ रजवीरजसों नीपजै, (ज्ञानी) सो तन मास कहावैरे ॥ जीव हते विन होय ना, (ज्ञानी) नांव लियां विन आवैरे ॥१६२॥ सड़ि उपजै कीड़ां भरी, (ज्ञानी) मद दुर्गंध निवासोरे ॥ छीयांसों शुचिता मिटै, (ज्ञानी) पीयां बुद्ध विनासोरे ॥ १६३ ॥ धिक वेश्या बाजारनी. (ज्ञानी) रमती नीचन साथैरे ॥

धनकारन तन पापिनी, (ज्ञानी) वेचै व्यसनी हाथैरे॥१६४॥ अति कायर सबसों डरै-(ज्ञानी) दीन मिरग वनचारीरे॥ तिनपै आयुध साधते, (ज्ञानी) हा अतिक्रूर शिकारीरे॥१६५॥ प्रघट जगतमें देखिये, (ज्ञानी) प्रानन धनतें प्यारोरे॥ जे पापी परधन हरैं (ज्ञानी) तिनसम कौन हत्यारोरे॥१६६॥ परतिय व्यसन महा बुरो, (ज्ञानी)यामैं दोष बड़ेरोरे॥ इहि भव तनधनयश हरै, (ज्ञानी) परभव नरकबसेरोरे ॥१६७॥ पांडवआदि दुखी भये, (ज्ञानी) एक व्यसन रति मानीरे॥ सातनसों जे शठ रचे,(ज्ञानी)तिनकी कौन कहानीरे ॥ १६८ ॥ दोहा—पच उदंबर फल कहे, मधुमद मास मकार । इनके दूषण परिहरो, पहली प्रतिमा धार ॥ १६९ ॥ व्रतप्रतिमा–चौपई--पांच अणुव्रत गुणव्रत तीन । शिक्षाव्रत चारों मलहीन ॥ बारहव्रत धारैं निर्दोष । यह दूजी प्रतिमा व्रतपोष ॥१७०॥ दोहा–अब इन बारह व्रतनको,लिखों लेश विरतंत । जिनको फल जिनमत कह्यो, अच्युतस्वर्ग पर्यंत ॥ १७१ ॥ ढाल–जो नित मनवचकायसों, कृतआदिक सौंजैहोंजी॥ त्रसको त्रास न दीजिये, प्रथम अणुव्रत एहों जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ ॥१७२॥झूठवचन नहि बोलिये,सबही दोष निवासो जी॥ दूजोव्रत सो जान ये, हितमित वचनसंभाखो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १७३ ॥ भूलो विसरो भूपरो, जो परधन

जो चेतनपरदेशपै, बैठे कर्म पुरान ॥ नये कर्म तिनसों बधैं, दरवबंध सो जान ॥ १३५ ॥ संवरतत्त्वकथन—पद्धडी—आस्रव आविरोधन हेतैं भाव। सो जान भावसंवर सुभाव॥ जो दर्वित आस्रव शुद्धरूप। सो होय दरव संवरसरूप॥१३६॥ वृत पंचसमिति पांचों सुकर्म। वर तीन गुप्ति दश भेद धर्म ॥ वारह विधि अनुप्रेक्षाविचार। वाईस परीषहविजय सार ॥ १३७ ॥ पुनि पांच जात चारित अशेष। ये सर्व भावसंवर विशेष ॥ इनसों कर्मास्रव रुकै एम। परनालीके मुहँ डाट जेम॥१३८॥दोहा—शुभ उपयोगी जीवके, व्रत आदिक आचार। पापास्रव आविरोधको, कारण है निर्धार ॥१३९॥ शुद्ध उपयोगी साध जे, तिनकै ये आचार। पुन्यपाप दोऊनको, संवरहेत विचार ॥ १४० ॥ निर्जरातत्त्वकथन चौपई—तपबल कर्म तथा थिति पात। जिन भावों रस दे खिर जात॥ तेई भाव भावनिर्जरा। संवरपूरव है शिवकरा॥१४१॥ बँधे कर्म छूटैं जिसबार। दरवनिर्जरा सो निर्धार॥ इहिविधि जिनशासनमें कहिया। समकितवंत सांच सरदहिया॥१४२॥मोक्षतत्त्वकथन—जो अभेद रत्नत्रिय भाव। सोई भावमोक्ष ठहराव ॥ जीव कर्मसों न्यारा होय। दरवमोक्ष अविनाशी सोय ॥ १४३ ॥ ये सब सात तत्त्व वरनये। पुन्यपाप मिलि नौपद भये ॥ आस्रवतत्त्वविषै वे दोय। गर्भित जान लीजिये सोय ॥ १४४ ॥

दोहा—जीव यथारथदिष्टिसों, सरधै तत्त्वसरूप ॥ सो सम्यकदर्शन सही, महिमा जास अनूप ॥ १४५ ॥ नयप्रमाण निक्षेप करि, भेदाभेद विधान । जो तत्त्वनको जाननो, सोई सम्यक्ज्ञान ॥ १४६ ॥ सो सामान्य विलोकिये, दर्शन कहिये जोय । जो विशेष कर जानिये, ज्ञान कहावै सोय॥१४७॥ चारित किरियारूप है, सो पुनि दुविधि पवित्त ॥ एक सकल चारित्र है, दुतिय देशचारित्त ॥१४८ ॥ अड़िल्ल—जहां सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै । सो पूरन चारित्र, महा मुनिवर धरै ॥ लेश्य त्याग जहँ होय, देशचारित वही । सो ग्रहस्थको धर्म ग्रही पालै सही ॥ १४९ ॥ दोहा—तीर्थंकर निर्ग्रंथपद, धर साधो शिवपंथ । सोई प्रभु उपदेशियो, मोक्षपंथ निर्ग्रंथ ॥ १५० ॥ दशविधि बाहिज ग्रंथमें, राखै तिल तुस मान । तौ मुनिपद कहिये नहीं, मुनि विन नहिं निर्वान॥१५१॥ जे जन परिग्रहवंतको, मानै मुक्तिनिवास । ते कबही न मुकत लहैं, भ्रमें चतुरगति-वास ॥ १५२ ॥ क्रोधादिक जबही करैं, बंधै कर्म तब आन । परिग्रहके संयोगसों, बंध निरंतर जान ॥१५३॥ बंध अभावै मुक्ति है, यह जानै सब लोय । बंध हेत वरतैं जहां, मुक्ति कहाँतैं होय ॥ १५४ ॥ पश्चिम भान न ऊगवै, अगनि न शीतल होय । यथाजात जिनलिंगविन, मोक्ष न पावै कोय ॥ १५५ ॥ छप्पय—धन्य धन्य ते साधु,

मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८३॥ अन्त समय संलेखणा, कीजै शक्ति संभालो जी॥जासों व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विशालो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८४ ॥ चौपई—तीनकाल सामायिक करै । पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥ १८५ ॥ परव चतुष्टय ताजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥ सोलह पहर धरै शुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान॥१८६॥ त्यागै हरी जात जावंत। दल फल कंद बीज बहु भंत ॥ प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग॥१८७॥ जो दिनमें मैथुन परिहरै। मनवच-काय शील दिढ़ धरै ॥ षष्टमप्रतिमाधारी धीर । यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ १८८ ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै। नौ विधि सदा शील व्रत भजै ॥ काम कथारत कबहिं न होय । सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ १८९ ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार। निरारंभ वरतैं मद छार । अहानिशि हिंसासों भयभीत। अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १९० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचितवसन राखै विनराग ॥ सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ । यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥१९१॥ जो ग्रहस्थकारज अघमूल । तिनको अनुमति

दोहा—जीव यथारथदिष्टिसों, सरधै तत्त्वसरूप ॥ सो सम्यकदर्शन सही, महिमा जास अनूप ॥ १४५ ॥ नयप्रमाण निक्षेप करि, भेदाभेद विधान । जो तत्त्वनको जाननो, सोई सम्यक्ज्ञान ॥ १४६ ॥ सो सामान्य विलोकिये, दर्शन कहिये जोय । जो विशेष कर जानिये, ज्ञान कहावै सोय॥१४७॥ चारित किरियारूप है, सो पुनि दुविधि पवित्त ॥ एक सकल चारित्र है, दुतिय देशचारित्त ॥१४८ ॥ अड़िल्ल—जहां सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै । सो पूरन चारित्र, महा मुनिवर धरै ॥ लेश्य त्याग जहँ होय, देशचारित वही । सो ग्रहस्थको धर्म ग्रही पालै सही ॥ १४९ ॥ दोहा—तीर्थंकर निर्ग्रंथपद, धर साधो शिवपंथ । सोई प्रभु उपदेशियो, मोक्षपंथ निर्ग्रंथ ॥ १५० ॥ दशविधि बाहिज ग्रंथमें, राखै तिल तुस मान । तौ मुनिपद कहिये नहीं, मुनि विन नहिं निर्वान॥१५१॥ जे जन परिग्रहवंतको, मानै मुक्तिनिवास । ते कबही न मुकत लहैं, भ्रमें चतुरगति-वास ॥ १५२ ॥ क्रोधादिक जबही करैं, बंधै कर्म तब आन । परिग्रहके संयोगसों, बंध निरंतर जान ॥१५३॥ बंध अभावै मुक्ति है, यह जानै सब लोय । बंध हेत वरतैं जहां, मुक्ति कहाँतैं होय ॥ १५४ ॥ पश्चिम भान न ऊगवै, अगनि न शीतल होय । यथाजात जिनलिंगविन, मोक्ष न पावै कोय ॥ १५५ ॥ छप्पय—धन्य धन्य ते साधु,

देय न भूल ॥ भोजनसमयबुलायो जाय । सो दशमीप्रतिमा सुखदाय ॥१९२॥ दोहा—अब एकादशमी सुनो, उत्तम प्रतिमा सोय । ताके भेद सिधान्तमें, छुल्लक ऐलक दोय ॥ १९३ ॥ चौपई—जो गुरुनिकट जाय व्रत गहै । घर ताजि मठ मंडपमें रहै ॥ एकवसन तन पीछी साथ । कटिकोपीन कमंडल हाथ ॥ १९४ ॥ भिक्षा भाजन राखै पास । चारों परव करै उपवास ॥ ले उदंडभोजन निर्दोष । लाभ अलाभ राग ना रोष॥१९५॥ उचित काल उतरावै केश । डाढ़ी मूँछ न राखै लेश ॥ तपविधान आगम अभ्यास । शक्तिसमान करै गुरुपास ॥१९६॥ यह छुल्लक श्रावककी रीत । दूजो ऐलक अधिक पुनीत ॥ जाके एक कमर कोपीन । हाथ कमंडल पीछी लीन॥१९७॥ विधिसों बैठि लेहि आहार । पानिपात्र आगम अनुसार ॥ करै केशलुंचन अति धीर । शीत घाम सब सहै शरीर ॥ १९८॥ सोरठा--पानिपात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ि मुनि ॥ खड़ो रहै तिहिवार, भक्तिरहित भोजन तजै ॥१९९॥ दोहा--एक हाथपै ग्रास धरि,एक हाथसे लेय ॥ श्रावकके घर आयके, ऐलक अशन करेय ॥ २०० ॥ यह ग्यारहप्रतिमा कथन, लिख्यो सिधांत निहार । और प्रश्न बाकी रहे, अब तिनको अधिकार ॥ २०१ ॥ चौपई—जे जगमें पापी परधान । सात व्यसनसेवक अज्ञान ॥ रुद्रध्यान धारैं अघमई । अति ही

क्रूर कर्म निर्दई ॥ २०२ ॥ झूठवचन बोलैं सत छोर । परधन परवनिताके चोर ॥ बहु आरंभी बहुपरिग्रही । मिथ्यामतको पोषैं सही॥२०३॥ चंड कषायी अधिक सराग । जिनप्रतिमानिंदक निर्भाग ॥ मुनिवर निंदि पाप सिर लेहिं । जैनधर्मको दूषण देहिं॥२०४॥ नीचदेवसेवारस रचे । धरैं कृस्नलेश्या मद मचे ॥ इत्यादिक करनीरत रहैं । ऐसे नीच नरकगति लहैं ॥२०५॥ छप्पय—सप्तमसों पशु होय, देश संयम न संभालै ॥ छठे नरकसों मनुष, होय व्रत नाहीं पालै ॥ पंचमसों व्रत धरै, मोक्षगतिको नहिं साधै ॥ चौथेसों शिव जाय, नहीं तीरथपद लाधै ॥ सब शुभ्रवाससों आयकै, वासुदेव नहिं भव धरै ॥ प्रति वासुदेव बलदेव पुनि, चक्रवर्ति नहिं अवतरै ॥२०६ ॥ चौपई—मायाचारी जे दुठ जीव । परपंचनमें निपुन अतीव ॥ झूठ लिखैं अरु चुगली खाहिं । झूठी साखि भरत भय नाहिं ॥२०७॥शील न पालैं मोहउदोत । लेश्या जिनकै नील कपोत ॥ आरतध्यानी धर्मविहीन । पशुपर्याय लहैं अकुलीन ॥२०८॥ आरतरौद्ररहित नीराग । धर्म शुकल ध्यानी वड़भाग ॥ जिनसेवक पालैं व्रत शील । कसैं करण मदमाते कील॥ २०९॥ जिनप्रतिमा जिनमंदिर ठवैं । सातखेत उत्तम धन बवैं ॥ सदाचार सुन श्रावक होय । जथाजोग पावै सुर लोय ॥ २१० ॥ सहज सरल परनामी जीव । भद्रभाव उर धरैं सदीव ॥

बहु भायो जी ॥ विन दीये लीजै नहीं, जनम दुखदायो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ ॥१७४॥ ब्याही वानिता होय जो, तासों कर संतोषो जी । परिहारिये परकामिनी, यासम और न दोषो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१७५॥ धनकन कंचन आदि दे, परिग्रह संख्या ठानो जी । तिशना नागिन वश करो,यह व्रत मंत्र महानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं॥१७६॥ अवधि दशों दिशि खेतकी, कीजै संवर जानो जी । बाहर पांव न दीजिये, जब लग घटमें प्रानो जी ॥ बारहव्रत विध वरणऊं॥१७७॥ कर मरयादा कालकी, करिये देश प्रमानो जी । वन पुर सरिता आदि दे, नित्त गमनको थानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १७८ ॥ जहां स्वारथ नाहिं संपजै, उपजै पाप अपारो जी । अनरथदंड वही कहो, त्यागै पंच प्रकारो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १७९ ॥ सामायिक विधि आदरो,थल एकांत विचारो जी। उर धरिये शुभ भावना,आरत रौद्र निवारो जी ॥ बारह व्रत विधि वरणऊं॥१८०॥ पोषह व्रत आराधिये,चारौं परवमँझारो जी । चहुँविधि भोजन परिहरो, घरआरँभ सब छारो जी । बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८१ ॥ भोजन पान तँबोल त्रिय, खटभूषण बहु एमो जी । भोगयथा उपभोग है, कब इनको जम नेमो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८२ ॥ उत्तम अतिथिनको सदा, दीजै चौविधि दानो जी।

मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८३॥ अन्त समय संलेखणा, कीजै शक्ति संभालो जी॥जासों व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विशालो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८४ ॥ चौपई—तीनकाल सामायिक करै । पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥ १८५ ॥ परव चतुष्टय ताजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥ सोलह पहर धरै शुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान॥१८६॥ त्यागै हरी जात जावंत । दल फल कंद बीज बहु भंत ॥ प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग॥१८७॥ जो दिनमें मैथुन परिहरै। मनवच-काय शील दिढ़ धरै ॥ षष्टमप्रतिमाधारी धीर । यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ १८८ ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै। नौ विधि सदा शील व्रत भजै ॥ काम कथारत कबहिं न होय । सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ १८९ ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार। निरारंभ वरतैं मद छार । अहनिशि हिंसासों भयभीत । अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १९० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचितवसन राखै विनराग ॥ सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ । यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥१९१॥ जो ग्रहस्थकारज अघमूल । तिनको अनुमति

होय। पुरुषवेद पावैं सुरलोय ॥ २२१ ॥ जे अतिकामी कुटिल अतीव। महा सरागी मोहित जीव ॥ परवनितारत शोकसँजुक्त। ते कामिनितन लहैं निरुक्त॥२२२॥ रागअन्ध अति जे जगमाहिं। कामभोगसों तृपतै नाहिं॥ वेश्यादासी रक्तकु शील। ते नर लहैं नपुंसक—डील॥२२३॥मनवचकाय महानिर्दई। वध बंधन ठानैं अघमई ॥ परको पीड़ा बहुविधि करैं। ते जिय अलप आयु धरि मरैं॥२२४॥कृपावन्त कोमल परिणाम। देखि विचारि करें सब काम॥ जीवदयामें तत्पर सदा। परको पीड़ा देहिं न कदा॥२२५॥ सबही जीवनसों हितभाव। धरैं पुरुष ते दीरघ आव। जे जिनयज्ञपरायण नित्त। पात्रदानरत शीलपवित्त ॥२२६॥ इन्द्रीजीत हिये संतोष। ते नर भोग लहैं व्रत पोष ॥ पूजादान विमुख मदलीन। इन्द्रीलुब्ध दयागुणहीन ॥ २२७॥ दुराचार दुरध्यानी लोग। इनको प्रापत होहि न भोग॥ समय विचारि पढ़ैं जिनग्रंथ। पढ़ैं पढ़ावें जे शुभपंथ॥२२८॥ हितसों धर्मदेशना कहैं। ते परभव पण्डितपद लहैं॥ ज्ञानगरव हिरदै धर लेहिं। जिनसिधांतको दूषन देहिं ॥ २२९ ॥ इच्छाचारी पढ़ैं अशुद्ध। ज्ञानविनयवरजित जड़ बुद्ध ॥ पढ़नेजोग पढ़ावें नाहिं। ऐसे मरि मूरख उपजाहिं॥२३०॥अनाचाररत आरँभवान। परको पीड़न करैं अयान॥ पापकर्मरत धर्म न गहें। ते परभवमें रोगी रहैं॥२३१॥ परदुख देखि हरख उर धरै। परव-

मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥१८३॥ अन्त समय संलेखणा, कीजै शक्ति संभालो जी॥ जासों व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विशालो जी॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ १८४ ॥ चौपई—तीनकाल सामायिक करै । पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥ १८५ ॥ परव चतुष्टय ताजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥ सोलह पहर धरै शुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान॥१८६॥ त्यागै हरी जात जावंत । दल फल कंद बीज बहु भंत ॥ प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग॥१८७॥ जो दिनमें मैथुन परिहरै। मनवच-काय शील दिढ़ धरै ॥ षष्टमप्रतिमाधारी धीर । यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ १८८ ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै। नौ विधि सदा शील व्रत भजै ॥ काम कथारत कबहिं न होय । सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ १८९ ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार। निरारंभ वरतैं मद छार । अहनिशि हिंसासों भयभीत। अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १९० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचितवसन राखै विनराग ॥ सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ । यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥१९१॥ जो ग्रहस्थकारज अघमूल । तिनको अनुमति

होय। पुरुषवेद पावैं सुरलोय ॥ २२१ ॥ जे अतिकामी कुटिल अतीव । महा सरागी मोहित जीव ॥ परवनितारत शोकसँजुक्त । ते कामिनितन लहैं निरुक्त॥२२२॥ रागअन्ध अति जे जगमाहिं। कामभोगसों तृपतै नाहिं॥ वेश्यादासी रक्तकु शील। ते नर लहैं नपुंसक—डील॥२२३॥मनवचकाय महानिर्दई । वध बंधन ठानैं अघमई ॥ परको पीड़ा बहुविधि करैं। ते जिय अल्प आयु धरि मरैं॥२२४॥कृपावन्त कोमल परिणाम। देखि विचारि करै सब काम॥ जीवदयामें तत्पर सदा। परको पीड़ा देहिं न कदा॥२२५॥ सबही जीवनसों हितभाव। धरैं पुरुष ते दीरघ आव। जे जिनयज्ञपरायण नित्त। पात्रदानरत शीलपवित्त ॥२२६॥ इन्द्रीजीत हिये संतोष। ते नर भोग लहैं व्रत पोष ॥ पूजादान विमुख मदलीन। इन्द्रीलुब्ध दयागुणहीन ॥ २२७ ॥ दुराचार दुर्ध्यानी लोग। इनको प्रापत होहि न भोग॥ समय विचारि पढ़ैं जिनग्रंथ। पढ़ैं पढ़ावें जे शुभपंथ ॥२२८॥ हितसों धर्मदेशना कहैं। ते परभव पण्डितपद लहैं॥ ज्ञानगरव हिरदै धर लेहिं। जिनसिधांतको दूषन देहिं ॥ २२९ ॥ इच्छाचारी पढ़ैं अशुद्ध। ज्ञानविनयवरजित जड़बुद्ध ॥ पढ़नेजोग पढ़ावैं नाहिं। ऐसे मरि मूरख उपजाहिं॥२३०॥अनाचाररत आरँभवान। परको पीड़न करैं अयान॥ पापकर्मरत धर्म न गहैं। ते परभवमें रोगी रहैं॥२३१॥ परदुख देखि हरख उर धरै। परव-

मंद मोह जिनके देखिये । मंदकषायप्रकृति पेखिये ॥ २११ ॥ अलपारंभ
अलप धन चहैं । उर कपोतलेश्या निर्बहैं ॥ पुण्यपाप नाहिं बरतैं दोय । मिश्रभा-
वसों मानुष होय ॥२१२॥ परके दोष सुनैं मन लाय । विकथा वानी बहुत सुहाय ॥
कुकविकाव्य सुन हरषैं जोय । ते बहरे उपजें परलोय ॥२१३॥ पढ़ैं सुछंद विवेक न करैं।
मृषापाठ विकथा विस्तरैं ॥ परनिंदा भावैं बहुभाय । निजपरशंसा करैं बढ़ाय ॥२१४॥
मलमूत्रादिक भोजन काल । मौन छांड़ि बोलैं बाचाल॥झूठ कहत कछु शंकैं नाहिं। ते गूंगे-
जनमे जगमाहिं ॥ २१५ ॥ परतियमुख देखैं करि नेह । निरखैं सब योनादिक देह ॥
वधबंधन याचैं धरि राग। ते मरि आँधे होंहिं अभाग॥२१६॥ जे नर करैं कुतीरथ गौन ।
बहुत बोझ लादैं विनमौन ॥ वृथाविहारी देख न चलैं। होय पंगु ते पातक फलैं ॥२१७॥
नीतवनज करि लछमी लेहिं। ओछा लेहिं न अधिका देहिं ॥ अलपवित्त दानादिक करैं
ते नर दरवधनी अवतरैं ॥२१८॥ जे धन पाय धरैं अभिमान । समरथ होकर देहिं न दा-
न ॥ धनकारन छलछिद्र कराहिं । बढ़त परिग्रह धापैं नाहिं ॥२१९॥ लक्ष्मीवन्त कृपन
जन जेह । परभव होंहिं दरिद्री तेह ॥ मंदकषायी सरलसुभाव । अहनिशि वरतैं पूजाभाव
॥ २२० ॥ निज वनितासंतोषी सदा । मंदराग दीखैं सर्वदा ॥ दुराचार जिनके नहिं-

गणधरदेवप्रति, जगतजीवहितकाज ॥ २४२ ॥ वानी सुन बारह सभा, भयो सबन आनन्द ॥ जैसे सूरजके उदय, विकसै वारिजवृन्द ॥ २४३ ॥ वचनाकिरणसों मोहतम मिट्यो महा दुखदाय ॥ वैरागे जगजीव बहु, काललब्धिबल पाय ॥ २४४ ॥ चोपई– केई मुक्तिजोग बड़भाग । भये दिगंबर परिग्रह त्याग ॥ किनही श्रावक व्रत आदरे । पशुपर्याय अणुव्रत धरे ॥ २४५ ॥ केई नार अर्जिका भई । भर्ताके संग वनकों गई ॥ केई नर पशु देवी देव । सम्यकरत्न लह्यो तहां एव ॥ २४६ ॥ केई शक्तिहीन संसार । व्रत भावना करी सुखकार ॥ पूजादानभाव परिनये । जथाजोग सब सेवक भये ॥ २४७ ॥ दोहा–कमठ जीव सुरजोतिषी, करि वचनामृतपान ॥ वमों बैर मिथ्यात्व विष, नमो चरण जुग आन ॥ २४८ ॥ सम्यकदरशन आदर्‍यो, मुक्ति-तरोवरमूल ॥ शंकादिक मल परिहरे, गई जनमकी शूल ॥ २४९ ॥ तहां सातसै ता-पसी, करत कष्ट अज्ञान ॥ देखि जिनेश्वरसंपदा, जग्यो जथारथ ज्ञान ॥ २५० ॥ दई तीन परदक्षिणा, प्रणमें पारसदेव ॥ स्वामि चरण संयम धरो, निंदी पूरव टेव ॥ २५१ ॥ धन्य जिनेश्वरके वचन, महामंत्र दुखहंत ॥ मिथ्यामत विषधर डसे, निर्विष होहिं तुरंत ॥२५२॥ कहां कमठसे पातकी, पायो दर्शन सार ॥ कहां पापतप तापसी, धर्‍यो महाव्रत

निता परधन जो हरै ॥ नरपशुजीव विछोहैं जोय । सो पुत्रादिवियोगी होय ॥ २३२॥ नीचकर्मरत करुणा नाहिं । हाथ पांव छेदैं छिनमाहिं ॥ जे परको उपजावैं पीर । ते नर पावै विकल शरीर ॥ २३३ ॥ जो मिथ्यामतमदिरा पियैं । पापसूत्रकी शरधा हियें ॥ धर्मनिमित्त जीवबध करैं । महाकषाय कलुषता धरैं॥२३४॥ नास्तिकमती पाप मग गहैं । ते अनन्तसंसारी रहैं ॥ रतनत्रयधारी मुनिराज । आगमध्यानी धर्मजहाज ॥२३५॥इच्छारहित घोरतप करैं । कर्म नाशकर भवजल तिरैं । उत्तमदेव नमैं शिरनाय । पूजैं परम साधुके पाय ॥२३६॥ साधरमीबतसल मुनिप्रीत । उत्तम गोत बंधै इहरीत॥ जे जिन यती जिनागम जान । नमै नहीं शठ करि अभिमान ॥२३७॥ मानै नीच देव गुरु धर्म । ये सब नीच गोतके कर्म ॥ जिनके हिये रमै वैराग । धारैं संजम तृश्ना त्याग ॥ २३८ ॥ अतिनिर्मल चारितभंडार । ज्ञानध्यानतत्पर अविकार ॥ ख्याति लाभ पूजा नाहिं चहैं । ते अहमिंद संपदा गहैं ॥ २३९ ॥ पंच करण बैरी वश आन । चारित पालै अति अमलान ॥ दुद्धरतप कर सोखै काय । चक्री होय देवपद पाय॥२४०॥ जे सम्यकदृष्टी गुणग्रही । सोलहकारन भावैं सही ॥ ते तीर्थंकर त्रिभुवनधनी । होहिं तीन जगचूड़ामनी ॥ २४१ ॥ दोहा—इहिविधि पूछनहारको, समाधान जिनराज ॥ कीनो

भार ॥ २५३ ॥ जिनके वचनजहाज चढ़ि, उतरे भवजलपार ॥ जे मतच्छ आये शरन, क्यों न होय उद्धार ॥२५४॥ अब श्रीगणधरदेव तहँ, चार ज्ञान परवीन ॥ जिस समुद्रतें अर्थजल, मतिभाजन भर लीन ॥ २५५ ॥ नाम स्वयंभू दयानिधि, विधिधि रिद्धिगुण-खेत ॥ द्वादशांग रचना करी, जगतजीवहितहेत ॥ २५६ ॥ परमागम अमृतजलधि, अवगाहें मुनिराय ॥ जन्मजरामृतदाह हरि, होंय सुखी शिव पाय ॥ २५७ ॥ चौपई—प्रथम एकसौ बारह कोड़। लाख तिरानवै ऊपर जोड़॥बावन सहस पांच पद सही। द्वादशांगकी परमित कही ॥ २५८ ॥ पद्धड़ी—इक्यावन कोड़ी लाख। चौरासी सहस-सिलोक भाख ॥ छस्सै साढ़े इकीस जान। यह एक महापदको प्रमान ॥२५९॥ दोहा—इहिं विधि सभासमूह सब,निवसै आनँदरूप ॥ मानो अमृत नीरसों, सिंचत देह अनूप ॥ २६० ॥ चौपई—तब सुरेश उठि विनती करी। हाथ जोर सिर अंजुलि धरी ॥ भो जगनायक जगआधार। तीन भवनजनतारनहार ॥२६१॥ यह विहारअवसर भगवान। करिये देव दया उर आन ॥ भविकजीवखेती कुमलाय । मिथ्यातपसों सूखी जाय ॥ २६२ ॥ भोपरमेश अनुग्रह करो। वानीवरषासों तप हरो ॥ मोक्षमहापुरके परधान। तुम विनजारे दयानिधान ॥२६३॥ प्रभुसहाय भवि सुखपद लेहिं। आवागमन

जलांजुलि देहिं॥इहिविधि इन्द्र प्रार्थना करी। सहसनाम करि थुति विस्तरी॥२६४॥भयो अनिच्छ्या गमन जिनेश। भविजीवनके भागविशेश॥सकलसुरासुर जय जय कियो। जिनविहारअम्रतरस पियो॥२६५॥ गमनसमय औरे विधि भई। समोसरनरचना खिरगई॥चले संग सुर चतुरनिकाय। चहुँविधि सकल चले सुरराय॥२६६॥ सुरदुंदाभि बाजैं सुखकार। जिनमंगल गावैं सुरनार॥ हाथ धुजाजुत देवकुमार। चले जाहिं नभमें छवि सार॥२६७॥चहुँदिशि चार चारसौ कोश। होय सुभिच्छ सदा निर्दोष॥ नभविहार जिन्नवरकै होय। जीवघात तहां करै न कोय॥२६८॥ सब उपसर्गरहित भगवंत। निरआहार आयुपरयन्त॥ चतुरानन देखैं संसार। सब विद्यापति परमउदार॥२६९॥ प्रभुके तनकी परै न छाहिं। पलक पलकसों लागैं नाहिं॥ नख अरु केश बढ़ैं नाहिं जास। ये दशकेवल अतिशय भास॥२७०॥ भाषा सकल अर्ध मागधी। खिरै सकल संशयहर सधी॥नरपशु जातिविरोधी जीव। सब उर मैत्री धरैं सदीव॥२७१॥ नानाजाति विरछ दुख दलैं। सबरितुके फल फूलनि फलैं॥ प्रभुसंचारभूमि मणिमई। दर्पणवत आगमवरनई॥२७२॥ सुरभिपवन पीछे अनुसरै। वायुकुमार जनित सुखकरै॥ सुरनरपशू सभागत जेह। परमानन्दसहित सब तेह॥२७३॥ मारुतसुर योजनमित मही। करैं धूलितृणवर्जित सही॥

मेघकुमार करैं मन लाय । गंधोदकवरषा सुखदाय ॥२७४॥ चरनकमल जिन धारैं जहां । कंचन कमल रचैं सुर तहां ॥ सातकमलतैं आगैं ठान । पीछे सात एकमधि जान ॥२७५॥ यों पँकजकी पँद्रह पांति । सवा दोइ सै सब इहिभांति ॥ शुकलध्यान उपजे बहुभाय । निर्मलदिशि निर्मल नभ थाय ॥२७६॥ मुदितबुलावै देवसमाज । भविजनको निज पूजनकाज ॥ धर्मचक्र आगे संचरै । सूरजमंडलकी छवि हरै ॥२७७॥ मंगलदर्व आठ झलकाहिं । जथाजोग सुर लीये जाहिं ॥ ये चौदह देवनकृत जान । वरअतिशयमंडितभगवान ॥ २७८ ॥ करैं विहार परमसुख होत । भविजीवनके भाग उदोत ॥ स्वर्गमोक्षमारग प्रभु सार । प्रगट कियो भ्रमतिमर निवार ॥२७९॥ कहीं कुलिंगी दीखैं नाहिं । भानु उदय ज्यों चोर पलाहिं ॥ सब निज निज वांछाअनुसार । पूरणआश भये तनधार ॥२८०॥ काशी कौशलपुर पंचाल । मरहट मारूदेश विशाल ॥ मगध अवंती मालवठाम । अंग वंग इत्यादिक नाम ॥ २८१ ॥ कीनौ आरजखंड विहार । मेटौ जगमिथ्याआँधियार ॥ अब सब गणकी गणना सुनों । यथापुराणकथित विधि मुनों ॥२८२॥ प्रथम स्वयम्भु प्रमुखपरधान । दश गणधर सर्वागम जान ॥ पूरवधारी परमउदास । सर्व तीन सै अरु पंचास ॥ २८३ ॥ शिष्य मुनीश्वर कहे पुरान । दशहजार नौ सै परवान ॥ अवधिवन्त

चौदह सै सार। केवलज्ञानी एकहजार॥२८४॥ विविधि विक्रियारिद्धिबलिष्ट। एकसहस जानो उतकृष्ट ॥ मनपरजयज्ञानी गुनवन्त। सातशतक पंचास महन्त ॥ २८५ ॥ छसै वादविजयी मुनिराज। सब मुनि सोलहसहस समाज॥सहसछब्बीस अर्जिका गनी। एक-लाख श्रावकव्रतधनी ॥२८६॥ तीनलाख श्रावकनी जान। वरनी संख्या मूल पुरान ॥ देवीदेव असंख्यअपार। पशुगण संख्याते निरधार॥२८७॥ इहविधि बारह सभासमेत। रतनत्रयमारगविधि देत॥ विहरमान दरसावत बाट। सत्तरवरष भये कछु घाट ॥२८८॥ सम्मेदाचल शिखर जिनेश। आये श्रीपारसपरमेश ॥ एकमास जिन योग निरोध। म-नवचकाय क्रिया सब रोध॥२८९॥सूक्षमकाय योगथिति ठान। त्रितियशुकलसंजुत तिहिं ठान ॥ तजि सयोगथानक स्वयमेव। आये फिर अयोगपद देव॥२९०॥ पँचलघुक्षर है तिथि जहां। चतुरथ शुकलध्यानबल तहां॥ दोयचरम समये जिन भनी। प्रकृति बहत्तर तेरह हनी ॥ २९१ ॥ इहिविधि कर्म जीत भगवान। एक समय पहुँचे निर्वान ॥ औ छत्तीस मुनीश्वर साथ। लोकशिखर निवसे जिननाथ ॥ २९२ ॥ सावन सुदि सातैं शुभ वार। विमल विशाखा नखतमँझार ॥ तजि संसार मोक्षमें गए। परमसिद्ध परमा-तम भए ॥ २९३ ॥ पूरव चरम देहतैं लेश। भये हीन आतम परदेश ॥ अष्टगुनातमम-

य व्यवहार । निहचै गुण अनंतभंडार ॥ २९४ ॥ सादि अनंतदशा परिनये । सिद्धभाव वसुगुनजुत थये ॥ परमसुखालय वासो लियो । आवागमन जलांजलि दियो ॥२९५॥ दोहा–पंच कल्यानक पाय सुख, जगत जीव उद्धार । भये पूज्य परमातमा, जय जय पासकुमार ॥ २९६ ॥ जिनके सुखको ज्ञानकी, नहिं उपमा जगमाहिं । जोतिरूप सुख-पिंड थिर, इंद्रीगोचर नाहिं ॥ २९७ ॥ अब तिनको आकार कछु, एकदेश अवधार । लिखों एक दृष्टांत करि, जिनशासन अनुसार ॥ २९८ ॥ चौपाई—मोममई इक पुतला ठान । नखशिख सम्मचतुरसंठान ॥ सब तन सुंदर पुरुषाकार । नराकार इसही विधि सार ॥ २९९ ॥ माटीसों इमि लेपहु सोय । जैसे त्वचा देहपर होय ॥ कहीं अंग खाली नहिं रहै । सब उपचारकल्पना यहै ॥ ३०० ॥ पुनि सो लीजै अगनि तपाय । सांचा रहै मोम गल जाय ॥ अब ता भीतर करो विचार । कहा रह्यो बुध ताहि निहार ॥ ३०१ ॥ अन्तर मूस पोल है जहां । पुरुषाकार रह्यो नभ तहां ॥ याही अंबरके उनहार । ब्रह्मस्वरूप जान निरधार ॥ ३०२ ॥ यह आकाश शून्य जड़रूप । वह पूरन चेतन चिद्रूप ॥ यही फेर है या वामाहिं । आकृतिमें कछु अंतर नाहिं ॥ ३०३ ॥ या विधि परमब्रह्मको रूप । निराकार साकारसरूप ॥ यह दृष्टांत हिये निज धरो ।

भवि जिय अनुभवगोचर करो ॥ ३०४ ॥ दोहा—वसैं सिद्ध शिवखेतमें, ज्यों दर्पन-
में छाहिं ॥ ज्ञाननयनसों प्रगट हैं, चर्म नैंनसों नाहिं ॥ ३०५ ॥ चौपई—तब इंद्रा-
दिक सुरसमुदाय । मोक्ष गये जाने जिनराय ॥ श्रीनिर्वाणकल्याणक काज । आये
निज निज बाहन साज ॥ ३०६ ॥ परमपवित्त जानि जिनदेह । मणिशिवकापर थापी
तेह ॥ करी महापूजा तिहिं बार । लिये अगर चंदन घनसार ॥ ३०७॥ और सुगंधदर-
व शुचि लाय । नमें सुरासुर शीस नमाय ॥ अगनिकुमार इंद्रतैं ताम। मुकटानल प्रगटी
अभिराम ॥ ३०८ ॥ ततखिन भस्म भई जिनकाय । परम सुगंध दशौं दिशि थाय ॥
सो तन भस्म सुरासुर लई । कंठ हिये कर मस्तक ठई ॥ ३०९॥भक्ति भरे सुर चतुरनि-
काय । इहविधि महा पुन्य उपजाय ॥ कर आनंद निरत बहुभेव । निज निज थान
गये सब देव ॥ ३१० ॥ दोहा—पंचकल्यानक पूज प्रभु, शिवशिरिकंन जिनेश ॥
सब जग सुख संपति करो, श्रीपारसपरमेश ॥ ३११ ॥ पद्धड़ी—पहले भव वामन
कुलपवित्त । मरुभूत उपन्नो सरलचित्त ॥ दूजे वनहस्ती वज्रघोप । जिन पाले
बारहव्रत अदोष ॥३१२॥ तीजे भव द्वादशस्वर्गवास ।सहस्रार नाम सब सुखनिवास ॥
चौथे भव विद्याधरकुमार । लघु वैस लियो चारित्रभार ॥३१३॥ पंचम भव अच्युत सुर-

ग थान । बाईस जलधि जहँ थिति प्रमान ॥ छट्ठे भवमें चक्रीनरेश । जिन साधे सहस-बतीस देश ॥ ३१४ ॥ सातवें जनम अहमिंद्र होय । सुख कीने चिर उपमा न कोय ॥ आठम भव श्रीआनंदराय । तजि राजरिद्धि वन वसे जाय ॥ ३१५ ॥ सोलहकारन भाये मुनिंद्र । पुनि भये बारमें स्वर्ग इंद्र ॥ इहि विधि उत्तम नौ जनम पाय । वामाजननी उर वसे आय ॥ ३१६ ॥ जे गरभ जनम तप ज्ञान काल । निर्वाणपूज्य कीरतिविशाल॥ सुर नर मुनि जाकी करैं सेव । सो जयो पार्श्वदेवाधिदेव ॥ ३१७ ॥ दोहा—नाम लेत पातक भजैं, सुमरत संकट जाहिं । तेईसम अवतार मुझ, वसो सदा हियमाहिं ॥३१८॥ छप्पय—क्रमठ जीव तन छोरि, दुतिय कुरकट अहि जायो ॥ नरक पंचमें जाय, आय अजगर तन पायो॥धूम प्रभामें उपजि,भील अति भयो भयानक। चरम नरक पुनि सिंघ, फेर पंचमभू थानक ॥ पशुजौनि भुंजि महिपाल नृप, देव जोतिषी अवतर्यो ॥ इहि विधि अनेक भवदुख भरे, बैरभाव विषतरु फल्यो ॥ ३१९ ॥ दोहा--छिमाभाव फल पासजिन, कमठवैर फल जान । दोनों दिशा विलोकके, जो हित सो उर आन ॥ ३२० ॥ सोरठा—जीव जाति जावंत, सबसों मैत्रीभाव करि ॥ याको यह सिद्धंत, बैर-

विरोध न कीजिये[1] ॥ ३२१ ॥ सवैया—जो भगवान बखान करी धुनि, सो गुरु गौतमनें उर आनी । तापर आइ ठई रचना कछु, द्वादश अंग सुधारस बानी ॥ ता अनुसार अचारजसंघ, सुधीवलसों बहुकाव्य बखानी । यों जिनग्रंथ यथारथ है,अयथारथ हैं सब और कहानी ॥ ३२२ ॥ दोहा—जितने जैनसिद्धांत जग, ते सब सत्यसरूप। धर्मभावना हेत सब, हितमित शिक्षारूप ॥ ३२३ ॥ कलपित कथा सुहावनी, सुनते कौन अरत्थ । लाख दाम किस कामके, लेखन लिखे अकत्थ ॥ ३२४ ॥ सोरठा—सुन श्रीपार्श्वपुरान, जान शुभाशुभ कर्मफल। सुहित हेत उर आन,जगत जीव उद्यम करो ॥ ३२५ ॥ दोहा—प्रभुचरित्र मिस किमपि यह, कीनो प्रभु गुनगान । श्रीपारस परमेशको, पूरन भयो पुरान ॥ ३२६ ॥ पूरब चरित विलोकिकै, भूधर बुद्धि समान । भाषाबंध प्रबंध यह, कियो आगरे थान ॥ ३२७ ॥ छप्पय—अमरकोष नहिं पढ्यो, मैं न कहि पिंगल पेख्यो । काव्य कंठ नहिं करी, सारसुत सो नहिं सीख्यो ॥ अच्छर-संधि-समास-ज्ञानवर्जित बुधि हीनी ।

१ उक्तं च—सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं । क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं ॥ माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ । सदा ममात्मा विदधातु देवः ॥ ३२३ ॥

धर्मभावना हेत, किमपि भाषा यह कीनी ॥ जो अर्थ छंद अनमिल कही. सो बुध फेर सवांरियो । सामान्यबुद्धि कविकी निरखि, छिमाभाव उर धारियो ॥ ३२८ ॥ दोहा—जिनशासन अनुसार सब, कथन कियो अवसान । निज कपोलकल्पित कहीं, मति समझो मतिवान॥३२९॥ छयउपशमकी ओछसों, कै प्रमादवश कोय । इहिविधि भूल्यो पाठ में, फेर सवांरो सोय ॥ ३३० ॥ पंच वरष कछु सरससे, लागे करतन बेर ॥ बुधि थोरी थिरता अलप, तातें लगी अबेर ॥ ३३१ ॥ सुलभ काज गरुवो गनै. अलपबुद्धिकी रीत । ज्यों कीड़ी कण ले चलै, किधौं चली गढ़ जीत ॥ ३३२ ॥ विघनहरन निरभयकरन, अरुन वरन अभिराम । पासचरन संकटहरन, नमो नमो गुनधाम ॥ ३३३ ॥ छप्पय—नमो देव अरहन्त, सकल तत्वारथभासी । नमो सिद्ध भगवान, ज्ञानमूरति अविनाशी ॥ नमो साध निर्ग्रन्थ, दुविधि परिग्रह परित्यागी । जथाजात जिन लिंग धारि, वन वसे विरागी॥ वंदों जिनेशभाषित धरम, देय सर्व सुख सम्पदा॥ ये सार चार तिहुँलोकमें, करो क्षेम मंगल सदा ॥ ३३४ ॥ दोहा—संवत सतरह सै समय, और नवासी लीय । सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रंथ समापत कीय ॥ ३३५ ॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवन्निर्वाणगमनवर्णनं नाम नवमोऽधिकारः ।

इति श्रीपार्श्वपुराण समाप्त।